पातञ्जल

योग दर्शन तथा महर्षि व्यास देव प्रणीत भाष्य

जिसको

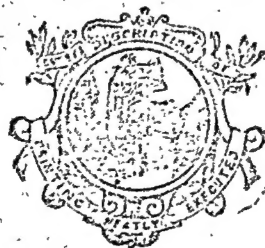
बाबू महावीर प्रसाद

मन्त्री आर्य्यसमाज कलकत्ता ने योगतत्वाभिलाषियों के हितार्थ

पण्डित रुद्रदत्त शर्म्मा

सम्पादक "आर्य्यावर्त्त" से भाषानुवाद कराकर

प्रकाशित किया।



कलकत्ता।

"आर्य्यावर्त्त" यन्त्रालय ७५ नं० काटन ष्ट्रीट

बेचू लाल गुप्त द्वारा मुद्रित हुआ

सन् १८८८ ई०





मूल्य ४) रु० डाक व्यय ।) आना।

शुद्धिपत्रम् ।

शुद्धिपत्र उन सूत्रों व उनके भाष्य व भावार्थों का जो पीछे से लिखे जानेके कारण संख्याहीन पूरे व अर्द्ध चतुर्थांश आदि खण्ड पत्रों में स्थापित किए गये हैं ।

	पृ० पृ०	
प्रथम पादके आठवें सूत्रका भावार्थ	१८—१९	के मध्यमें
" " सोलहवें " "	२४—२५	" "
" " पैंतीसवें " "	७४—७५	" "
" " चालीसवें सूत्रका भाष्य व भावार्थमें १पत्र	८२—८३	" "
" " तैंतालीसवें सूत्रके भाष्यके पदार्थसे लेकर ५० सूत्र याने प्रथम पाद समाप्त पर्यन्त	९०—९१	" "
तृतीय पादके प्रथम सूत्रसे लेकर नवें सूत्रके भावार्थ तक	१९३—१९४	के मध्य
इसके बीचके पेज में संख्या की भूल है सूत्र सब ठीक है	२२०—२२५	
तथा	२३४—२३७	

ओ ३म्

उपोद्घात ।

ईश्वर की भी क्याही अपार महिमाहै कि, जिस को क्षणमात्र एकान्त स्थल में निश्चल हो कर विचारने से स्पष्टभान होता है कि यह जगत्क्षणभंगी है ।

"प्रथमं जगदेवनश्वरम् पुनरखिलक्षणभंगुरातनुः ;
ननुतत्र सुखाभिहेतवेक्रियतेहन्तजनैः परिश्रमः ।"

देखिये प्रथम इन शरीरों की कैसी आश्चर्यमय उत्पत्ति है, यदि इस् के उपादान कारण पर दृष्टि देते हैं तो उस रजो वीर्य्य से ऐसे आश्चर्य्य-मय शरीरों का उतपन्न होना कीसी प्रकार से बुद्धि में नहीं आता, पश्चात शरीर और प्राण के वियोग होजाने पर यदि समस्त जगत् में ढूंढ़ीये तो उस प्राणीका पता न पाइयेगा, परन्तु भारतवर्षीय ज्ञ्यशालि विद्वानों ने इसही अनित्य और मलसार शरीर में से ऐसी ऐसी विद्या प्रकट की हैं कि, जिनके साधन से मनुष्य इस लोक और पर लोक में अवधि से अधिक भी सुख प्राप्त कर सक्ता है, जिस प्रकार से आज कल के योरोपियन विद्वान लोग अनेक बाह्य विद्या प्रकट करके यश लाभ कर रहे हैं, ऐसे ही भारतीय विद्वान् लोग आन्तरिक विद्याओं को प्रकाशित करके कीर्तिमान् होते थे, और यथार्थ में जबतक मनुष्य यह नहीं जाने कि मेरे शरीर में क्या क्या पदार्थ हैं तबतक वह पदार्थान्तरों को कैसे जान सक्ता है, इसके अतिरिक्त मनुष्यों के शरीरों में अन्तःकरण

चतुष्टय* के अन्तर्गत मन ऐसा विघ्न कारक है कि मनुष्यको अनेक दुःख-प्रद विषयो में फसाकर सांसारिक और पारमार्थिक सुखों से वंचित कर देता है और केवल अर्थ औरकाम में ही फसाये रखताहै, धर्म और मोक्ष का चिन्तन भी नहीं करने देता यद्यपि मन का चपलता और तरलता स्वाभाविक गुण हैं तथापि सज्जनों का मन धर्म और मोक्ष की ओर चलता है और दुराचारियों का मन निन्द्यकर्मों में चलता है जिस्से वे लोग उन कर्मों के आदि मध्य और अन्त में दुःख उठाते हैं और यह भी आपामर प्रसिद्ध है कि सुख की सबको इच्छा होती है परन्तु, अल्पज्ञ लोग सुखाभास को सुखमान कर फिर दुःख सागर में डूब जाते हैं जैसे पर स्त्री वा पुरुष प्रसंगादि क्षणिक सुख में मग्न होनेसे उपदंश और उससे कुष्टादि महारोगों से जन्मभर महादुःखभोग करते हैं। इस्से सिद्ध हुवा कि वह सुख नहीं बल्कि सुखाभास है बस सुख वही है जिस में दुःख का अत्यन्ताभाव होजाय और उस ही दुःख के अत्यन्ताभाव को मोक्ष कहते हैं जैसे महर्षि कपिल देव ने सांख्यशास्त्र में लिखा हैं।

"अथ त्रिविध दुखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः"

इसका अर्थ यह है कि आधिभौतिकआधिदैविक और आध्यात्मिक दुःखों की अत्यन्त निवृत्तिको मोक्ष कहते हैं बस विचारशील मनुष्य इस ही अक्षय सुख की प्राप्ति का यत्न करते है और इस सुखप्राप्ति के साधन मन और इन्द्रियो का निग्रह है एवं मनोनिग्रहयोगके बिना असाध्य है। गीता में कृष्णने भि कहा है, "अभ्यासेनतु कौन्तेयवैराग्येण चगृह्यते" अर्थात् योगाभ्यास और वैराग्य से मनोनिग्रह हो सक्ताहै और जैसे अग्नि मे तपानेसे धातूओं के मल नष्ट होजाते हैं वैसे ही योगा-

* मनबुद्धिचित्तअहंकार को अन्तःकरणचतुष्टय कहते हैं।

भ्यास से मनुष्य के मलविक्षेप और आवरण दोष छुट कर शुद्ध ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उससे मोक्ष सिद्ध होती है।

परन्तु आज कल लोगो ने योग शब्द को ऐसा बुरासमझ रक्खा है कि जोभिक्षुक गेरु के वस्त्र पहर कर किसी विद्याके न जानने के कारण बिना उचित परिश्रम किये आलस्य ग्रस्तहोकर उदर पूर्ति के लिये घर घर भिक्षा मांगते फिरते हैं आजकल वेहीनिरुद्योगी योगी कहलाते हैं यदि किसी मनुष्य ने अधिक विचार कियातो बस यहांतक बुद्धि को दौड़ाया कि "योगी का अर्थ यह समझने लगा कि जो घरबार को छोड़ कर जंगल में चलाजाय उसे योगी कहते हैं।" और कोई कोई मनुष्य कनफटे फकीरोंही को जोगी कहते हैं। परन्तु यह सब मनुष्यों की भूल है क्योंकि योग से और वस्त्रों से किसी प्रकार का संबन्ध नहीं योग का केवल चित्त से सम्बन्ध हैं बल्कि चित्त की स्थिर वृत्तिही का नाम योग है उस में गेरुये रंगे कपड़े वा जटा कुछ सहायक नहीं होते। प्रत्युतबाधक होते हैं क्योंकि आजकल प्रायःअज्ञ लोग काषायाम्बरधारी मनुष्यों को सिद्ध जानकर ऐसा घेरते हैं कि उनको अष्ट प्रहर अवकाश नहीं लेनेदेते फिर उन के चित्त की वृत्ति कैसे स्थिर होसक्ती है और जो यह कहते हैं कि जंगलमें रहनेसे योग प्राप्त होता है यह भी उनका भ्रमही है क्योंकि किसी सज्जनका वचन है कि।

वनेपि दोषाः प्रभवन्तिरागिणां गृहेपुपञ्चेन्द्रिय निग्रहस्तपः अकुत्सिते कर्म्मणिय: प्रवर्तते निवृत्तरागस्यगृहंतपोवनम्।

गीता में भी लिखा है कि।

कर्म्मेन्द्रियाणि संयम्यय आस्ते मनसा स्मरन् इन्द्रियार्थान् विमूढ़ात्मा मिथ्याचारस्स उच्यते।

इत्यादि अनेक प्रमाण हैं जिनसे सिद्ध होताहै कि मनुष्य गृहस्था-श्रम में भी योग साधन करसक्ता है और प्रत्येक मनुष्य दिनभर में

हो एकबार योग की क्रियाकरते हैं परन्तु उसकी दशा कौन जानने के कारण सांसारिक व्यवहार में युक्त कर देते हैं जैसे कोई लेखक उत्तम अक्षर लिखता है तब उसको समस्त अन्यविषयों से चित्त की वृत्तियों को रोककर अक्षर के आकार में लगानी पड़ती हैं क्योंकि बिना तदाकार वृत्ति किये अक्षर सर्वांङ्ग सुन्दर नहीं बन सक्ता और पतंजलि ऋषि ने इस ही योगशास्त्र के १म पाद के २ सूत्र में योगका लक्षण लिखा हैं कि चित्तकी वृत्ति के निरोध को योग कहते हैं परन्तु आज कल के मनुष्यों पर तो यह कहावत ठीक चरितार्थ होती है कि "गांवकी गांवफूंक दिये पर अगरारीकरनी न आई।"

भला हम पूंछते हैं कि यदि वनमें ही मनो निग्रह होता है तो जो स्त्रियां पानीके भरे घड़े सिर पर रख कर प्रति दिन लाती हैं, वह कैसे होता ? क्योंकि बिना चित्तकी वृत्तियों के निरोध किये निराश्रय घड़ों का सिर पर ठहरना असम्भव है ऐसेही नट का निराश्रय रस्से वा तारपर चलना समझिये इन दृष्टान्तों से यही मालूम होता है कि स्त्री और नट की चित्तवृत्ति का योग घड़े और रस्से आदि से है परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि नित्ययोग की क्रिया करने पर भी लोग योग के नाम से डरते हैं; पूर्वोक्त निन्दा और इस शब्द के दुर्नाम और भय का कारण यही मालूम होता है कि महाभारत युद्धके पीछे इस देश में अन्य देशी विद्याओं के फैल जाने से भारतबासी अपनी धर्म्म-भाषा संस्कृत को ऐसा भूल गये कि उसके शब्द मात्र से भय करने लगे।

बड़े शोकका स्थल है कि जिन विद्याओं के आविर्भाव (पैदा) करनेवाले इस देश में रहतेथे उन विद्याओंके पढ़ने पढ़ानेवालोका भी इस देश में अभाव होगया जिससे उन्हीं महर्षियों की सन्तान मुक्तकंठ से कहती हैं कि हमारे देश में प्रथम कोई विद्याही न थी, बस इस अभाव के दूर करने लिये इस योगशास्त्र का सरल भाषा में अनुवाद

किया जाता है आशा है कि ईश्वरानुग्रह से यह कार्य्य शीघ्र पूर्ण होकर पाठकोंको मङ्गलकारक और सुखदायी होगा।

इस अनुवाद में केवल अक्षरार्थ और उपयोगीबातें लिखि जायंगी और अनपेक्षित (फज़ूल) कुछ नहीं लिखा जायगा योगमें जो जो उपयोगी वस्तु और स्थानादिक हैं वे सब योगके ८ अंगोंके वर्णन में लिखे जायंगे।

इस सर्वोपकारी सत्य सुख के देनेवाले योगशास्त्र को (पाणिनीय व्याकरण और कपिल ऋषि प्रणीत सांख्य शास्त्र के भाष्यकर्ता महर्षि पतंजलि ने बनाकर ४ भागोंमें विभक्त किया है।

उन में से पहिलेपाद में योग के लक्षण मनोनिग्रह और चित्त वृत्तियोंके रोकने के उपाय लिखे हैं इस ही लिये इस पाद का नाम समाधि पाद है।

दूसरे पाद में अष्टांग योगका वर्णन और शमदमादि योगके साधन आदि को सविस्तर वर्णन कियाहै इस लिये द्वितीय पाद का नाम साधन पाद रक्खा है।

तृतीय पाद का नाम विभूति पाद इस लिये है कि उसमें योग साधन के गौणफल वाक् सिद्धि और अणिमादि निधियों की प्राप्ति का वर्णन है।

और चतुर्थ पाद में योग के प्रधान फल मोक्ष का वर्णन है और इस कारण से चतुर्थ पाद का नाम कैवल्य पाद रक्खा है।

इनमें से पहिले पाद में ५० दूसरे में ५४ तीसरे में ५२ और चौथे में २४ सूत्र हैं एवं समस्त सूत्र संख्या १९० हुई। समस्त मुमुक्षु और विद्वानों को उचित है कि इस आर्षग्रंथ को क्रमशः पढ़ कर लाभ उठा वें।

यदि इस भाषाभाष्य में कोई त्रुटि होतो सज्जन लोग अनुग्रह द्वारा सूचित करें क्यों कि भ्रम शून्य होना सर्वथा असम्भव है अतएव त्रुटि

सम्भव है, और सज्जनों के सूचित करने पर ध्यान भीदिया जायगा परन्तु जो लोग दुराग्रह से खंडन करें गे उन के सर्व अहितकारी कथन पर कुछ ध्यान न किया जायगा क्योंकि वृथा वाद में कालक्षेप करना बुद्धि-मत्ता का काम नहीं है।

रुद्रदत्त शर्मा

अनुवादक।

पातञ्जल योगदर्शन ।

समाधिपाद ।

अथ योगानुशासनम् । १ ।

पदार्थ (अथ) प्रारम्भसूचक अव्यय (योगानुशासनम्) योगस्यानुशासनम् योगानुशासनम् अनुशिष्यन्ते आज्ञापिताभवन्ति जना अनेनेत्यनुशासनम् करणाधिकरणयोरितिल्युट युवोरनाकावित्यनादेशः ल्युडन्तत्वान्नपुंसकत्वम् "योगशास्त्र" योगसम्बन्धीशास्त्र ।

भावार्थ अब योगशास्त्रका आरम्भ करते हैं ।

व्यासदेवकृत भाष्य ॥ १ ॥

अथेत्ययमधिकारार्थः योगानुशासनं नामशास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्योगः समाधिः सचसार्वभौम श्चित्तस्यधर्मः क्षिप्तं-मूढं वि क्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमितिचित्तभूमयः तत्रविक्षिप्ते चेतसिविक्षेपोपसर्जनीभूतः समाधिर्नयोगपक्षे वर्ततेयस्त्वेकाग्रे-चेतसि सद्भूतमर्थंप्रद्योतयतिप्रक्षिणोतिचक्लेशान् कर्मबंधना-निश्लथयतिनिरोधमभिमुखं करोतिससंप्रज्ञातोयोगइत्याख्यायते सचवितर्कानुगतो विचारानुगत आनंदानुगतोऽस्मितानुगत-इत्युपरिष्टात् प्रवेदयिष्यामः सर्ववृत्तिनिरोधेत्वसंप्रज्ञातः समाधिः तस्य लक्षणाभिधित्सयेदंसूत्रंप्रववृते ॥ १ ॥

व्या० दे० कृ० भा, का पदार्थ (अथेत्ययम्) अथ यह शब्द (अधि-कारार्थः) अधिक्रियते अनेनेत्यधिकारः अधिकारएवार्थप्रयोजनम्यस्यसो-धिकारार्थः "अधिकार अर्थात् आरम्भसूचक है" (योगानुशासनन्नाम) योग का अनुशासन अर्थात् (शास्त्रमधिकृतम्वेदितव्यम्) योगशास्त्र का आरम्भ समझ ना चाहिये (योगस्समाधिः) योग समाधि को कहते हैं (स, च,) और वह समाधि (सार्वभौमः) सर्वासुभूमिष्वविदितस्सार्वभौमः "सब अवस्था ओं में अप्रसिद्ध" (चित्तस्य) चित्तका (धर्मः) गुण है। (क्षिप्तम्मूढ़म्वि क्षिप्तमेकाग्रन्निरुद्धमितिचित्तभूमयः) क्षिप्त मूढ़ विक्षिप्त एकाग्र और निरुद्ध यह चित्त की ५ अवस्था है (तत्र) उनमें से (वि-क्षिप्तेचेतसि) विक्षिप्तावस्थायुक्त चित्त में (विक्षेपोपसर्जनीभूतः) अनेक विषयों के विचार रूपविघ्न से नष्टभ्रष्ट हुई (समाधिः) चित्तवृत्ति (न) नहीं (योगपक्षे) योगविषय में (वर्तते) रहती है (यः) जो (तु) और (एकाग्रे चेतसि) एकाग्र चित्तमें अर्थात् चित्त की एकाग्र अवस्थामें (सद्भूतमर्थम्) सबपदार्थों को (प्रद्योतयति) प्रकाश करता है (प्रक्षि-णोति) नष्ट करता है (च) और (क्लेशान्) दुःखों को (कर्म्मबन्धनानि) कर्म्मकेबन्धनों को (श्लथयति) ढीला करता है (निरोधमभिमुखंकरोति) निरोध अर्थात् टूटने के अभिमुख अर्थात् योग्य करता हैं (सः) वह (सम्प्रज्ञातयोगः) सम्प्रज्ञात योग अर्थात् जिसमें समाधि के अतिरिक्त अन्यविषयों का भी भानहो (इत्याख्यायते) कहलाताहै (स, च) और वह (वितर्कानुगतो विचारानुगत आनन्दानुगतोऽस्मितानुगतः) ४ प्रकारका है (इत्युपरिष्ठात्) यह आगे इसही पाद के २७ वे सूत्र में (प्रवेदयि-ष्यामः) वर्णन करेंगे (सर्ववृत्तिनिरोधे) सबवृत्तियों के निरोध अर्थात् चित्त की निरुद्धावस्था में (तु) और (असम्प्रज्ञातस्समाधिः) असम्प्रज्ञात योग होता है (तस्य) उसका (लक्षणाभिधित्सया) लक्षण कहने की इच्छा से (इदम्) अगला (सूत्रम्) सूत्र (प्रववृते) बना हैं।

भाष्यकाभावार्थ—इस सूत्र में अथ शब्द आरम्भ का सूचक है योग

समाधि को कहते हैं और वह समाधि सब अवस्था ओं में अप्राप्य चित्त-का एक गुण है चित्त की ५ अवस्था हैं एक क्षिप्त—दूसरी मूढ़—३ विक्षिप्त—४ एकाग्र—५ निरुद्ध—जिस अवस्था में चित्तकी वृत्तियां अनेक सांसारीक विषयो में गवनकरती हैं उसको क्षिप्त कहते हैं—जिसमें चित्त मूर्खवत् होजाय अर्थात् कृत्याकृत्यकोभूल जाय उसे मुढ़ावस्था कहते हैं—विक्षिप्त उस अवस्था को कहते हैं जिसमें चित्त व्याकुलता व्यग्र हो जाता है—एकाग्र अवस्था वह है जिसमें चित्तविषयान्तरों से अपनी वृत्तियों को खींच कर किसी एक विषय में लगा देता है और निरुद्धावस्था वह है जिसमें चित्त की सब वृत्तियां चेष्टा रहित हो जाती हैं (इनमें से पूर्व ४ वृत्तियों में सत्‌गुण रजोगुण और तमोगुण का संसर्ग रहता है परन्तु पांच वीं अवस्था में गुणों के संस्कार मात्र रहते हैं) इनमें से क्षिप्तमूढ़ और विक्षिप्तावस्थाओं में योग नहीं होता क्योंकि चित्त की वृत्तियां उन अवस्था ओं में सांसारिक विषयों में लगी रहती हैं और जो एकाग्र अवस्था में योग होता है उसे सम्प्रज्ञात् योग कहते हैं और वह ४ प्रकार का है जिनका प्रथम पादकी २७ वें सूत्रमें वर्णन करेंगे एवं निरुद्धावस्था में असंप्रज्ञात योग होता है उसके लक्षण दूसरे सूत्र में कहते हैं ॥ १ ॥

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥२॥

सूत्रका पदार्थ—(योगः) "युज्यतेसौ योगः" जो युक्त करे उसे योग कहते हैं (चित्तवृत्तिनिरोधः) "चित्तस्यवृत्तयः चित्तवृत्तयः चित्तवृत्तीनां निरोधः चित्तवृत्तिनिरोधः" चित्तकी वृत्तियों का रोकना।

भावार्थ—— चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं।

भा० सर्वशब्दाद्यग्रहणात् संप्रज्ञातोपियोगइत्याख्यायते चित्तंहि-प्रख्याप्रवृत्तिस्थितिशीलत्वात् त्रिगुणम्प्रख्यारूपंहि चित्तसत्वं रजस्तमो भ्यांसंसृष्टम् ऐश्वर्यविषयप्रियंभवतितदेवतमसानुविद्धम् अधर्माज्ञा नावैराग्यानैश्वर्यो पगंभवति तदेवप्रक्षीणमो हावरणंसर्वतः प्रद्यो तमानमनुविद्धं रजोमात्रया धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यो पगंभवति तदेव रजोलेशमलापेतं स्वरूपप्रतिष्ठं सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रंधर्ममेवध्यानोपगंभवतितत्परं प्रसंख्यानमित्याचक्षतेध्यायिनः चितिशक्तिरपरिणामिन्यप्रतिसंक्रमादर्शितविषया शुद्धाचानंताचसत्वगुणात्मिकाचेयम् अतो विपरीताविवेकख्यातिरित्यतस्तस्यांविरक्तं चित्तंतामपिख्यातिंनिरुणद्धितदवस्थं संस्कारोपगंभवति स निर्बिजस्समाधिः नतत्र किंचित्संप्रज्ञायतइत्यसंप्रज्ञातः द्विविधः सयोगश्चित्तवृत्तिनिरोधइतितदवस्थेचेतसि विषयाभावा द्बुद्धिबोधात्मापुरुषः किंस्वभाव इति ॥ २ ॥

भाष्य का पदार्थ—(सर्वशब्दाद्यग्रहणात्) सब बाह्यशब्दादिविषयों के ग्रहण न होने अर्थात् अभाव से (सम्प्रज्ञातोपि) सम्प्रज्ञात भी (योगइत्याख्यायते) योग कहलाता है (चित्तंहि) चित्तही (प्रख्या प्रवृत्तिस्थितिशील त्वात्) विषय विचार, विषय के साथ सम्बन्ध करना, और विषय में स्थिति यह तीन स्वभावयुक्त होने से तीन प्रकार का है और विषय विचार भी तीन प्रकार का है (चित्तस त्वम्) चित्त (रजस्तमो-

ध्याम्) रजोगुण और तमोगुणसे (संसृष्टम्) मिला हुवा (ऐश्वर्य्यविषय-प्रियंभवति) अनेक द्रव्यादि ऐश्वर्य्य को चाहता है (तदेव) वही चित्त (तमसानुविद्धम्) तमोगुण के संयुक्त होनेसे (अधर्म्माज्ञाना वैराग्यानै-श्वर्य्योपगंभवति) अधर्म्म अज्ञान विषय और दरिद्र का चिन्तन करता है (तदेव) वही (प्रक्षीणमोहावरणम्) "मुह्यते अनेनेतिमोहः मोह स्यावरणंमोहावरणम् ताही शिरइ तिवतुष्टी प्रकर्षेण क्षीणंदूरीभूत मोहावरणंयस्मात्तत्" दूर होगया है मोहरूपीढकना जिसका (सर्वतः प्रद्योतमानम्) चारो ओर से प्रकाशयुक्त (अनुविद्धम्) युक्त (रजोमात्रया) केवल रजोगुण से (धर्म्मज्ञान वैराग्यैश्वर्य्योपगंभवति) धर्म्म, ज्ञान, सांसारिक विषयों में विरक्ति, और ईश्वरभाव के चिन्तन में प्रवृत्त होता है (तदेव रजोलेशमलापेतम्) वही चित्त रजोगुण के लेश और पापादिमल से मुक्त होता है तब (स्वरूपप्रतिष्ठम्) अपनेरूपमेंस्थित (धर्म्ममेवध्यानोपगंभवति) धर्म्म ही का विचार करता है (तत्परं प्रसंख्यानमित्याचक्षते) उसही को प्रधान प्रसंख्यान विचार कहते हैं (ध्यायिनः) योगी लोग (चितिशक्तिः) ज्ञानशक्ति (अपरिणामिनी) जिसका नाश कभी न हो (अप्रतिसंक्रमा) "क्षणुपादविक्षेपे नास्ति प्रतिसंक्रमणम्-यस्या सा"—जिस का प्रतिसंक्रमण अर्थात् अदलबदल न हो (दर्शितविषया) जिसके द्वारा विषय देखे जा सके हों (शुद्धा) मल रहित (च) और (अनन्ता) जिस का अन्त न हो (सत्वगुणात्मिका) सतोगुण प्रधान (च) और (इयम्) यह (अतः) इससे (विपरीता) उलटी (अविवेकख्यातिः) अविवेक का विचार (अतः) इसलिये (तस्याम्) उस में (विरक्तम्) उपरतहुवा (चित्तम्) चित्त (तामपि) उसको भी (ख्यातिम्) विचार को (निरुणद्धि) रोक देता है (तदवस्थम्) उस अवस्था में स्थित चित्त (संस्कारोपगंभवति) केवल संस्कार का विचार करता है (सः) वह (निर्विकल्पः) संकल्प विकल्प रहित समाधि कहलाती है (नतत्र) न जिस में (किञ्चित्] कुछ (सम्प्रज्ञायते) जाना

जाय। (इत्यसम्प्रज्ञातः) वह असम्प्रज्ञात योग कहलाता है (द्विविधः) दो प्रकार का है (सः) वह (योगः) योग।

भाष्यका भावार्थ—सम्प्रज्ञात योग में भी शब्दादिबाह्यविषयों का निरोध होता है इस लिये उसे भी योग कहते हैं परन्तु योग शब्द का मुख्यार्थ असम्प्रज्ञात ही है चित्त का तीन प्रकार का स्वभाव है एक प्रख्या दूसरा प्रवृत्ति तीसरा स्थिति अर्थात् दृष्ट वा श्रुत पदार्थों का विचार फिर विषयों के साथ सम्बन्ध पश्चात् विषयों में स्थिति उपनिषत् में भी लिखा है कि "यन्मनसाध्यायतितद्वाचावदति यद्वाचावदतितत् क्रिय याकरोति यत् क्रिययाकरोतितदभिसम्पद्यते" वह प्रख्या अर्थात् विषय विचार सत् रजतम गुणों के संसर्ग से तीन प्रकार का है।

जब चित्त अधिक सत्वगुण से युक्त होता है तब केवल ईश्वर का चिन्तन करता है जब वही चित्त अधिक तमोगुणयुक्त होता है तब अधर्म्म, अज्ञान, विषयाशक्ति का चिन्तन करता है और जब रजोगुण-चित्त में अधिक हो जाता है, तब धर्म्म और वैराग्य का चिन्तन करता है इस अवस्था को योगी लोग " परंप्रसंख्यान " कहते हैं, जो ज्ञान-शक्ति परिणाम से रहित और शुद्ध होती है वह सत्वगुण प्रधान है अर्थात् उस वृत्ति में तमोगुण और रजोगुण का अभाव हो जाता है परन्तु जब चित्त इस वृत्ति से भी उपरत अर्थात् विरक्त हो जाता है तब इस को भी त्याग देता है और केवल सत्वगुण के संस्कार के आश्रय रहता है और उसी संस्कार शिष्ट दशा को निर्विकल्पसमाधि वा असम्प्रज्ञात योग कहते हैं असम्प्रज्ञात का अर्थ यह हैं कि जिस में ध्येय (ध्यान करने योग्य ईश्वर) के अतिरिक्त और किसी विषय का भान न हो—योग दो प्रकार का है एक संप्रज्ञात दूसरा असंप्रज्ञात।

असंप्रज्ञात योग में जब चित्तकी सबवृत्तियों का निरोध होजाता है तब समस्त दृश्य और विचार्य विषयों के अभाव से जीव किस का विचार करता है और उस समय उसकी कैसी (स्वभाव) प्रकृति रहती

है इस प्रश्न को चित्त में धारण करके तीसरे सूत्र में इसका उत्तर देते हैं।

तदाद्रष्टुःस्वरूपेवस्थानम् ॥ ३ ॥

सू० का पदार्थ——(तदा) "तस्मिन्काले—कालेदातच्छब्दोहिपूर्व-परामर्शकः"—उस समय (द्रष्टुः) "पश्यतीति द्रष्टा तस्यद्रष्टुः दृशे स्तच" देखनेवालेकी अर्थात् निर्विकल्पक समाधिस्थ जीव की (स्वरूपे) "स्वस्यरूपं स्वरूपंतस्मिन्" आत्मचिन्तन (अवस्थानम् वस्थानमवा) "अव-तिष्ठति विचार्य्यत अनेनास्मिवेत्यवस्थानम् द्वितीय पक्षे भागुरिव्यपेसं-तेनाकारलोपः, पूर्वंतु एङः पदान्ताद तीत्यनेनाकारस्यपूर्वरूपम्" विचार किया जाय जिस से उसे अवसथान कहते हैं।

सू० का भावार्थ—जब चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है तब समाधिस्थ होकर जीवात्मा केवल अपने रूपकोही देख ता है और उसही का विचार करता है (यह दशा निर्विकल्प समाधि में होती हैं।

भाष्य – स्वरूपप्रतिष्ठा तदानींचितिशक्तिर्यथा कैवल्येव्यु-त्थानचित्ते तुसतितथापिसवन्तिनतथा कथंतर्हिदर्शित विषय-त्वात् ॥ ३ ॥

व्या० दे० क० भा० का पदार्थ—(स्वरूपप्रतिष्ठा) अपने स्वरूप में स्थिति वा अपने स्वरूप का विचार (तदानीं) तब (चितिशक्तिः) ज्ञानशक्ति (यथा) जैसे (कैवल्ये) "केवल शब्दस्वौणादि वृषादि-

स्याश्चिदित्यनेन साधुः, केवलस्यभावः कैवल्यम् मोक्षमितियावत्"—कैवल्य मुक्ति में (व्युत्थानचित्ते) उत्थान सहित चित्त में (तु) और (सति) होने पर भी (तथापि) तो भी (भवन्ति) होते हैं (न तथा) तैसे नहीं (कथं तर्हि) तो फिर कैसे (दर्शितविषयत्वात्) देखे हुवे विषयों के कारण से ।

भाष्य का भावार्थ—जब असंप्रज्ञात योग में चित्त की स्थिति हो जाती है तब जीव केवल अपने स्वरूप का विचार और दर्शन करता है जैसे कैवल्य* मोक्ष में ज्ञानशक्ति रहती है ऐसे ही निर्विकल्पसमाधि में भी वह ज्ञानशक्ति नष्ट नहीं होती परन्तु ज्ञानशक्ति का साफल्य तभी होता है जब किसी ज्ञेय पदार्थ से संबन्ध हो तब उस निर्विकल्पसमाधि में ज्ञेय विषय क्या है ? इसका उत्तर यही है कि उस असम्प्रज्ञात योग में केवल अपना स्वरूप ही ज्ञेय है क्योंकि जबतक द्रष्टाबाह्य विषयों को देखता है तबतक वह अपने स्वरूप को नही जान सक्ता ।

विशेष—(प्र०) इस सूत्र और भाष्य में यह शंका होती है कि द्रष्टा अपने स्वरूप को आपही नहीं देख सक्ता जैसे नेत्र अन्य पदार्थों को देख सक्ते हैं परन्तु अपने स्वरूप को नहीं देख सक्ते इसही प्रकार से जीवात्मा भी अपने स्वरूप को देखने में असमर्थ है ।

(उ०)—यह ठीक हैं परन्तु देखने में नेत्र परतंत्र हैं क्योंकि नेत्र द्वारा सब पदार्थों का द्रष्टा जीव है वस जीवात्मा में दो प्रकार की दर्शन शक्ति होती हैं स्थूल दूसरी सूक्ष्म इस सूक्ष्म दृष्टि ही को दिव्य दृष्टि भी

* कैवल्य का लक्षण कैवल्य पाद में वर्णन करें गे ।

वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ ४ ॥

सू० का पदार्थ —(वृत्तिःसारूप्यम्) "समानंरूपयस्य तत्सरूपम् सरूपस्यभावस्सारूप्यम् वृत्तीनां सारूप्यम् वृत्तिसारूप्यम्" वृत्तियों से अभेद (इतरत्र) "इतरस्मिन्—सप्तम्यास्त्रल्" और अवस्था में।

सू० का भावार्थ – निरुद्धावस्था के अतिरिक्त और दशा ओं में चित्त वृत्ति के रूपको धारण करले ता है।

व्युत्थानेयाः चितवृत्तयः तदविशिष्टवृत्तिः पुरुषः तथाच सूत्रम् एकमेवदर्शनंख्यातिरेवदर्शनमिति चित्तमयस्कांतमणि कल्पंसन्निधिमात्रोपकारिदृश्यत्वेन स्वंभवतिपुरुषस्यस्वामिनः

कहते हैं जीवात्मा दर्शन में अत्यन्त सहायक नेत्र से पदार्थान्तरों को देखता है और दिव्य दृष्टि अर्थात् सूक्ष्म दृष्टि से सूक्ष्म परमाणुादि पदार्थ तथा अपने रूप को भी देखता है क्योंकि परमेश्वर भी स्थूल दृष्टि का अदृश्य है और कठवल्ली उपनिषत् में बहुत स्थल पर लिखा है कि "तस्य योनिंपरिपश्यन्तिधीराः" अर्थात् उस परमेश्वर को धीर लोग देखते हैं इससे सिद्ध हुआ कि सूक्ष्म दृष्टि से सूक्ष्म पदार्थ और स्थूल दृष्टि से स्थूल पदार्थ देखे जाते हैं और जो नेत्र का दृष्टान्त है वह ठीक नहीं क्योंकि आइने में नेत्र अपने स्वरूप को आप देख सक्ता है बस ऐसे ही योग के आश्रय से जीवात्मा भी अपने स्वरूप को देख सक्ता है इस में कोई आपत्ति नहीं।

तस्माच्चित्तवृत्तिबोधेपुरुषस्यानादिः सम्बन्धोहेतुः ताःपुनर्निरो द्धव्याबहुत्वेसतिचित्तस्य ॥ ४ ॥

भा० का० प०—(व्युत्थाने) "विशेषेण उत्थानम् व्युत्थानं तस्मिन्" चित्त की चपलता में (याः) जो (चित्तवृत्तयः) चित्त की वृत्ति हैं (तद्-विशिष्ट वृत्तिः) उनसे भिन्न (पुरुषः) जीवात्मा है (तथाचसूत्रम्) ऐसाही सूत्रमें लिखा है (एकमेव) एकजीवात्मा ही (दर्शनम्) "पश्यत्यनेनेति दर्शनम्" देखने का साधन (ख्यातिरेव) विचार ही (दर्शनम्) देखने का साधन है (चित्तम्) चित्त (अयस्कान्तमणिकल्पन्) स्फटिकमणि के समान है (सन्निधिमात्रोपकारिदृश्यत्वेन) समीपमें स्थित दृश्य पदार्थ के समान (स्वंभवति) आप भी हो जाता है (पुरुषस्यस्वामिनः) जीवात्मा का (तस्मात्) इसलिये (चित्तवृत्तिबोधे) चित्त की वृत्तियों के ज्ञान में (पुरुषस्य) आत्मा का (अनादिः) सदा का (संबन्धो हेतुः) संसर्ग कारण है (ताः) वे चित्त की वृत्तियां (निरोद्धव्याः) रोकनेयोग्य हैं (बहुत्वेसति चित्तस्य) चित्त की अनेक वृत्ति होनेसे।

भा० का० भावार्थ—चित्तकी चपलता से जो अनेक वृत्तियां उठती हैं उन सब से आत्मा पृथक् रहता है और जो मैं सुखी वा दुःखी हूं ऐसे कथन से आत्मा में वृत्तियों का संबन्धभान होता है वह भ्रम जन्य है जैसे स्फटिकपत्थर अपने समीप में रक्खे पदार्थ के समान रंगवाला दीखने लगता है वस्तुतः उस स्फटिक में कोई भी रंग नही रहता है ऐसे ही आत्मा भी शुद्ध है परन्तु वृत्तियों के स्व स्वामी भावसम्बन्ध से आत्मा में सुख दुःखादि प्रतीत होते हैं चित्तवृत्तियों के द्वारा जो ज्ञान होता है उस में ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनादि सम्बन्ध ही कारण है मनुष्य को उचित है कि चित्त की वृत्तियों को रोके, क्योंकि चित्त की अनेक वृत्ति रहने से अगले सूत्र में लिखी वृत्तियां सुख और दुःखदायिनी होती हैं।

विशेषार्थ -भगवान् पतंजलि ने तीसरे सूत्र में कहा कि संप्रज्ञात योग में जीव केवल अपने स्वरूप को देखता है परन्तु इसमें शंका होती है कि इस निरुद्धावस्था में योगी की दशा और मनुष्यों के समान रहती है वा कुछ विलक्षण होजाती है? (उ०) "वृत्ति सारूप्य मितरत्र" "इतर स्वावृत्तौ' अन्य अवस्थाओं में अर्थात् निरुद्धावस्था के अतिरिक्त योगी की दशा अन्य मनुष्यों की वृत्ति के समान ही रहती है इससे सिद्धहुवा कि निरुद्धा वस्था में अन्य मनुष्यों की वृत्ति से कुछ विलक्षण योगी की वृत्ति हो जाती है।

दूसरा अर्थ—निरुद्धा वस्था के अतिरिक्त क्षिप्तादि अवस्थाओं में जीवात्मा दृश्य पदार्थ के रूप को धारण करलेता है अर्थात् जब जीवात्मा किसी वस्तु के जानने की इच्छा करता है तब नेत्रादि इन्द्रिय द्वारा जीव की वृत्ति बाहर निकल कर दृश्य वस्तु के रूप में परिणत हो (बदल) जाती है और फिर वह पदार्थ के रूप में परिणत हुई वृत्ति जिस इन्द्रिय द्वारा बाहर आई थी उसी मार्ग द्वारा अन्तःकरण में प्रवेश करजाती है, पश्चात् जीव और उस वृत्ति के योग होने से जीव को ज्ञेय पदार्थ का यथार्थ ज्ञान होता है—वृत्ति और वृत्तिमान् का समवाय संबन्ध होने से जीवही वृत्तिरूप कहा जाता है। इस अर्थ में पूर्व सूत्र से "द्रष्टुः पद की अनुवृत्ति आती है कोई२ अचार्य पूर्व सूत्र स्थित षष्ठ्यन्त द्रष्टृ शब्द से सर्वद्रष्टा परमेश्वर को ग्रहण करते हैं स्वरूप शब्द को योग रूढ़ी मानकर यह अर्थ करते हैं कि "जब जीव निरुद्धा वस्था में स्थित होता है तब परमेश्वर के रूप में स्थिती को लाभ करता है' और कोई२पंडित द्रष्टृ शब्द की उत्तर सूत्र में अनुवृत्ति समझ कर तद्वाच्य जीव को मानते हैं।

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥५॥

पदार्थ—(वृत्तयः) "विषय सम्बन्धाच्चित्तस्य परिणाम विशेषाः" वृत्तियां (पंचतय्यः) "पंचभिरंगैरुपेताः" पांचो (क्लिष्टाः) "क्लिश्यन्ते उत्तापिता भवन्तिजनाया भिस्ताः क्लिष्टाः" दुःखित हों मनुष्य जिनसे वे क्लिष्ट कहलाती हैं (अक्लिष्टाः) "नक्लिष्टा अक्लिष्टाः" सुखी हों मनुष्य जिन से।

भावार्थ—(अगले सूत्र में लिखीहुई पांच वृत्तियां) दुःख और सुखको देनेवाली होती हैं ॥५॥

व्या० दे० ह्रा० भा० क्लेशहेतुकाः कर्माशय प्रचये क्षेत्री भूताः क्लिष्टाः ख्यातिविषया गुणाधिकार विरोधिन्योऽक्लिष्टाः क्लिष्ट प्रवाह पतिता अप्यक्लिष्टाः क्लिष्ट छिद्रे ष्वप्य क्लिष्टा भवन्ति अक्लिष्ट छिद्रेषु क्लिष्टा इति तथा जातीयकाः संस्कारा वृत्तिभिरेव क्रियन्ते संस्कारैश्च वृत्तय इति एवं वृत्ति संस्कार चक्रमनि शमावर्तते तदेवं भूतं चित्त मवसिता धिकार मात्म कल्पेन व्यवतिष्ठते प्रलयं वा गच्छती तिताः क्लिष्टाश्चा क्लिष्टाश्च पंचधा वृत्तयः ॥५॥

पदार्थ—(क्लेश हेतु काः) क्लेश अर्थात् दुःख का कारण (कर्माशये) कर्म अर्थात् विहित और निषिद्ध चेष्टाजन्य प्रारब्धादि शब्द वाच्य का जो आशय अर्थात् फल उसके प्रचय अर्थात् उत्पत्ति में (क्षेत्री भूताः) खेत के समान (ख्याति विषया) ख्याति अर्थात् आत्मख्याति वा आत्मविचार "ईश्वर ध्यान" (गुणाधिकार विरोधिन्यः) सत् रजः तमः गुणों के अधिकार विषयग्रहणत्यादि की विरोधी अर्थात् उनसे रहित (अक्लिष्टाः)

---

*वि० तास्र क्लिष्टा क्लिष्ट भेदाभ्यां द्विधाः प्रमाणादि भेदैश्च पंचतय्यः।

यदि मनुष्य को केवल सुख ही सुख रहे और कभी दुःख नही तो वह उस सुख केस्वाद को नहीं जानसक्ता इसलिये वह स्वरूप भी उत्तम है।

अक्लिष्ट कहलाती है (क्लिष्टप्रवाह पतिता) दुखप्रवाह में " उसे रोकने वाली " पतित अर्थात् प्राप्तहुई (अप्यक्लिष्टाः) भी अक्लिष्टवृत्तियां (भवन्ति) होती है (अक्लिष्ट छिद्रेषु) सुख प्रदमर्म में (क्लिष्टाः) दुःखप्रद * होती हैं * (तथा जाती यकाः संस्काराः) उन वृत्तियों के समान संस्कार अर्थात् क्लिष्ट से क्लेश प्रदसंस्कार और अक्लिष्ट से सुख प्रदसंस्कार (वृत्तिभि-रेव क्रियन्ते) वृत्तियों के द्वारा होते हैं (संस्कारैश्च वृत्तयः) और संस्कारों से वृत्तियां उत्पन्न होती है (एवं वृत्ति संस्कार चक्रम्) इस प्रकार से वृत्ति और संस्कारों का चक्र (अनिशम्) रात दिन (आवर्तते) चलता रहता है (तदेवं भूतम् चित्तम्) वह ऐसा। चित्त अर्थात् क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्ति तथा संस्कारों से ग्रस्त चित्त (अव सिता धिकारम्)अस्त होगये हैं अधि-कार जिस के (आत्म कल्पे न) अपने स्वरूप से (व्यवतिष्ठते) स्थित रहता है (प्रलयं वा गच्छति) अथवा लय हो जाता है (क्लिष्टाश्चा क्लिष्टाश्च) क्लिष्ट और अक्लिष्ट दोनो प्रकार की वृत्तियां (पंचधा वृत्तयः(पांच प्रका-रकी हैं।

भावार्थ—क्लिष्टका अर्थ यह है कि क्लेश अर्थात् आधिभौतिक आधिदैवक और आध्यात्मिकदुःखों की हेतु अथवा जिसवृत्ति में संचित क्रियमाण और प्रारब्ध रूप कर्मफल उत्पन्न होते हैं उसे क्लिष्टवृत्ति कहते हैं और जिसमें केवल आत्मख्याति अर्थात् सांसारिक विषयों से विरक्ति पूर्वक ईश्वर का विचार होता है एवं जो वृत्ति गुणाधिकार अर्थात् सतुगुण रजोगुण और तमोगुण के संसर्ग से रहित हो वह अक्लिष्ट कहात है यद्वा जोवृत्ति दुःख प्रवाह के वेग कोरोधकरके प्रकट होती है उसे क्लिष्ट कहते हैं अथवा जो दुःख स्थल में उत्पन्न हो वह क्लिष्ट और जो सुख स्थल उत्पन्न हो वह अक्लिष्ट—जो जैसी वृत्ति होती है उससे वैसाही संस्कार उत्पन्न होता है और पुनः वह संस्कार उसीवृत्ति को उत्पन्न करता है वृत्ति फिर संस्कार को और संस्कार फिर वृत्ति को इसही

प्रकार से यह वृत्ति संस्कार चक्र रात दिन फिरता रहता है और चित्त भी इसही चक्र के अनुसार यदि विवेक वैराग्यादि अक्लिष्ट वृत्ति और संस्कार में स्थित हो जाता है तो अत्यन्तानन्द मोक्षसुख को प्राप्त होता है और यदि काम क्रोध लोभ मोहादि क्लिष्ट वृत्तियों को ग्रहण करलेता है तो महा दुःख स्वरूप प्रलय को प्राप्त होजाता है।

विशेष—यदि कोई प्रश्न करे कि "दृश्य पदार्थ असंख्य हैं उनके योग से चित्त में वृत्तियां उत्पन्न होती हैं तो वृत्ति यां भी असंख्य होनी चाहियें फिर सूत्रकार ने दो वा पांच वृत्ति कैसे लिखी हैं तो इसका यह उत्तर है कि वृत्ति तो असंख्यही हैं परन्तु उनके भेद ५ हैं जिस प्रकार से प्राचीन आर्य्यावर्त निवासी करोड़ों मनुष्य हैं परन्तु उन के मुख्य ४ भेद हैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र।

प्रमाण विपर्य्यय विकल्पनिद्रा स्मृतयः ॥६॥

सू० का पदार्थ (प्रमाण) "प्रमायाः कारणम् करणेल्युट् प्रमाच अबाधितार्थावगाही बोधः" यथार्थ ज्ञान का साधन (विपर्य्यय) मिथ्या ज्ञान (विकल्प) जिसका कल्पित नाम हो परन्तु वस्तु कुछन हो जैसे खपुष्पम् नरशृंगम्' (निद्रा) सोना (स्मृतिः) "स्मरणम् स्मृतिः भावेक्तिः" पूर्व श्रुत वा दृष्टपदार्थ का स्मरण करना।

भावार्थ—पूर्व सूत्र में कही हुई ५ वृत्तियों के यह नाम हैं १—प्रमाणवृत्ति—२ विपर्य्यय वृत्ति—३ विकल्प वृत्ति—४ निद्रा वृत्ति—५ स्मृति वृत्ति।

महर्षि व्यासदेव ने इस सूत्र को सरल समझ कर कुछ भाष्य नहीं किया।
इस सूत्र को व्याकरण की रीती से इतरेतर द्वन्द्व समास कर के एक पद होता है।

तत्रप्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥७॥

सू॰ पदार्थ—(तत्र) "तासु पंचसु वृत्तिषु" उन पांच वृत्तियों में प्रमाण वृत्ति तीन प्रकारकी है (प्रत्यक्षम्, "अक्ष मक्षं प्रतीति प्रत्यक्षम्" इन्द्रियों के द्वारा जो ज्ञान होता है (अनुमान) "अनुपश्चा मीयते ऽनेनेत्यनुमानम्" प्रत्यक्ष के अनन्तर जिसके द्वारा ज्ञान होता है उसे अनुमान कहते हैं (आगमः) आसमन्ता द्गम्यते बुध्यते ऽनेनेत्यागमः शब्दः" भलीप्रकार समझा जाय जिसके द्वारा उसे आगम कहते हैं ॥७॥

सू॰ भावार्थ—पूर्वोक्त पांच वृत्तियों मेंसे प्रमाण वृत्ति ३ प्रकारकी है १ प्रत्यक्ष—२ अनुमान—३ आगम— ॥७॥

व्या॰ सू॰ भा॰ —इन्द्रियप्रणालिकया चित्तस्य बाह्य वस्तू परागात् तद्विषया सामान्य विशेषा त्मनोर्थस्य विशेषा वधारणं प्रधाना वृत्तिः प्रत्यक्षं प्रमाणं फल मविशिष्टः पौरुषेय श्चितवृत्ति बोधः बुद्धेः प्रति संवेदिपुरुषः इत्यु परिष्टा दुपपाद यिष्यामः अनुमे यस्यतुल्य जातीये ष्वनुवृत्तो भिन्नजाती येभ्यो व्यावृत्तः सम्बन्धोय स्तद्विषया सामान्या वधारण प्रधान वृति रनुमानम् यथा देशान्तर प्राप्तेर्गति मच्चन्द्रतारकं चैत्रवत् विन्ध्यश्चा प्राप्तिर गतिः, आप्तेन दृष्टो नुमितो वा र्थः परत्रस्व बोधसं क्रान्तये शब्दे नो पदिश्यते शब्दा त्तदर्थं विषया वृत्तिः श्रोतुरागमः यस्य अश्रेयार्थो वक्ताना दृष्टा नुमितार्थः स आ- गमः प्लवते मूलवक्त रितुदृष्टा नुमितार्थो निर्विप्लवस्यात् ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्रिय प्रणालिकया) "इन्द्रियाणां प्रणालिका तये न्द्रिय प्रणालिकया" ज्ञान इन्द्रियों के मार्ग से (बाह्य वस्तू परागात्) बाह्य अर्थात् सांसारिक पदार्थों की प्रीती से (तद्विषया) उसके लिये (सामान्य विशेषात्मनोऽर्थस्य) उस सामान्य अथवा विशेष पदार्थ और चित्त के संबन्ध को (विशेषा वधारणम्) अच्छी प्रकार से जो निश्चयात्मक निर्णय करना है (प्रधाना वृत्तिः) वह मुख्य वृति (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष कहलाती है (अनुमेयस्य) "अनुमातुं योग्य मनुमेयम् तस्य" जिस वस्तु का अनुमान किया जाता है उसे अनुमेय कहते हैं उस अनुमेय को (तुल्य जातीये ष्वनुवृत्तः) एक जाती वाले पदार्थों में युक्त करनेवाला (भिन्न जातीये भ्यो व्यावृत्तः) भिन्न जाति वाले पदार्थों से प्रथक् करने वाला जो सम्बन्ध है उस सम्बन्ध का जिस वृत्ति के द्वारा (सामान्या वधारण प्रधान वृत्ति रनुमान्) सामान्य रीति से विचार किया जाय उसे अनुमान प्रमाण कहते हैं (यथा) जैसे (देशान्तर प्राप्तेः) देशान्तर अर्थात् एक स्थल से दूसरे स्थल में चलेजाने के कारण से (गतिमच्चन्द्र तारकम्) चन्द्रमा तथा समस्त तारादि लोक चलने वाले हैं (चैत्रवत्) चैत्र नामक पुरुष के समान (विन्ध्यश्चा प्राप्तिर गतिः) और विन्ध्य नामक पर्वत की अन्य देशों में अप्राप्ति है इसलिये वह गमन क्रिया रहित है (आप्ते न दृष्टो नुमितो वार्थः) आप्त अर्थात् सत्यवक्ता धर्म तत्ववेता और सत्योपदेष्टा पुरुषने जिस विषय को देखा वा जिसका अनुमान किया है (परत्र) "परस्मिन्निति परत्र समस्या स्थल" दूसरे मनुष्य में (स्वबोध संक्रान्तये) "स्वस्य बोधः स्वबोधः स्वबोधस्य संक्रान्ति स्तस्यै" निज ज्ञान प्रदान के लिये (शब्दे नो पदिश्यते) शब्द द्वारा जो उपदेश किया जाता है (शब्दा-त्तदर्थ विषया वृत्तिः) वह आगमवृत्ति कहलाती है ॥७॥

भावार्थ—पूर्व सूत्र में कही हुई प्रमाण वृति तीन प्रकार की है १ प्रत्यक्ष—२ अनुमान—३ आगम जिस में इन्द्रिय द्वारा चित्त की

वृत्ति बाहर निकल कर बाह्य वस्तुओं से संयोग करके आत्मा को उस पदार्थ का विशेष ज्ञान कराती है उसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है, अनुमेय (जिसका अनुमान किया जाता है) पदार्थ को समान जाती वालों में मिलाने वाले और भिन्न जातीय पदार्थों से पृथक करनेवाले सम्बन्ध को प्रकाश करने वाली प्रधान वृत्ति को अनुमान कहते हैं चन्द्र और तारा आदि चलते हैं। क्योंकि एक स्थल से दूसरे स्थल पर जाना बिना चलने के सिद्ध नहीं हो सक्ता इस्से चैत्रनामा पुरुष के समान सूर्य्यादि सब लोक चलते हैं एवं विन्ध्याचल गति शून्य है क्योंकि सदा एकही स्थलमें रहता है—आप्त अर्थात् धर्म्माधर्म्म तथा सत्य के विवेकी सज्जन महर्षि जो अच्छीप्रकार से देखकर वा अनुमान करके परोपकार के निमित्त उपदेश करते हैं उसका नाम आगम प्रमाण है ॥७॥

विपर्य्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥८॥

पदार्थ—(विपर्य्ययः) "अतथा भूतेर्थे तथा भूततयो त्पादनम् विपर्य्ययः असद्रूत्यर्थः" जो पदार्थ के सत्यरूप को छिपादे उसे विपर्य्यय कहते हैं (मिथ्याज्ञानम्) झूठाज्ञान (अतद्रूप प्रतिष्टम) "तस्यरूपं तद्रूपं नतद्रूप मतद्रूपम् अतद्रूपे प्रकर्षेण तिष्ठतीत्य तद्रूप प्रतिष्ठम् अर्थाद्यस्यया इदं पारमार्थिकं रूपं तद्वै परीत्येन तिष्टति" जिस के द्वारा पदार्थ अपने पारमार्थिक रूप से भिन्नरूप में भान हो ॥८॥

भावार्थ—मिथ्याज्ञान अर्थात् जिस से पदार्थ का परमार्थिक रूप नभान हो उसे विपर्य्यय वृत्ति कहते हैं ॥८॥

विशेष—अनुमान में ४ पदार्थ आवश्यक होतेहैं पक्ष—साध्य—हेतु और उदाहरण जो विश्वनाथ भट्टाचार्य ने अपने सिद्धान्त मुक्तावल्यादि ग्रंथों में पंचावयव वाक्य को अनुमान माना है वह केवल हटमात्र है क्योंकि हेतुसे पृथक् कोई पदार्थ व्याप्ति सिद्धनही होसक्ती ॥

व्या० भा०—स कस्मान्नप्रमाणं यतः प्रमाणेन बाध्यते भूतार्थ विषयत्वात् प्रमाणस्य तत्र प्रमाणेन बाधनमप्रमाणस्य दृष्टं तद्यथा द्विचन्द्र दर्शनं सद्विषयेणैकचन्द्र दर्शनेन बाध्यते सेयं पञ्चपर्वा भवत्यविद्या—अविद्यास्मिता रागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशा इति एतएव स्वसंज्ञाभि स्तमो मोहो महा मोहस्ता मिस्रोऽन्धतामिस्र इति एते चित्तमल प्रसंगे नाभिधास्यन्ते ॥८॥

पदार्थ—(सः) वह (कस्मात्) किस कारण से (नप्रमाणम्) प्रमाण नहीं है यतः) जिसकारण से (प्रमाणेन) प्रमाण से (बाध्यते) खंडित हो जाता है (भूतार्थ विषयत्वात्) भूत उक्तप्रमाणों में इसका विषय कथित होजाने के कारण से भी (प्रमाणस्य) प्रमाण का (तत्र) उक्त तीनो प्रमाणो में (प्रमाणेन) प्रमाण द्वारा (बाधनम्) खंडन होना (अप्रमाणस्य, अप्रमाण का (दृष्टम्) देखागया हैं (तद्यथा) जैसे (द्विचन्द्रदर्शनम्) दोचन्द्रमाओं का देखना (सद्विषयेन) "अस्तीतिसत् सती विषयस्त द्विरस्तेन" वर्तमान (एकचन्द्रदर्शनेन) एकचन्द्रमा के देखने से (बाध्यते) खंडित हो जाता है (सेयं) वही विपर्य्यय पांचभेद वाली (भवत्य विद्या) अविद्या है (अविद्यास्मिता राग द्वेषा भिनिवेशाः क्लेशा इति) पांचभेद यह है अविद्या अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश (एतएव) यही अविद्या के पांच भेद (स्वसंज्ञाभिः) अपने नामो के द्वारा (तमो मोहो महामोह स्तामिस्रांधता मिस्रइति) तम मोह महा मोह तामिस्र और अंधतामिस्र कहलाते हैं (एते) ये (चित्त मलप्रसंगे) चित्तके मल वर्णन के प्रसंग में (अभिधास्यन्ते) कहेजायं गे ॥८॥

विशेष—किसी२ शास्त्रकार ने ८ प्रमाण माने हैं और किसी२ने चार प्रमाण स्वीकार किये हैं परन्तु वे सब इन्हि तीन प्रमाणो में अन्तर्भूत होजाते हैं जैसे उपमान प्रमाण प्रथम उपदेश समय में शब्द प्रमाण का विषय और पश्चात् अनुमान प्रमाण का विषय हो जाता है इसलिये महर्षि पतंजलि ने उपमान प्रमाण को भिन्न ग्रहण नहीं किया।

प्रत्यक्ष प्रमाण ज्ञानेन्द्रियों के भेद से५ प्रकारका है १ चाक्षुष प्रत्यक्ष—२श्रावण प्रत्यक्ष—३रासन प्र० ४ घ्राणज प्र०—और त्वाचप्र०।

शब्द ज्ञानानूपाती वस्तु शून्यो विकल्पः ६

सू० का पदार्थ —(शब्द ज्ञानानुपाती) "ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानम् शब्दानां ज्ञानम् शब्द ज्ञानमनुपश्चात् पतत्यनेनेत्यनुपातः अनुपातोस्य-स्येत्यनुपाती" अर्थात् शब्दज्ञान मात्रही जिसमें सार है (वस्तुशून्यः) जिसमें ज्ञेय पदार्थ कुछ न हो (विकल्पः) उसे विकल्प कहते हैं ॥ ९ ॥

सू॰ का भा॰—शब्द मात्र से जिसका भान होता है परन्तु जिसमें ज्ञेय पदार्थ कुछ भी न हो—जैसे "वन्ध्या पुत्रोयाती" वांझ का लड़का जाता है इस वचन से मालुम होता है कि कोई पुरुष जाता है परन्तु यथार्थ में वन्ध्या का पुत्र नहीं हो सक्ता और जिसके पुत्र होगा वह वन्ध्या नहीं हो सक्ती इसलिये क्रिया आधार विना रह नहीं सक्ती ॥ ९ ॥

व्या॰दे॰कृ॰॥ सनप्रमाणोपारोहीन विपर्य्ययोपारोहीच वस्तुशून्यत्वेपि शब्दज्ञानमाहात्म्य निबन्धनोव्य वहारोदृश्यते तद्यथा चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमिति यदा चितिरेव पुरुषस्तदा किमत्र केनव्यप दिश्यते भवतिचव्यपदेशेवृत्तिः यथा चैत्र स्यगौरिति तथाप्रतिषिद्ध वस्तु धर्म्मानिष्क्रियः पुरुषःतिष्ठति वाणः स्थास्यति स्थित इति गतिनिवृत्तौ धात्वर्थमात्रं गम्यते तथानुत्पत्ति धर्म्मा पुरुष इति उत्पत्ति धर्म्मस्याभाव मात्र मवगम्यते न पुरुषान्वयो धर्म्मः तस्माद्विकल्पितः सधर्म्म स्तेनचास्ति व्यवहार इति ॥ ९ ॥

व्या० दे० ह्र० भा० का पदार्थ—(स) वह सूत्रोक्त विकल्प (न प्रमाणो पारोहीन विपर्य्ययोपारोही) प्रमाण सुपरह्यत इति प्रमाणोपारोही विप र्य्ययमुपरोह्यत विपर्य्ययपारोही वह विकल्प न प्रमाण ज्ञान और नविपर्य्य य ज्ञानहै अर्थात् संशयात्मकज्ञान (वस्तुशून्यत्वेपि) ज्ञेयपदार्थ न रहने पर भी (शब्दज्ञानमाहात्म्य निबन्धनो व्यवहारो दृश्यते) केवल शब्द ज्ञानके प्रभावसे जिसमें व्यवहार प्रयोग होता है—(तद्यथा) जैसे (चैतन्यम्) "चेतति सम्यक्जानाति प्राणीनां शुभाशुभ कर्म्माणीतिचेतन स्तितिर्य्यच् चेतनस्य भावश्चैतन्यम् भावे स्वार्थेवाष्यञ्" चेतनता – (पुरुषस्य स्वरूपम्) "पुरिशेते इति पुरुषः" पुरुष अर्थात् परमेश्वर (यदा) जब (चितिरेव पुरुषः) ज्ञानही पुरुष है (तदा) तब (किमत्र) कौन सा पदार्थ (केन) किसके द्वारा (व्यपदिश्यते) मुख्य व्यवहार किया जाता है (भवतिच व्यपदेशे वृत्तिः) व्यपदेश अर्थात् मुख्य व्यवहार में वृत्तिही निश्चित है (यथा) जैसे (चैत्रस्य गौः) चैत्रनामक पुरुषकी गौ है (तथा) तैसे ही (प्रतिषिद्ध वस्तु धर्म्मा) निवारित वस्तु अर्थात् अल्पदेशी अल्प व्यापक वस्तुओं के गुण से भिन्न गुणवाला (निष्क्रियः) क्रिया रहित (पुरुषः) परमेश्वर है (तिष्ठति वाणः) वाण रक्खा है (स्थास्यति) रक्खा जायगा (स्थितः) रक्खा था (गति निवृत्तौ) गमन रहित होने से (धात्वर्थमात्र गम्यते) धातु का केवल अर्थही समझाता है (तथा) ऐसे ही (अनुत्पत्ति धर्म्मा उत्पत्ति धर्म्मः स्याभावमात्रम्) जन्म लेने के गुण से रहित परमेश्वर है। केवल उत्पत्ति का अभावही (अवगम्यते) समझा जाता है (न) नहीं (पुरुषान्वयी धर्मः) परमेश्वर के सब गुण नहीं समझे जाते हैं (तेन विकल्पितस्स धर्मः) इस्से वह गुण अर्थात् परमेश्वर की उत्पत्ति मिथ्या हुई (तेनचास्ति व्यवहारः) इससे उत्पत्ति रहित परमेश्वर है ऐसा ध्यानादि व्यवहार करना उचित है ॥ ९ ॥

भा० का भा०—यह विकल्प वृत्तिभी प्रमाण अर्थात् यथार्थ ज्ञान का साधन नहीं है क्योंकि मिथ्या ज्ञान और भ्रम उत्पन्न करने वाली

यह वृत्ति है और इस वृत्ति में केवल शब्द का ही चातुर्य है जैसे परमेश्वर का स्वभाव चैतन्य है —इस शब्द को सुन कर कोई कहे कि ज्ञान से भिन्न ईश्वर कोई नहीं है और वह ज्ञान जीव का गुण है बस ईश्वर की असिद्धि है इसे विकल्प कहते हैं परन्तु इसका यह अभि-प्राय नहीं है उक्त वचन का अभिप्राय यह है कि चैतन्य वृत्ति वाला परमेश्वर है अर्थात् जड़ प्रकृति से भिन्न है यहां पुरुष की चेतनता का वृत्ति और वृत्तिमान् होने से स्व स्वामीभाव सम्बन्ध है — जैसे चैत्र की गौ यहांपर गौ का और चैत्रका स्व स्वामीभाव सम्बन्धहै कहीं २ कालभेद से क्रिया की एकता में भी विकल्प होताहै जैसे बाण रक्खा है बाण रखा जायगा-बाण रक्खा था-इन वाक्यों में केवल कालकृत् विकल्प है परन्तु वक्ता का अभिप्राय केवल धात्वर्थ से है ॥ ९ ॥

अभाव प्रत्ययालम्बनावृत्तिर्निद्रा ॥ १० ॥

सू० का प० (अभाव प्रत्ययालम्बना) "प्रतीयतेऽनेनेतिप्रत्ययः अभावस्य प्रत्ययः अभाव प्रत्ययः अभाव प्रत्ययमालम्बते इत्य भाव प्रत्यया लम्बना" अभावकी समता को जो आश्रय करे (वृत्तिः) वृति (निद्रा) "द्रातिद्रतिद्रा निर्गताद्रायस्या सा निद्रा—द्रातेरङ् उक्तं च यदातुमन सिलान्ते कर्मा त्मानः क्लमान्विताः विषयेभ्यानि वर्त्तन्ते तदास्वपिति मानवः" निर्गत अर्थात् शारीरक विषय प्रसक्ति जिस वृत्ति में दूर हो जाती है उसे निद्रा कहते हैं ॥ १० ॥

सू० का भा०—अभाव अर्थात् ज्ञानाभाव को जो आश्रय करे उसे निद्रा कहते हैं अर्थात् अविद्याग्रस्त वृत्ति को निद्रा कहते हैं।

व्या० दे० कृ० भाष्य—साचसंप्रबोधे प्रत्यवमर्शात् प्रत्यय वि-

व्या० दे० ग्रा० भा० का पदार्थ—(स) वह सूत्रोक्त विकल्प (न प्रमाणो पारोहीन विपर्य्ययोपारोही) प्रमाण मुपरुह्यात इति प्रमाणोपारोही विपर्य्ययमुपरोह्यत विपर्य्ययपारोही वह विकल्प न प्रमाण ज्ञान और नविपर्य्यय ज्ञानहै अर्थात् संशयात्मकज्ञान (वस्तुशून्यत्वेपि) ज्ञेयपदार्थ न रहने पर भी (शब्दज्ञानमाहात्म्य निबन्धनो व्यवहारो दृश्यते) केवल शब्द ज्ञानके प्रभावसे जिसमें व्यवहार प्रयोग होता है—(तद्यथा) जैसे (चैतन्यम्) "चेतति सम्यक्जानाति प्राणीनां शुभाशुभ कर्म्माणीतिचेतन स्तितिर्य्यच् चेतनस्य भावश्चैतन्यम् भावे स्वार्थेवाष्यञ्" चेतनता—(पुरुषस्य स्वरूपम्) "पुरिशेते इति पुरुषः" पुरुष अर्थात् परमेश्वर (यदा) जब (चितिरेव पुरुषः) ज्ञानही पुरुष है (तदा) तब (किमत्र) कौन सा पदार्थ (केन) किसके द्वारा (व्यपदिश्यते) मुख्य व्यवहार किया जाता है (भवतिच व्यपदेशे वृत्तिः) व्यपदेश अर्थात् मुख्य व्यवहार में वृत्तिही निश्चित है (यथा) जैसे (चैत्रस्य गौः) चैत्रनामक पुरुषकी गौ है (तथा) तैसे ही (प्रतिषिद्ध वस्तु धर्म्मा) निवारित वस्तु अर्थात् अल्पदेशी अल्प व्यापक वस्तुओं के गुण से भिन्न गुणवाला (निष्क्रियः) क्रिया रहित (पुरुषः) परमेश्वर है (तिष्ठति वाणः) वाण रक्खा है (स्थास्यति) रक्खा जायगा (स्थितः) रक्खा था (गति निवृत्तौ) गमन रहित होने में (धात्वर्थमात्रं गम्यते) धातु का केवल अर्थही समझाता है (तथा) वैसे ही (अनुत्पत्ति धर्म्मा उत्पत्ति धर्म्मः स्वाभावमात्रम्) जन्म लेने के गुण से रहित परमेश्वर है। केवल उत्पत्ति का अभावही (अवगम्यते) समझा जाता है (न) नहीं (पुरुषान्वयी धर्मः) परमेश्वर के सब गुण नहीं समझे जाते हैं (तेन विकल्पितस्स धर्मः) इससे वह गुण अर्थात् परमेश्वर की उत्पत्ति मिथ्या हुई (तेनचास्ति व्यवहारः) इससे उत्पत्ति रहित परमेश्वर है ऐसा ध्यानादि व्यवहार करना उचित है ॥ ९ ॥

भा० का भा०—यह विकल्प वृत्तिभी प्रमाण अर्थात् यथार्थ ज्ञान का साधन नहीं है क्योंकि मिथ्या ज्ञान और भ्रम उत्पन्न करने वाली

यह वृत्ति है और इस वृत्ति में केवल शब्द का ही चातुर्य्य है जैसे परमेश्वर का स्वभाव चैतन्य है—इस शब्द को सुन कर कोई कहे कि ज्ञान से भिन्न ईश्वर कोई नहीं है और वह ज्ञान जीव का गुण है बस ईश्वर की असिद्धि है इसे विकल्प कहते हैं परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है उक्त वचन का अभिप्राय यह है कि चैतन्य वृत्ति वाला परमेश्वर है अर्थात् जड़ प्रकृति से भिन्न है यहां पुरुष की चेतनता का वृत्ति और वृत्तिमान् होने से स्व स्वामीभाव सम्बन्ध है—जैसे चैत्र की गौ यहांपर गौ का और चैत्रका स्व स्वामीभाव सम्बन्धहै कहीं २ कालभेद से क्रिया की एकता में भी विकल्प होताहै जैसे वाण रक्खा है वाण रक्खा जायगा-वाण रक्खा था-इन वाक्यों में केवल कालकृत् विकल्प है परन्तु वक्ता का अभिप्राय केवल धात्वर्थ से है ॥ ९ ॥

अभाव प्रत्ययालम्बनावृत्तिर्निद्रा ॥ १० ॥

सू० का प० (अभाव प्रत्ययालम्बना) "प्रतीयतेऽनेनेतिप्रत्ययः अभावस्य प्रत्ययः अभाव प्रत्ययः अभाव प्रत्ययमालम्बते इत्य भाव प्रत्यया लम्बना" अभावकी समता को जो आश्रय करे (वृत्तिः) वृत्ति (निद्रा) "द्रातिद्रतिद्रा निर्गताद्रायस्या सा निद्रा—द्रातेरङ् उक्तं च यदातुमन सिक्लान्ते कर्म्मा त्मानः क्लमान्विताः विषयेभ्यानि वर्त्तन्ते तदास्वपिति मानवः" निर्गत अर्थात् शारीरक विषय प्रसक्ति जिस वृत्ति में दूर हो जाती है उसे निद्रा कहते हैं ॥ १० ॥

सू० का भा०—अभाव अर्थात् ज्ञानाभाव को जो आश्रय करे उसे निद्रा कहते हैं अर्थात् अविद्याग्रस्त वृत्ति को निद्रा कहते हैं।

व्या० दे० कृ० भाष्य—साचसंप्रबोधे प्रत्ययमर्शात् प्रत्यय वि-

यिषः कथं सुखमहमस्वाप्सं प्रसन्नं मेमनः प्रज्ञामे विशारदी करोतिः दुःखमहमस्वाप्सं स्त्यानंमेमनो भ्रमत्यन वस्थितं गाढ़ं मूढ़ो ह्मस्वाप्सं गुरूणि मे गात्राणि क्लान्तं मे चित्त-मलसंसुषित मिवतिष्ठतीति सखल्वयं प्रबुद्धस्य प्रत्यवमर्शो नस्यात्असति प्रत्योयानु भवेतदाश्रिताः स्मृतयश्च तद्विषया नस्युःतस्मात्प्रत्यय विशेषो निद्रा साच समाधावितर प्रत्ययवन्निरोद्ध व्येति ॥ १० ॥

व्या० दे० ऋ० भा० का पदार्थ—(साच) और वह निद्रा (सम्प्रबोधे) जाग्रत हो जाने पर (प्रत्यवमर्शात्) निद्रावस्था के विचारने से (प्रत्यय विशेषः) "प्रतीयतेऽनेनेति प्रत्ययो ज्ञानम् प्रति पूर्वकादि एधातोरच्" ज्ञान विशेष है (कथम्) यदि वह प्रत्यय विशेष न हो तो जागने पर यह बोध कैसे हो सक्ता (सुख महम स्वाप्सम्) मैं आनन्द से सोया (प्रसन्नं मे मनः) मेरा मन प्रसन्न है (प्रज्ञामे विशारदी करोति) "सद्य बुद्धिः श्रेष्ठं करोति" बुद्धि मुझे उत्तम बनाती है अर्थात् मेरी बुद्धि निर्मल है (दुःख महम स्वाप्सम्) मैं दुःख पूर्वक सोया (स्त्यानम्मे मनः) "स्त्यायतेऽनेनेतिस्त्यानमालस्यम् स्त्यैशब्दसंघाते" मेरामन आलस में हो रहाहै (भ्रमति) घूमता है (अनवस्थितम्) "अनवस्थासंजातायस्येत्यनवस्थितम्" अनवस्थित अर्थात् विचारशून्य होरहा है (गाढ़म्) अत्यन्त (मूढ़ोहमस्वाप्सं) "मुह्यते सोमूढ़ः" वेसुधमें सोया (गुरूणिमेगात्राणि) मेरे अंग भारी हो रहेहैं (क्लान्तम्मे चित्तम्) "क्लमग्लानावित्यस्मात्क्तम्मणिताः" मेरा चित्त थक रहाहै (अलसंमुषितमिव तिष्ठती) आलसयुक्त और अपहृत (चराये हुये की समान) जनवत् होरहा है (सखल्वयंप्रबुद्धस्य प्रत्यवमर्शोनस्यात्)

वह निद्रा यदि प्रत्यय न हो तो नीन्द से जागे मनुष्य को उक्त प्रकार के ज्ञान नहीं (असतिप्रत्ययानुभवे) यदि उस ज्ञान का अनुभव न हो तो (तदाश्रिताः) उस अनुभव के आश्रित (स्मृतयो तद्विषयानस्युः) स्मृति भी न होनी चाहिये (तस्मात्) इसहेतु से (प्रत्ययविशेषोनिद्रा) निद्रा भी अभाव ज्ञान है (साच) और वह निद्रावृत्ति भी (समाधौ) समाधि अर्थात् योग में (इतर प्रत्ययवन्निरोद्धव्येति) और वृत्ति के समान त्यागनी चाहिये ॥ १० ॥

व्या०टे०स०भा० का भा०—निद्रावृत्ति काभी जाग्रत होने पर विशेष विचार किया जाताहै इस लिये वहभी एक प्रकारका ज्ञानहै यदि वह ज्ञान न होता तो—"मैं आज सुखसे सोया इससे मेरा मन प्रसन्न है मेरी बुद्धि स्वच्छ है यद्वा मैं दुःख से सोया इस से मेरा मन आलस में हो रहा है और मत्त के समान घूम रहा है" यह विचार भी न होता, क्यों कि अज्ञान से अनुभव नहीं होता और अनुभव के विना स्मृति नहीं होती इससे सिद्ध होता है कि निद्रा जाग्रत् अवस्था के दृष्ट वा श्रुत पदार्थ ज्ञान के अभाव ज्ञान को कहते हैं ॥ १० ॥

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ॥ ११ ॥

सू० का पदार्थ—(अनुभूत विषयासम्प्रमोषः) अनुभूयते इनेरि त्यनुभूतं कर्मणिक्तः अनुभूतानां विषयानामसंप्रमोषः" अनुभूत अर्थात् जिन विषयों का चित्त द्वारा वा इन्द्रिय द्वारा अनुभव किया गया हो उनका जो असम्प्रमोष अर्थात् ध्यान (स्मृतिः) उसे स्मृति कहते हैं ॥ ११ ॥

सू० का भाव०—अनुभूत पदार्थों के पुनर्विचार को स्मृति कहते हैं ॥ ११ ॥

व्या०भाष्य—किं प्रत्ययस्य चित्तंस्मरति आहोस्वित् विषयस्येति ग्राह्योपरक्तः प्रत्ययोग्राह्य ग्रहणो भयाकार निर्भासः तथा जातियकं संस्कारमारभते संस्कारः स्वव्यंज कांजनः तदाकारा मेवग्राह्य ग्रहणो भयात्मिकां स्मृतिं जनयति तत्र ग्रहणाकार पूर्वावुद्धिः ग्राह्याकार पूर्वास्मृतिः साच द्वयी भावितस्मर्त्तव्याचा भावितस्मर्त्तव्याच स्वप्ने भावित स्मर्त्तव्या जागृत समयेत्वभावितस्मर्त्तव्येति सर्व्वास्मृतयः प्रमाण विपर्य्यय विकल्प निद्रा स्मृतीनामनुभवात् प्रभवन्ति सर्व्वाश्चैतावृत्तयः सुख दुःख मोहात्मिकाः सुख दुःख मोहाश्च क्लेशेषु व्याख्येयाः सुखानु शयीरागः दुःखानुशयी द्वेषः मोहः पुनरविद्येति एताः सर्व्वावृत्तयो निरोद्धव्या आसां निरोधे सम्प्रज्ञातो वा समाधिर्भवति असंप्रज्ञातो वेति अथासां निरोधेकउपाय इति ॥ ११ ॥

व्या०दे०कृ०भा०का पदार्थ—(किम्) क्या ? (प्रत्ययस्य) बोधका (चित्तम्) चित्त (स्मरति) स्मरण करता है (आहोस्वित्) वा (विषयस्येति) विषय का (ग्राह्योपरक्तः प्रत्ययः) "ग्रहीतुमर्हम् ग्राह्यम् उपरज्यतेयः सोपरक्तः ग्राह्येषूपरक्तः ग्राह्योपरक्तः" ग्रहण करने योग्य विषयों में जो प्रसन्नता पूर्वक बोध होता है उसे प्रत्यय कहते हैं वह प्रत्यय अथवा (ग्राह्यग्रहणो भयाकार निर्भासः) ग्राह्य जो विषय और ग्रहण अर्थात् जिन के द्वारा पदार्थ ग्रहण किया जाता है वह प्रमाण यह दोनो (तथा जातीयकं संस्कारमारभते) अपने समान संस्कार को उत्पन्न करते हैं (संस्कारः

सव्यञ्जनाञ्जनः) संस्कार नेत्राञ्जन की समान (तदाकारामेव) अपने समान ही (ग्राह्यग्रहणोभयात्मिकां) अनुभूत विषय तथा उस के ज्ञान की (स्मृतिं जनयति) स्मृतिको उत्पन्न करताहै (तत्र ग्रहणाकार पूर्वाबुद्धि) परन्तु उस स्मृति में भी बोधरूप बुद्धि है अर्थात् जो विषय ग्रहण का ज्ञान होता है वह बुद्धि है (ग्राह्याकारपूर्वास्मृतिः) और ग्राह्य विषय का जो स्मरण है वह स्मृतिहै (साचद्वयी) "द्वावय ववौयस्या साद्वयी" और दोनों बुद्धि और स्मृति (भावितस्मर्तव्याचा भवितस्मर्तव्याच) दो दो प्रकारकी हैं भावितस्मर्तव्य और अभावितस्मर्तव्यभेदसे (स्वप्नेभावित स्मर्तव्या) स्वप्नावस्था में जो जाग्रत् अवस्था के अनुभूत पदार्थों की स्मृति होती है वह भावित स्मर्तव्यास्मृति और बुद्धि कहलाती है (जाग्रत् समयेत्व भावितस्मर्तव्येति) जाग्रत् अवस्था में जो स्वप्नावस्था के पदार्थों की स्मृति होती है उसे अभावित स्मर्तव्या स्मृति कहते हैं (सर्वास्मृतयः) सब स्मृति (प्रमाणविपर्य्यय विकल्पस्मृतीनामनु भवात् प्रभवन्ति) इन पांचो वृत्तियों के अनुभव से होती हैं (सर्वाश्चैतावृत्तयः) और यह सब वृत्तियां (सुख दुःख मोहात्मिकाः) सुख दुःख तथा मोह रूप ही हैं (सुखदुःखमोहाश्च क्लेशेषु व्याख्येयाः) सुख दुःख तथा मोहका वर्णन पांच क्लेशों के वर्णन में किया जायगा। (सुखानुशयीरागः) सुखके निमित्त जिस में प्रवृत्ति होती है उसे राग कहते हैं (दुःखानुशयीद्वेषः) दुःख के निमित्त जिस में प्रवृत्ति होती है उसे द्वेष कहते हैं यद्यपि अनुशयोशब्द का अर्थ धात्वर्थ के अनुसार पश्चात्ताप होता है परन्तु प्रकरणवश यहां निमित्तार्थ करनाही युक्त है (मोहः पुनरविद्येति) "मुह्यत्यनेति मोहः" मोह अविद्या को कहतेहैं (एताःसर्वावृत्तयो निरोद्धव्याः) योगी को उचित है कि इन सब वृत्तियों का निरोध करे (आसां निरोधे सम्प्रज्ञातो वा समाधिर्भवत्य सम्प्रज्ञातो वा) इन वृत्तियों के निरोध हो जानेके पश्चात् सम्प्रज्ञात वा असम्प्रज्ञात योग हो सक्ता है क्योंकि जब तक वृत्तियां निरुद्ध न होंगी तब तक और मनुष्योंके समान

ही योगीभी रहताहै किन्तु उस की योग संज्ञाभी अनुचित ही है ॥११॥

व्या० दे० ह० सा०का भावार्थ—सूत्रकार ने जो स्मृति का यह लक्षण किया कि अनुभूत विषयों के पुनर्विचार को स्मृति कहते हैं इसमें यह शङ्का होती है कि चित्त पदार्थ का स्मरण करता है वा पदार्थज्ञान का? यदि पदार्थ का ही स्मरण करता है तो बिना पदार्थज्ञान के स्मरण होना असंभव है क्योंकि स्मरण में तीनही कारण होते हैं राग द्वेष वा मोह इन तीनों में से राग उसे कहते हैं जो सुख निमित्त हो और द्वेष वह है जो दुःख निमित्तक हो जैसे "देवदत्तः पितरं स्मरति" देवदत्त अपने पिता का स्मरण करता है ॥ ११ ॥

विशेष—समाधिपाद के प्रथम सूत्र की व्याख्या में भाष्यकार ने कहा था कि "सर्व वृत्ति निरोधेत्व संप्रज्ञातः समाधिः" अर्थात् समस्त वृत्तियों के निरोध होने पर असंप्रज्ञात योग होता है और इस ११ वें सूत्र के भाष्य में लिखते हैं कि "एताः सर्वा वृत्तयोनिरोद्धव्या आसांनिरोधे सम्प्रज्ञातोवा समाधिर्भवत्य सम्प्रज्ञातोवा" अर्थात् इन पांच वृत्तियों के निरोध होने ही पर सम्प्रज्ञात वा असम्प्रज्ञात योग होता है ये दोनों वा क्या परस्पर विरुद्ध हैं क्योंकि संप्रज्ञात योग जो चार प्रकार का आगे वर्णन करेंगे उसमें विचारानुगत योग में अवश्य किसी विषय का विचार कियाही जायगा ऐसेही वितर्कानुगत में भी किसी विषय का ध्यान रहने ही से उस पर तर्क वितर्क हो सक्ती हैं इससे सिद्ध होता है कि संप्रज्ञात योग वृत्तियों के रहते भी हो सक्ता है फिर भाष्यकार ने अपने भाष्य में पूर्वापर विरोध क्यों लिखा—उत्तर भाष्यकार ने अपने वचन में पूर्वापर विरोध नहीं लिखा केवल समझने वालों की बुद्धि में पूर्वापर विरोध है क्योंकि प्रथम शब्दार्थ को समझना चाहिये अर्थ यह है "युयोगम् योग मित्याहुर्जीवात्मपरमात्मनोः" अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा के मिलाने को योग कहते हैं अर्थात् जो जीवात्मा सांसारिक विषयों में लग रहा है उसे ईश्वरीय विषयों में लगा देने को योग कहते हैं और उस योग के अवान्तर दो भेद हैं एक संप्रज्ञात दूसरा असंप्रज्ञात इनका अर्थ पूर्व लिख भी चुके हैं परन्तु फिर यहां पर लिखना उचितभान होता है इसलिये फिर लिखते हैं "सम्यक् ज्ञायन्ते बुध्यन्ते पदार्था अनेनेति संप्रज्ञातः" भली प्रकार से पदार्थों को जाने जिसके द्वारा उसे सम्प्रज्ञात योग कहते हैं इसहीके अनुसार भाष्यकार ने प्रथम सूत्रके भाष्य में लिखा है "सद्भूतमर्थप्रद्योतयतीत्यादि" अस्तीतिसत् सच्चतद्भूतं सद्भूतं, "भवतीति भूतम्" जगत् में उत्पन्न हुए पदार्थों के अर्थ सत्य रूपको जो प्रकाश करे उसे सम्प्रज्ञात योग कहते हैं।

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः॥ १२

पदार्थ— (अभ्यासवैराग्याभ्याम्) "पौनः पुन्ये नेश्वरकीर्त्तनम भ्यासः" रञ्जनंरागः भावेघञ् विगतो रागो यस्मादिति विरागः विरागस्यभावो वैराग्यम्—ऐहिकामुष्मिकविषयभोगेच्छाराहित्यम्" अभ्यासश्च वैराग्यञ्च अभ्यासवैराग्ये ताभ्याम्" ईश्वरका निरन्तर चिन्तन करनेसे और विषयवासना को त्यागनेसे (तन्निरोधः) "तासां वृत्तीनां निरोधस्तन्निरोधः" पूर्वोक्त पांचों वृत्तियों का निरोध (रोकना) होता है॥ १२॥

भावार्थ—ईश्वरके निरन्तर चिन्तन तथा वैराग्य से उक्त वृत्तियां रुक जाति हैं॥ १२॥

व्या०दे०कृ० भाष्य—चित्तनदी नामो भयतो वाहिनी वहति कल्याणायवहति पापाय च यातु कैवल्य प्राग्भारा विवेकविषय निम्नासा कल्याणवहा संसार प्राग्भाराविवेक विषय निम्ना पाप वहा तत्र वैराग्येण विषय श्रोतः खिलो क्रियते विवेकदर्शनाभ्यासेनविवेकश्रोत उद्घाट्यते इत्युभयो धीन श्चित्तवृत्ति निरोधः॥ १२॥

पदार्थ—(चित्तनदीनाम) "नाम इति प्रसिद्धौ चित्तमेव नदी चित्त नदी चित्ते नदीत्वधर्म्मारोपाद्रूपकालंकारः" चित्तरूप नदी (उभयतो वाहिनी) दोनो ओर से वहनेवाली (वहति कल्याणाय) वहती है कल्याण के लिये (वहति पापाय च) और वहतीहै पापके लिये (यातु) जो (कैवल्य प्राग्भारा विवेक विषय निम्ना) कैवल्य अर्थात् मोक्ष जिसका पर्वताग्रभाग उत्पत्ति स्थान है अर्थात् जैसे ऊंचे स्थल की ओर नदीका वेग नहीं जाता है वैसे ही इस कल्याण वहा चित्तरूप नदी का भी वेग

मोक्ष की ओर नहीं जाता और यह नदी विवेक विषय की ओर नीचीहै इसीलिये अपने वेग से कल्याणरूपी समुद्र में प्राप्त होती है (संसार प्राग्भारा विवेकविषय निम्ना) संसार अर्थात् जगत् जिसकी ऊंची भूमि अर्थात् उत्पत्ति स्थान है और अविवेक जिसका वहने का स्थान नीचा स्थल है (पापवहा) और पाप अधर्मरूपी समुद्र में जाकर मिलतीहै (तत्र) उन दोनो प्रवाहों मेंसे (वैराग्येण) वैराग्य (विषय श्रोतः खिली क्रियते) विषय रूपी नदीको छिन्न भिन्नकर देताहै (विवेक दर्शनाभ्यासेन) विवेक सत्य का विचार तथा दर्शन अर्थात् शास्त्र के अभ्यास से (विवेक श्रोत उद्घाट्यते) विवेकरूपी नदी का प्रवाह खुल जाता है (इत्युभया-धीनश्च वृत्ति निरोधः) इस प्रकार से चित्तरूपी नदी दोनो नहरों के आधीनहै ॥ १२ ॥

भावार्थ—प्रसिद्ध चित्तरूपी नदी की दो धारा हैं एक कैवल्य पहाड़ से निकली है और बिवेक भूमि में वहती हुई कल्याण सागरमें मिलती है दूसरी संसाराचल से निकल कर अबिवेक तथा विषय भूमीमें वहती हुई अधर्म्मसागर में मिल जाती है जब वैराग्यरूपी बांध से विषयभूमि में वहनेवाली धाराको छिन्न भिन्न कर दिया जाता है तब विवेक भूमि में वहनेवाली धारा तीव्र हो जाती है—देखिये जैसे जगत् में गङ्गा आदि नदियों की नहर का जब एक ओरसे तख्तिया लोहे यन्त्र से मार्ग अवरुद्ध (वंद) कर दिया जाता है और उसका जल दूसरी नहरमें छोड़ दिया जाता है तब पहिली नहर (जिसमें तख्ता लगा दिया था) सूखजाती है और दूसरी वहने लगती है इस ही प्रकार से वैराग्यरूपी तख्ते से चित्त नदी की पाप वहा नहर को वन्द करके कल्याण वहा नहरको खोलना निरन्तर ईश्वर चिन्तनरूपी यन्त्र (कल) से होता है इससे चित्तवृत्ति निरोध अभ्यास और वैराग्य के आधीन हैं ॥ १२ ॥

तत्रस्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥ १३ ॥

पदार्थ—(तत्र) तस्मिन्निति तत्रेश्वरे" परमेश्वर में (स्थितौ) तिष्ठति स्थिरं भवति चित्तं यस्यां सा स्थितिस्तस्याम्) चित्त को स्थिर करने में (यत्नोभ्यासः) उत्साह को अभ्यास कहते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ— परमध्येय परमेश्वर में बल और उत्साह पूर्वक चित्त की स्थिति सम्पादनको अभ्यास कहते हैं ॥ १३ ॥

चित्तस्यावृत्तिकस्यप्रशांतवाहितास्थितिः तदर्थः प्रयत्नोवीर्य-मुत्साहः तत्संपिपादयिषयातत्साधनानुष्ठानमभ्यासः ॥१३॥

भा०का०—पदार्थ—(चित्तस्य) चितकी (अवृत्तिकस्य) "आसमन्ताद वृत्तिं विषयेषु चाञ्चल्यं करोति तथा भूतस्य" जो चित्तजीवात्माको अनेक विषयचिन्तनसे अनवस्थित रखताहै (प्रशान्त वाहितास्थितिः) प्रशान्त अर्थात् परमेश्वर के अतिरिक्त और किसी विषय का चिन्तन न करना उस प्रशान्तता को प्राप्त करनेवाली स्थिरता (तदर्थः) "तदेवार्थं प्रयोजनं यस्य सः तदर्थः" उस स्थिरताकेलिये (प्रयत्नः) "प्रकृष्टो यत्नः प्रयत्नः" अत्यन्त उद्योग वा उस स्थिरताके साधनों का सम्पादन करना (वीर्यम्) बल अथवा दृढ़ता (उत्साहः) कभी दुःख प्राप्त होने पर भी चित्तमें ग्लानि न लाना (तत्संपिपादयिषया) उस स्थिर-ताकी सम्पादन अर्थात् प्राप्ति की इच्छासे (तत्साधनानुष्ठानम्) उस के साधन विषयान्तरसे मनो निग्रहादि के प्रयोग करने को (अभ्यासः) अभ्यास कहते हैं ॥ १३ ॥

भा०का०भा० चित्त जो अनेक विषयोंमें चञ्चल रहता है उसकी ईश्वर में अत्यन्त शान्तस्थिति के लिये उद्योग बल अर्थात् दृढ़ता और उत्साह पूर्वक जो उसके साधनोंका अनुष्ठान करना है उसे अभ्यास कहते हैं १३ ॥

स तु दीर्घकालनैरंतर्य्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः ॥ १४

पदार्थ—(सः) वह अभ्यास (दीर्घकालनैरन्तर्य्यसत्कारा सेवितः) "दीर्घश्चासौकालो दीर्घकालः निरन्तरस्यभावो नैरन्तर्य्यम्—सत्क्रियतेऽनेनेति सत्कारः दीर्घकालश्चनैरन्तर्य्यञ्च सत्कारश्चते दीर्घकालनैरन्तर्य्यसत्काराः तैरासमन्तात्सेवितः द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यत इति न्यायेन आसेवित पदस्य सर्वत्रान्वयः" दीर्घकाल तक अभ्यास से अर्थात् बहुत समयतक ईश्वरके ध्यान से निरन्तर अर्थात् आलस्य प्रमाद को परित्याग करके नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य्यसे ईश्वरका ध्यान करना (सत्कारासेवितो—सत्कार अर्थात् श्रद्धापूर्वक ईश्वरके स्मरणसे प्राप्त हुई (दृढ़भूमिः) स्थिर वृत्ति ॥ १४ ॥

भावार्थ—चिरकाल सेवित नियमपूर्वक प्रतिदिन सेवित श्रद्धापूर्वक सेवित स्थिरवृत्ति को अभ्यास कहते हैं ॥ १४ ॥

दीर्घकालासेवितः निरंतरासेवितः तपसाब्रह्मचर्य्येणविद्ययाश्रद्धयाचसंपादितः सत्कारवानदृढ़भूमिर्भवतिव्युत्थानसंस्कारेण द्रागित्येवानभिभूतविषयइत्यर्थः ॥ १४ ॥

व्या०दे०भाष्य०का पदार्थ—(दीर्घकालासेवितः) "दीर्घश्चासौ कालः दीर्घकालः दीर्घकालेन आसमन्तात्सेवितः दीर्घकालासेवितः" बहुतकालतक अभ्यास किया गया (निरन्तरा सेवितः) व्यवधान रहित अर्थात् प्रतिदिन अभ्यास किया गया (तपसा) "तपसन्तापे इत्यस्मादसुन्" क्लेश सहकर धर्म करना निजवर्णाश्रमानुरूप धर्म से (ब्रह्मचर्य्येण) ब्रह्मचर्य्य अर्थात्

ब्रह्मजो वेद उसके ज्ञानसे अथवा ब्रह्मजो परमेश्वर उसकी उपासनासे (विद्यया) वेत्ति पदार्थानां तत्वस्वरूपं यया सा विद्या तया" इनसे ईश्वर पर्य्यन्त सब पदार्थोंके यथार्थ ज्ञानसे (श्रद्धयाच) "श्रत् दधाति यया सा श्रद्धा।" अर्थात् सत्यधारण क्रिया जाय जिससे वह श्रद्धा कहलातीहै अर्थात् सत्यग्राहिणी बुद्धि वा नीति से (सम्पादितः) प्राप्त किया (सत्कारवान् दृढ़ भूमिः) आदरयुक्त दृढ़विश्वास (भवति) होता है (व्युत्थान संस्कारेण) उत्थान रहित संस्कार द्वारा (द्रागित्येवाभिभूतविषयः) शीघ्रही "अभिभूत अभिभवत्य निश्चयं करोत्यभिभूतः न अभिभूतः अनभिभूतः अनभिभूतश्चासौ विषयः अनभिभूतविषयः" निश्चय हो जानेवाला विषय (इत्यर्थः) यही अभिप्राय ॥ १४ ॥

भावार्थ – वह अभ्यास दीर्घकाल अर्थात् बहुत दिनोंतक व्यवधान रहित अर्थात् प्रतिदिन, वा अपने नियत किये हुवे प्रत्येक दिनके भागों में तप, अर्थात् युक्ताहार विहार अथवा अपने वर्णाश्रम के योग्य धर्मानुष्ठानसे ब्रह्मचर्य्य अर्थात् मन और इन्द्रियों को बाह्य विषयों से निरुद्ध करके श्रद्धापूर्वक सेवित होकर दृढ़ होता है ॥ १४ ॥

दृष्टानुश्रविकविषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम् १५

पदार्थ—(दृष्टानुश्रविक विषयवितृष्णस्य) "दृश्यते यत्तत् दृष्टं सांसारिक विषयः आनुश्रविकः गुरुपाठादनुश्रूयत इत्यनुश्रवो वेदस्तस्मिन् विहित इत्यानुश्रविको जन्मान्तरीयम् सुखम् तयोर्दृष्टानुश्रविकयो विगत तृष्णस्य" इस जन्म और दूसरे जन्म में प्राप्त होनेवाले सुख की इच्छा त्याग देने को (वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्) "न वशः अवशः अवशः वशं

करोतीति वशीकारः वशीकारस्य संज्ञा वशीकार संज्ञा" जो वश में न हो उस अवश को जो वश करे उसे वशीकार कहते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ—ऐहिक और आमुष्मिक अर्थात् स्रक् वनितादि ऐहिक और पुनर्जन्ममें अच्छे कुलमें उत्पन्न होना यह आमुष्मिक विषय में जो अत्यन्त तृष्णा उसके निरोध करने को वैराग्य कहते हैं ॥ १५ ॥

स्त्रियोन्नपानमैश्वर्यमिति दृष्टविषयवितृष्णस्य स्वर्गवैदेह्यप्रकृति लयत्वप्राप्तावानुश्रविकविषयेवितृष्णस्य दिव्यादिव्यविषयसंयोगेपि चित्तस्यविषयदोषदर्शिनः प्रसंख्यानबलादनाभोगात्मिका हेयोपादेयशून्या वशीकार संज्ञा वैराग्यम् ॥ १५ ॥

पदार्थ—(स्त्रियोन्नपानमैश्वर्यमिति) सुन्दर स्त्री अन्न उत्तम उत्तम भक्ष्य पदार्थ शीतल जल वा दुग्धादि, ऐश्वर्य्य राज्यादि सुख (दृष्टविषय वितृष्णस्य इन सांसारिक विषयोंमें इच्छा रहित होना (स्वर्गवैदेह्य प्रकृति लयत्व प्राप्तौ) "स्वरितिगीयते यस्मिन्सः स्वर्गः गै शब्दे" अधिक सुख विदेह मुक्ति वा कैवल्यमुक्ति की प्राप्ति में (आनुश्रविक विषये) वेदविहित विषय में (वितृष्णस्य) तृष्णा प्राप्ति की इच्छा विगत अर्थात् दूर हो गई हो जिसकी (दिव्यादिव्य विषय संयोगेपि) दिव्य जन्मान्तरीय सुख वा मोक्षादि और अदिव्य सांसारिक विषयके संयोग अर्थात् प्राप्तिमें भी (चित्तस्य विषयदोषदर्शिनः) सब विषयोंमें दोष दृष्टि करनेवाले चित्तकी (प्रसंख्यान बलात्) ईश्वरविचार बलसे (अनाभोगात्मिका) "आसमन्ताद्भुज्यतेऽनेनेत्याभोगः अनाभोग एवात्मामुख्यो यस्यां सा अनाभोगात्मिका" वशमें करके ईश्वरमें लय रखनेको वैराग्य कहते हैं (हेयोपादेयशून्या)यह त्याज्य है यह सुख ग्राह्य है इस विचार रहित (वशीकार संज्ञा वैराग्यम्) अभि-

प्राय यह कि जो चित्त वश में नहीं है उसको अपने वश में करके ईश्वर परायण करके अन्य विषय की इच्छा न करने को वैराग्य कहते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ—स्त्री अन्नपान आदि राज्य पर्यन्त सब सांसारिक विषयों की दोषदृष्टिसे इच्छा न करना एवं पारलौकिक विषयों की भी इच्छा न करना अर्थात् चित्त को समस्त विषयवासनासे हटाकर अपने वशमें करके ईश्वर में लय रखने को वैराग्य कहतेहैं, यथार्थतो यहहै कि वैराग्य के समान अन्य कोई भी सुख नहीं क्योंकि जिसके वश में आप हो और फिर उस ही को अपने वश में करले इससे अधिक और क्या सुख होगा प्रमाण सर्वंपरवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् । ॥१५॥

तत्परम्पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्१६

पदार्थ— (तत्) वह वैराग्य (परमपुरुषख्यातेः) "परमश्चासौ पुरुषः परमपुरुषः परमपुरुषस्यख्याति विज्ञानम् तस्याः" ईश्वरके पूर्ण और यथार्थ ज्ञान हो जानेसे (गुणवैतृष्ण्यम्) प्रकृतिके गुण अर्थात् सत रज तम और उनके कार्य्यमें तृष्णा रहित होना है ॥ १६ ॥

भावार्थ—परमेश्वरके पूर्णज्ञान हो जानेसे जो प्रकृतिके गुण और कार्य्यों में अरुचि होती है उसे वैराग्य कहते हैं ॥ १६ ॥

दृष्टानुश्रविकविषयदोषदर्शीविरक्तः पुरुषदर्शनाभ्यासात्तच्छुद्धिप्रविवेकाप्यायितबुद्धिर्गुणेभ्योव्यक्ताव्यक्तधर्मकेभ्योविरक्तइतितद्द्वयंवैराग्यंतत्रयदुत्तरंतत्ज्ञानप्रसादमात्रं यस्योदयेप्रत्युदितख्यातिरेवंमन्यते प्राप्तंप्रापणीयंक्षीणाः क्षेतव्याः क्लेशाः छिन्नः श्लिष्टपर्वाभवसंक्रमोयस्याविच्छेदात् जनि-

त्वाम्रियतेमृत्वा चजायतइति ज्ञानस्यैवपराकाष्ठावैराग्यं एतस्यैवहिनांतरीयकं कैवल्यमितिअथोपायद्वयेननिरुद्धचित्त-वृत्तेः कथमुच्यतेसंप्रज्ञातःसमाधिरिति ॥ १६ ॥

भा० का प० (दृष्टानुश्रविक विषय दोषदर्शी विरक्तः पुरुषः) लौकिक और पारलौकिक विषयों में दोष देख कर विरक्त अर्थात् व्यग्र हुआ पुरुष (दर्शनाभ्यासात्) शास्त्र विचार और योगाभ्यास से (तच्छुद्धि प्रविवेका प्यायित बुद्धिः) चित्त की शुद्धि होती है और उससे बुद्धि निर्मल होती है (गुणेभ्यो व्यक्ताव्यक्त धर्मकेभ्यो विरक्तः इति) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष गुणोंसे उपरत होना (तत्द्वयम् वैराग्यम्) यह दोनों प्रकार का वैराग्य होताहै (तत्र) उन दोनों में (यदुत्तरम्) जो पिछला वैराग्य है (तत् ज्ञान प्रसाद मात्रम्) वह केवल ज्ञानका साधनहै (यस्योदये) जिसके उदयहोने पर (प्रत्युदितख्यातिः) उदित हुए ज्ञानसे मुमुक्षु (एवंमन्यते) ऐसा मानता है (प्राप्तं प्रापणीयम्) जिसकी मुक्ति इच्छा थी उसे मैंने पाया (क्षीणा क्षेतव्याः क्लेशाः) जिनको मैं क्षय करना चाहता था वे मेरे क्लेश दूर हो गये (छिन्नः श्लिष्टपर्वा) जिसकी सन्धियां परस्परको एकसे दूसरी सटी हुईहैं वह (भव संक्रमः) संसाररूपी बेड़ा टूट गया (यस्या विच्छेद्रात्) जिसके बिना विच्छिन्न हुये (जनित्वा म्रियते मृत्वा च जायते) जन्म लेकर मरता है मर कर जन्म लेता है (इति ज्ञानस्यैव पराकाष्टा वैराग्यम्) इस ज्ञानही की अधिकता को वैराग्य कहते हैं (एतस्यैवहि) इसी वैराग्य की (नान्तरीयकम्) विघ्न रहित अभ्यास करने से (कैवल्यम्) मोक्ष होती है (अथोपाय द्वयेन) अब दोनों उपायों से (निरुद्ध चित्त वृत्तेः) निरुद्ध हो गई है चित्त की वृत्ति जिसकी (कथ मुच्यते सम्प्रज्ञात समाधिः) सम्प्रज्ञात योग कैसे होता है ॥१६॥

भावार्थ—लौकिक और पारलौकिक विषयों में विरक्त पुरुष को

वितर्क विचारानन्दास्मिता रूपानुगमात् संप्रज्ञातः ॥ १७ ॥

पदार्थ—(वितर्क विचारानन्दा स्मिता रूपानुगमात्) "विशेषेण तर्कयन्ति जनाये न स वितर्को ज्ञान विशेषः यव्दा स्थूल साचात्कारवती प्रज्ञा वितर्कः वितर्क व्याता विलव्सात् घञ्, सूक्ष्म साचात्कारवती प्रतिभा विचारः, आसमन्तात् नन्दन्ति जनायेन स आनन्दः नद सन्तोषे इत्यस्मात् वारणे घञ्, अस्मीत्यस्य भावःअस्मिता जीवस्य स्व स्वरूप ज्ञान-मर्थाद् हमिश्वराद् हादेय भिन्नोस्मीत्येव रूपं ज्ञानम् यथा देहादावह-म्व्दाकोस्मितयेश्वरोसयिव्यापकोस्ती त्याकारकं ज्ञानं वारूपस्य अनुगमः रूपानुगमः तस्मात्" वितर्क उसे कहते हैं जिस्से सब पदार्थों का स्थूल विचार किया जाता है और जिससे सूक्ष्मविचार किया जाता है उसे विचार कहते हैं, जिससे सन्तोष प्राप्त हो उसे आनन्द कहते हैं अस्मिता उस ज्ञानको कहते हैं जिसके द्वारा जीवको अपने स्वरूप का ज्ञान हो जैसे मैं पंच भौतिक शरीर से भिन्न हूं, ऐसे ही ईश्वर से भी भिन्न हूं, यहां पर अनुगत शब्द का "द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं प्रत्येकमभि सम्ब-ध्यते" इस न्याय से प्रत्येक के संग में योग होता है अर्थात् सम्प्रज्ञात योग चार प्रकार का है (सम्प्रज्ञातः) "सम्यगर्थात् संशयविपर्य्यय रहित त्वेन प्रकर्षेण ज्ञायते भाव्यस्य रूपं यस्मिन्सः सम्प्रज्ञातः" जिसमें संशय विपर्य्यय शून्य ध्येयका तथा ध्याताका निश्चय हो उसे सम्प्रज्ञात कहते हैं ॥ १७

भावार्थ—सम्प्रज्ञात योग चार प्रकार का है वितर्कानुगत, विचारा-नुगत, आनन्दानुगत, और अस्मितानुगत, भेद से ।

वितर्कः चित्तस्यालम्बनेस्थूलआभोगः सूक्ष्मोविचारः आ-नंदोल्हादः एकात्मिकासंविदस्मितातत्रप्रथमः चतुष्टयानुगतः समाधिः सवितर्कः द्वितीयोवितर्कविकलः सविचारः तृतीयो विचार विकलः सानंदः चतुर्थस्तद्विकलः अस्मितामात्रइति-सर्वयेते सालम्बनाः समाधयः अथासंप्रज्ञातसमाधिः किमु-पायः किंस्वभावोवेति ॥ १७॥

पदार्थ। (वितर्क) वितर्क उसे कहते हैं (चितस्यालम्बने) "आसमन्ता-लम्बतेऽनेनेत्यालंबनम् तस्मिन् लव आलम्बने इत्यस्माल्ल्युट" चित के आश्रय में (स्थूल आभोगः) स्थूल पूर्णता अर्थात् विचार अथवा स्थूल विषय सम्बन्ध (सूक्ष्मो विचारः) "आभोग इत्यध्याह्रियते" सूक्ष्म संबन्ध को विचार कहते हैं (आनन्दोल्हादः) "ल्हाद मोद ने इत्यस्मात् घञ्" आनन्द संतोष को कहते हैं (एकात्मिका) "एकः आत्मा जीवोस्ति यस्यांसा एकात्मिका" एक जीवही जिसमें विचार्य रहता है (संवित्) "सम्यग्भ्रमराहित्येन जानातियया सासंवित्" वह ज्ञान (अस्मिता) अस्मिता कहता है (तत्र) उन दोनों समाधियों में (प्रथमः समाधिः) पहिला अर्थात् संप्रज्ञात योग (चतुष्टयानुगतः) चारों के अनुगत हैं अर्थात् वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनंदानुगत, और अस्मितानुगत, (सवितर्कः) पहिला वितर्कानुगत सवितर्क अर्थात् स्थूल आभोग के सहित होता है (द्वितीय वितर्क विकलः) दूसरा वितर्क रहित (वि-

स्वरूप का विचार इसमें रहता है (सर्वयेते) "एचोयवायाव इत्यने नैकारस्यायादेशेलोपश्शाकल्यस्यसार्वत्रिकत्वाच्यस्यालोपः" ये चारों (सालम्बाना) आलम्ब अर्थात् आश्रय के सहित (समाधयः) योग होते हैं (यथा संप्रज्ञातः समाधिः) इसके पश्चात् असंप्रज्ञात योग का (किमुपायः) "क उपायो यस्मिन् सः किमुपायः" क्या उपाय है (किं स्वभावोवेति) "कस्य भावो यस्मिन्" योगी का उसमें कैसा स्वभाव रहता है यह अगले सूत्र में कहते हैं॥ १७॥

भावार्थ — वितर्क उसे कहते हैं जो चित्त के स्थिर करने में स्थूल आश्रय होता है जैसे घटका कारण मृत्तिका मृत्तिका का कारण त्रिसेणु त्रिसेणु का कारण द्व्यणुक ऐसे ही लक्ष्य पर स्थूल दृष्टि रखने को वितर्क कहते हैं और वितर्कानुगत योग वह है जिसमें वितर्क का आश्रय लिया जाय जैसे समाधि समय में यह विचारना कि इस जगत की उत्पत्ति कैसे हुईहै पुनः उसकेद्वारा समस्त सृष्टिकर्ता परमेश्वरमें चित्त को लगा देना, विचार उसे कहते हैं जिससे सूक्ष्म वस्तुओं का विचार किया जाय; और विचारानुगत योग वह है जिसमें चित्त शरीरके सूक्ष्म अवयव तथा रजो वीर्य्य से असाध्य उत्पत्ति समझ कर जगत्कर्ता जो अत्यन्त ही निपुण शिल्पी है उसमें अपनी स्थिति को सम्पादन करता है, सन्तोषको आनंद कहते हैं जिसमें पूर्वोक्त दो समाधिसे सम्पूर्ण पदार्थों को यथा रूपमें जानकर और अपने को सब जड़पदार्थ तथा स्थूल शरीर से भिन्न जान कर महा आनंद अर्थात् सन्तोष होता है उसे आनंदानुगत कहते हैं और अस्मितानुगत वह है जिसमें जीव अपने स्वरूपही को केवल विचारता है क्योंकि जब तक अपने स्वरूप को अच्छी प्रकार से नहीं जानेगा तब तक योगी स्थिर चित्त नहीं हो सक्ता अब दूसरे असम्प्रज्ञात योग का लक्षण अगले सूत्र में कहेंगे।

विरामप्रत्ययाभ्यास पूर्वः संस्कारशेषोन्यः १८

पदार्थ—(विराम प्रत्ययाभ्यास पूर्वः) समस्तचित्त वृत्तियों के अवसान अर्थात् अन्तको विराम कहते हैं उस विराम का जो प्रत्यय अर्थात् ज्ञान उस ज्ञान के बारम्बार अभ्यास पूर्वक (संस्कारशेषः) जिसमें केवल संस्कारही शेष रहते हैं, अर्थात् निरालम्ब अवस्था (अन्यः) असम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है ॥ १८ ॥

भावार्थ—जिसमें चित्त की समस्त वृत्तियों का अवसान (अन्त) होजाता है उस वितर्कादि के अभाव ज्ञानको बारम्बार विचार पूर्वक जिसमें केवल संस्कारही शेष रहते हैं उस निरालम्ब समाधि को असंम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं परन्तु चित्तवृत्ति निवृत्ति का मुख्य कारण वैराग्य है ॥ १८ ॥

सर्ववृत्ति प्रत्यस्तमये संस्कार शेषोनिरोधश्चित्तस्य समाधिर संप्रज्ञातः तस्यपरं वैराग्यमुपायः सालम्बनो ह्यभ्यासस्तत्साधनाय न कल्पयत इति विराम प्रत्ययोनिर्वस्तुक आलंबनी क्रियते स चार्थशून्यः तदभ्यास पूर्वं चित्तं निरालंबनमभ्यावप्राप्तमिव भवतीत्येष निर्बीजः समाधिर संप्रज्ञातः स खल्वयं द्विविध उपाय प्रत्ययो भव प्रत्ययश्च तत्रोपाय प्रत्ययो योगिनां भवति ॥ १८ ॥

पदार्थ—(सर्ववृत्ति प्रत्यस्तमये) सब वृत्तियों के अस्त हो जाने पर (संस्कार शेषः) जिसमें केवल संस्कारही शेष रह जाते हैं (निरोधश्चित्तस्य) वह चित्तका निरोध (समाधिरसंम्प्रज्ञातः) असम्प्रज्ञात समाधि

* संस्कार अर्थात् वह गुण जो निमित्त के नाश होने पर भी किञ्चित्काल गुण रह जाता है।

कहलाता है (तस्य) उस असंप्रज्ञात समाधि का (परं वैराग्यमुपाय:) परम उपाय वैराग्य है (सालम्बन:) वितर्कादि के आश्रयसे जो (अभ्यास:) "असूनामभ्यासोऽभ्यास:" प्राणायाम का अभ्यास (तत्साधनाय) उक्त असंप्रज्ञात समाधि को सिद्ध करने को (नकल्पते) युक्त नहीं है (विराम प्रत्यय:) चित्त वृत्तियों का अभाव जिसमें होजाता है वह अभावज्ञान अथवा विषयों में विरक्ति (निर्वस्तुकआलम्बनी क्रियते) निर्वस्तुक अर्थात् निराकार परमेश्वर के आश्रय में दृढ़ करता है (सचार्थशून्य:) वह निरालम्ब असम्प्रज्ञात समाधि सांसारिक प्रयोजन से रहित होती है (तदभ्यास पूर्वम्) उसके अभ्यास से (चित्तम्) चित्त (निरालम्बनम भाव प्राप्तमिव) निराश्रय होने से ऐसा भान होता है कि मानो हैही नहीं (भवति) होजाता है (इत्येष निर्बीज: समाधिर संप्रज्ञात:) इस निर्बीज अर्थात् निराश्रय समाधि को असंप्रज्ञात समाधि कहते हैं (सचायम्) सो यह निर्विकल्प असम्प्रज्ञात समाधि (द्विविध:) दो प्रकार की है (उपाय प्रत्ययोभव प्रत्ययश्च) उपाय प्रत्यय और भव प्रत्यय (तत्र) उन दोनों में से (उपाय प्रत्यय:) उपाय प्रत्यय (योगीनां भवति) योगियों को होती है ॥ १८ ॥

भा०—जब चित्त की समस्त वृत्तियां अस्त हो जाती हैं और केवल संस्कार शेष रह जाते हैं तब असंप्रज्ञात समाधि होती है उसकी प्राप्ति का परम उपाय वैराग्य है आलम्बन सहित कोई उपाय उसकी प्राप्ति का साधन नहीहै, वह सांसारिक विषय से रहित होती है केवल दृश्य पदार्थों में विरक्ति और आकार रहित परमेश्वर में स्थिति एवं प्राणायाम उसका साधन है जिससे चित्त का अभावसाभान होने लगता है ; असंप्रज्ञात समाधिके दोभेद हैं एक उपायप्रत्यय दूसरा भवप्रत्यय इन दोनों में से उपाय प्रत्यय योगियों को होती है । ॥ १८ ॥

भवप्रत्ययोविदेहप्रकृतिलयानाम् ।१९।

पदार्थ—(भवप्रत्यय) भव जो जगत् अथवा अविद्या उसका प्रत्यय अर्थात् ज्ञान जिसमें रहता है उसे भव प्रत्यय कहते हैं (विदेहप्रकृतिलयानाम्) विदेहलय प्रकृतिलयों को " भवतीति शेषः " होता है ॥ १९ ॥

भावार्थ—भवप्रत्यय विदेहलय और प्रकृतिलय संज्ञक योगियों को होता है ॥ १९ ॥

विदेहानांदेवानांभवप्रत्ययःतेहिस्वसंस्कारमात्रोपयोगेन चित्तेनकैवल्यपदमिवानुभवंतःस्वसंस्कारविपाकंतथाजातीयकमतिवाहयंतितथाप्रकृतिलयाः साधिकारेचेतसिप्रकृतिलीने कैवल्यपदमिवानुभवंतियावन्नपुनरावर्ततेअधिकारवशाच्चित्तमिति ॥ १९ ॥

पदार्थ—(विदेहानाम्) बिदेहलय अर्थात् देह रहित जो परमेश्वर उसमें लय अर्थात् तत्पर योगी हैं वे विदेहलय कहाते हैं (देवानाम्) "दिवधातोर्विजिगीषार्थं त्वात्" कामादि शत्रु तथा निज इन्द्रियों को जीतनेवालों को (भवप्रत्ययः) भवप्रत्यय नामक समाधि होती है (तेहि) क्योंकि वे (स्वसंस्कार मात्रोपयोगेन) अपने संस्कार की सहायता से (चित्ते न) चित्त द्वारा (कैवल्यपदमिवानुभवन्तः) मोक्षके सुखके समान सुखको भोगते हैं (स्वसंस्कार विपाकम्) अपने संस्कार के फल को (तथा जातीयकम्) संस्कार के समानही (अतिवाहयन्ति) निर्वाह करते हैं अर्थात् जैसा उनका जन्म क्रीय शुद्ध संस्कार होता है वैसेही शुद्धाचरण तथा शुद्ध ध्यानादि भी रखते हैं (तथा) ऐसेही (प्रकृतिलयाः) प्रकृति जो अव्याकृत उसमें जो लय अर्थात् संलग्न योगी हैं (साधिकारे चेतसि) अपने अधिकार युक्त चित्त में (प्रकृतिलीने) प्रकृति में लीन

होकर (कैवल्य पदमिवानु भवन्ति) मोक्ष के सुख का अनुभव करते हैं अर्थात् प्रकृतिलयलासक योगी सांसारिकप दार्थोंकी सिद्धिको परमपदमान लेता है (यावन्न पुनरावर्तते) जब तक चित्त फिर न अपनी पूर्वावस्था में लौट कर आवे तभी तक वह मोक्ष सुख रहता है (अधिकार वशात्) क्योंकि उसके चित्त से प्राकृत पदार्थों का अधिकार अर्थात् सम्बन्ध निवृत्त नहीं हुआ है ॥ १९ ॥

भा० का भा० विदेहलय योगी अपने संस्कार मात्र से मोक्ष सुखको प्राप्त होते हैं क्योंकि जैसा उनका शुद्ध संस्कार होता है वैसाही उनको शुद्ध फल भी मिलता है और प्रकृतिलय योगी तभी तक मोक्ष के सुखका स्वाद लेते हैं जब तक वे ध्यानावस्थित रहते हैं परन्तु जब उनकाचि त्त प्रकृत पदार्थों में अपने अधिकार के अनुसार लग जाता है तब वह सुख भी नहीं रहता ॥ १९ ॥

श्रद्धा वीर्य्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ २० ॥

पदार्थ—(इतरेषाम्)विदेहलय और प्रकृतिलय नामक योगियों से भिन्न मुमुक्षुवों को (श्रद्धा वीर्य्य स्मृति समाधि प्रज्ञा पूर्वक:) श्रद्धा उत्साह स्मृति एकाग्र चित्तता और यथार्थ ज्ञान से उपाय प्रत्यय योग होता है ॥ २० ॥

भावार्थ—मुमुक्षुवों को योग श्रद्धा उत्साह, स्मृति, समाधि प्रज्ञा से होता है इसी से वह उपाय प्रत्यय कहाता है ॥ २० ॥

उपायप्रत्ययोयोगिनभवतिश्रद्धाचेतसः संप्रसादः साहि जननीवकल्याणी योगिनांपातितस्यश्रद्दधानस्यविवेकार्थिन

वीर्यमुपजायतेसमुपजातवीर्यस्यस्मृतिरुपतिष्ठतेस्मृत्युपस्था नेचचित्तमनाकुलंसमाधीयते समाहितचित्तस्यप्रज्ञाविवेकउ-पावर्ततेयेनयथावद्वस्तुजानातितदभ्यासात्तद्विषयाच्चवैराग्या दसंप्रज्ञातः समाधिर्भवतिलेखलुनवयोगिनोमृदुमध्याधिमा-त्रोपायाभवंतिद्यथा मृदुपायोमध्योपायोऽधिमात्रोपाया नां ॥ २० ॥

पदार्थ—(उपाय प्रत्ययो योगिनां भवति) उपायप्रत्यय नामक योग योगियों को होता है यह पूर्व कह चुके हैं परन्तु कैसे योगी को होता है ? (श्रद्धा चेतसः) जिसका चित्त श्रद्धा अर्थात् विश्वास युक्त होता है (संप्रसादः) "सद्लृ अवसाद ने" वह प्रसन्नता युक्त (साहि) क्यों कि वह श्रद्धा (जननीमिव कल्याणी) माता के समान हित चाहनेवाली (योगिनम् पाति) योगी की रक्षा करती है (तस्य श्रद्दधानस्य) उस श्रद्धायुक्त (विवेकार्थिनः) सत्या सत्य जानने की इच्छा है जिसको ऐसे योगी को (वीर्य्यमुपजायते) उत्साह उत्पन्न होता है (समुपजात वीर्य्यस्य) जब उसको उत्साह होता है (स्मृति रूप तिष्टते) फिर उसे स्मृति अर्थात् उत्तम उत्तम स्मरण होता है (स्मृत्युपस्थाने च) और स्मृति के स्थिर होने से (चित्तमनाकुलम्) चित्त आनन्दमय होकर (समाधीयते) सावधान हो जाता है (समाहित चित्तस्य) सावधान चित्तवाले को (प्रज्ञा विवेकः) बुद्धि और सत्या सत्य का विचार (उपावर्तते) उत्पन्न होता है (येन) जिससे (यथावत्) ठीकठीक अर्थात् जैसी जोहै वैसीही (वस्तु) वस्तु को (जानाति) जानता है (तदभ्यासात्) इस विवेक के अभ्याससे (तद्विषयाच्च) और इसहीका निरन्तर चिन्तन रहनेसे (वैरा-ग्यात) वैराग्य से (असंप्रज्ञातः समाधिः) असम्प्रज्ञात समाधि (भवति)

होती है (खलु) "उत्प्रेक्षायाम्" निश्चय (ते) वे (नवयोगिनः) नये योगी (मृदुमध्याधिमात्रोपायाः) तीन प्रकार के अर्थात् १-मृदूपाय-२-मध्योपाय-३-अधिमात्रोपाय (भवन्ति) होते हैं (तद्यथा) उनके स्पष्टार्थ लिखते हैं (मृदूपायः) मृदु अर्थात् अल्प है उपाय जिसका (मध्योपायः) मध्यम है उपाय जिसका (अधिमात्रोपायः) अधिमात्र अर्थात् उत्तम उपायवाला ॥ २० ॥

भा० का भावार्थ – पूर्व सूत्र में कहा था कि उपायप्रत्यय योग योगियोंको होताहै परन्तु वह मुमुक्षु योगियों को होताहै अर्थात् पहिले योगमें श्रद्धा होती है उससे चित्त प्रसन्न होता है क्योंकि कल्याणकारिणी श्रद्धा योगी की माता के समान रक्षा करती है, पश्चात् उस विवेक की इच्छा करनेवाले श्रद्धालु योगियों को उत्साह उत्पन्न होता है पश्चात् स्मृति उत्पन्न होती है स्मृति के स्थिर हो जाने से प्रसन्न चित्त सावधान हो जाता है सावधान चित होने से बुद्धि और विवेक अर्थात् सत्यासत्य का विचार प्राप्त होता है जिससे सब पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होता है और इस बुद्धि और विवेक के अभ्यास तथा वैराग्य से असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है, यह नूतन योगी तीन प्रकार के होते हैं १ मृदूपाय—२ मध्योपाय—३ अधिमात्रोपाय ॥ २० ॥

तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ २१ ॥

पदार्थ—(तीव्रसंवेगानाम्) जिसके उपाय का तीव्र संवेग है उनको (आसन्नः) समीप अर्थात् सुलभ है ॥ २१ ॥

भावार्थ – उपायप्रत्यय समाधि तीव्रसंवेगवाले मुमुक्षु को शीघ्र सिद्ध होती है ॥ २१ ॥

भाष्य—यइति तत्र मृदूपायोपि त्रिविधो मृदुसंवेगो मध्यसंवेगस्तीव्रसंवेगइति तथा मध्योपायस्तथाधिमात्रोपाय इति तत्राधिमात्रोपायात् समाधिलाभः समाधिफलं च भवति २१

भा० का पदार्थ—(यइति) जो तोन प्रकार के उपाय हैं (तत्र) उनमें से (मृदूपायोपि) मृदूपाय भी (त्रिविधः) तीन प्रकार का है (मृदुसंवेगः) मृदु अर्थात् लघु वा शिथिल है "क्रिया हेतु दृढ़तर संस्कारः" क्रियाकी गति वा जन्मान्तरीय संस्कार जिसका (मध्यसंवेगः) मध्य अर्थात् न मृदु और न तीव्र है क्रिया और संस्कार जिसका (तथा) ऐसेही ३ भेदका (मध्योपायः) मध्योपाय योग है (तथाधिमात्रोपायः) ऐसेही ३ प्रकार का अधिमात्रोपाय है (तत्र) उनमें से (अधिमात्रोपायात्) अधिमात्रोपाय से (समाधिलाभः) योग की प्राप्ति (समाधिफलंच) और योग का फल होता है ॥ २१ ॥

भावार्थ—पूर्व लिखित मृदूपाय मध्योपाय और अधिमात्रोपाय योगों में से मृदूपाय भी तीन प्रकारका है एक मृदुसंवेग दूसरा मध्यसंवेग और तीसरा तीव्र संवेग ऐसेही मध्योपाय और अधिमात्रोपाय के भी तीन २ भेद हैं इनमें से अधिमात्रोपाय से समाधि की प्राप्ती और समाधि का फल होता है ॥ २१ ॥

मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोपिविशेषः । २२ ।

पदार्थ—(मृदुमध्याधिमात्रत्वात्) मृदु अर्थात् शिथिल वा दुर्बल मध्ये सामान्य और अधिमात्र अर्थात् अधिक हैप्रमाण जिसका (ततोपि) उनसे भी (विशेषः) विशेष

भावार्थ—मृदूपाय मध्योपाय और अधिमात्रोपाय से उससे भी अधिक समीप होता है ॥ २२ ॥

भाष्य—मृदुतीव्रो मध्यतीव्रोधिमात्रतीव्र इति ततोपि विशेषस्तद्विशेषान्मृदुतीव्र सम्वेगस्यासन्नः ततो मध्यतीव्र सम्वेगस्यासन्नतरः तस्मादधिमात्रतीव्रसम्वेगस्याधिमात्रोपायस्यासन्नतमः समाधिर्भवति किमेतस्मादेवासन्नतमस्समाधिर्भवति अथास्यलाभेभवति अन्योपि कश्चिदुपायोनवेति २२

पदार्थ—(मृदुतीव्रः) मृदुतीव्र (मध्यतीव्रः) मध्यतीव्र (अधिमात्रतीव्रइति] और अधिमात्रतीव्र (ततोपि विशेषः) उससे अर्थात् उक्त आसन्न समीप से अधिक होताहै (तद्विशेषात्) उसके अधिक होनेसे (मृदुतीव्रसंवेगस्यासन्नः) मृदुतीव्र संवेग के समीप (ततः) उससे (मध्यतीव्रसंवेगस्यासन्नतरः) मध्य तीव्र संवेग के अति समीप (तस्मात्) उससे (अधिमात्र तीव्रसंवेगस्याधिमात्रोपायस्यासन्न तमः) अधिमात्र तीव्र संवेग युक्त अधिमात्रोपाय के अत्यन्त ही समीप है (समाधिलाभः) असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति (समाधिफलंच) और समाधि का फल (किमेतस्मादेव) क्या ? इसही से (आसन्नतमः) अत्यन्त समीप (समाधिर्भवति) समाधि होती है (अथास्यालाभेभवति) अथवा इसके प्राप्त होने पर समीप होती है (अन्योपि) और भी (कश्चिदुपायः) उपाय है (नवेति) वा नहीं । ॥ २२ ॥

भावार्थ—पूर्व सूत्र में मृदूपाय मध्योपाय और अधिमात्रोपाय और इनहीं तीनों के तीन तीन भेद अर्थात् मृदूपाय मृदु संवेग मृदूपाय मध्य संवेग मृदूपाय तीव्र संवेग आदि कहे थे और यह भी कहा था कि तीव्र संवेग के आश्रय से समाधि सुलभ होती है परन्तु जब मृदु मध्य

और अधिमात्रके योगसे तीव्र संवेग भी तीन प्रकार का हुआ तब सबको सुलभ कहना भी ठीक भान नहीं होता है इसलिये मृदूपाय तीव्रसंवेग से मध्योपाय तीव्र संवेग से अति सुलभ और अधिमात्रोपाय तीव्रसंवेग से अत्यन्त सुलभ सम्प्रज्ञात समाधि होती है। अब यह प्रश्न होता है कि उपाय प्रत्यय योगियों को समाधि लाभ करने का यही एक उपाय है वा कोई और भी उपाय है ? ॥२२॥

ईश्वर प्रणिधानाद्वा ॥ २३

पदार्थ----(ईश्वर प्रणिधानात्) ईश्वरकी उपासना से (वा) अथवा ॥ २३ ॥

भावार्थ—अथवा ईश्वर की भक्ति से असम्प्रज्ञात समाधि होती है ॥ २३

भाष्य—प्रणिधानाद्भक्तिविशेषादावर्तितईश्वरस्तमनुगृह्णात्यभिध्यानमात्रेण तदभिध्यानादपि योगिनः आसन्नतरस्समाधिलाभः फलंचभवतीति २३

पदार्थ—(प्रणिधानात्) चिन्तन से "इसही का अर्थ भाष्यकार करते हैं" (भक्ति विशेषात्) ध्यान से (आवर्तित ईश्वरः) भली प्रकार से जाना गया ईश्वर (तम्) उस ध्यान करने वाले योगी को (अनुगृह्णाति) कृपा करता है (ध्यानमात्रेण) केवल ध्यान से (अथ) अब प्रश्न होता है कि (प्रधान पुरुष व्यतिरिक्तः) प्रधान पुरुष अर्थात् सर्वव्यापक से भिन्न (कोयमीश्वर नामेति) ईश्वर नामक यह कौन है ॥ २३ ॥

भावार्थ—ईश्वर भक्ति विशेष अर्थात् निरन्तर चिन्तन से प्रकाशित होकर योगी पर कृपा करता है जिससे योगी को असम्प्रज्ञात समाधि का लाभ होता है। अब यह प्रश्न होता है कि प्रधान पुरुष से भिन्न यह ईश्वर कौन है ॥ २३ ॥

क्लेशकर्म्मविपाकाशयैरपरामृष्टःपुरुष विशेषईश्वरः २४

पदार्थ—(क्लेशकर्म्म विपाकाशयैः) क्लेश, कर्म तथा कर्म्मफल और संस्कार से (अपरामृष्टः) असंबद्ध (पुरुष विशेषः) जीव से भिन्न (ईश्वरः) ईश्वर कहाता है २४

भावार्थ—जिसमें क्लेश कर्म कर्म के फल तथा संस्कारोंका सम्बन्ध नहीं है वह जीव से भिन्न ईश्वर है २४

भाष्य—अविद्यादयः क्लेशाः कुशलाकुशलानिकर्म्माणि तत्फलम् विपाकस्तदनुगुणा वासना आशयास्तेच मनसि-वर्त्तमानाः पुरुषेव्यपदिश्यन्ते सह्रि तत्फलस्यभोक्तेति यथा जयःपराजयोवा योद्धृषुवर्त्तमानः स्वामिनिव्यपदिश्यते यो-ह्यनेनभोगेनापरामृष्टः स पुरुषविशेष ईश्वरः, कैवल्यं प्राप्तास्तर्हि सन्तिच बहवःकेवलिनः तेहि त्रीणिबन्धनानि छित्वा कैवल्यम प्राप्ताः ईश्वरस्य तत्सम्बन्धो नभूतो नभावी

यथा मुक्तस्य पूर्वाबन्धकोटिः प्रज्ञायते नैवमीश्वरस्य यथा वाप्रकृतिलीनस्योत्तरावन्धकोटिस्सम्भाव्यते नैवमीश्वरस्य सतु सदैवमुक्तः सदैवेश्वर इति योसौप्रकृष्टसत्वोपादानादीश्वरस्य शाश्वतिक उत्कर्षः स किं सनिमित्त आहोस्विन्निर्निमित्त इति तस्य शास्त्रंनिमित्तं शास्त्रं पुनः किं निमित्तं-प्रकृष्टसत्वनिमित्तम् एतयोः शास्त्रोत्कर्षयोरीश्वर सत्वेवर्त्त-मानयोरनादिसंवन्धः एतस्मादेतद्भवति सदैवेश्वरस्सदैवमुक्त इति तच्च तस्यैश्वर्य्यं साम्यातिशय विनिर्मुक्तम् नतावदैश्वर्य्यान्तरेण तदतिशय्यते यदेवातिशयीस्यात्तदेव तत्स्यात् द्वयोस्तुल्ययोरेकस्मिन् युगपत्कामितेर्थे नवमिदमस्तु पुराणमिदमस्त्विति एकस्यसिद्धावितरस्य प्राकाम्यविघातादूनत्वं प्रसक्तं द्वयोश्च तुल्योर्युगपत्कामितार्थ प्राप्तिर्नास्ति अर्थस्य विरुद्धत्वात् तस्मायस्य साम्यातिशय विनिर्मुक्तमैश्वर्य्यं स ईश्वरः सपुरुषविशेष इति किंच

पदार्थ—(अविद्यादयः क्लेशाः) क्लेश अविद्यादिक अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेशको कहते हैं (कुशलाकुशलानिर्म्माणि शुभ और असुभ कर्म्म (तत्फलम्विपाकः) उन शुभाशुभ कर्म्मों के फलको विपाक कहते हैं (तदनुगुणावासनाशयाः) उन कर्म्म फलों के अनुसार जो वासना होती है उन्हें आशय कहते हैं (तेच) और वे (मनसिवर्त्तमानाः) मन में होते हैं (पुरुषेव्यपदिश्यन्ते) परन्तु जीवात्मामें लगाये जाते हैं (सहि)

क्योंकि वह जीवात्मा (तत्फलस्य भोक्तेति) उन कर्म्मों के फल तथा वासना के फलका भोक्ता है (यथा) जैसे (जयः पराजयोवा) जीतना या हारना (योद्धृषुवर्त्तमानः) योद्धाओं में रहता है (स्वामिनिव्यपदिश्यते) स्वामी अर्थात् राजा में लगाया जाता है(योहि) इस प्रकारसे जो (अनेनभोगेन) उक्त कर्म्मफल तथा आशय से (अपरामृष्टः) सम्बन्ध रहित है (सः) वह (पुरुषविशेषः) जीवसे विशेष (ईश्वरः) ईश्वर है (तर्हि) तो (बहवः केवलिनः) अनेक केवली (कैवल्यप्राप्तास्सन्ति) मोक्ष को प्राप्त हुये कर्म्म बन्धन से मुक्त हैं (तेहि) क्योंकि वे लोग (त्रीणिबन्धनानिछित्वा) तीनों कर्म्मबन्धनअर्थात् शारीरिक मानसिक और अध्यात्मिक अथवा प्रारब्ध और क्रियमाण आदि कर्म्मों के बंधनको काटकर(कैवल्यम् प्राप्ताः) मोक्षको प्राप्त हुयेहैं (ईश्वरस्य) ईश्वरका (तत्सम्बन्धः) कर्म्मफलादि से संबंध (नभूतः) न था (नभावी) और न होगा (यथा) जैसे (मुक्तस्य) मुक्ति को प्राप्त हुये मनुष्यकी (पूर्वांबंधकोटिः) प्रथम बन्धयुक्त अवस्था (प्रज्ञायते) जानी जाती है (नैवमीश्वरस्य) परन्तु ईश्वर में बन्ध कोटि नहीं मालूम होती है (यथा) जैसे (प्रकृतिलीनस्य) प्रकृतिलीन योगी की (उत्तराबंधकोटिः) योगावस्था के पश्चात् बंधकोटि (सम्भाव्यते) निश्चय की जाती है (नैवमीश्वरस्य) ईश्वर को ऐसी नहीं (सःतु) वहतो (सदैव मुक्तः) सब काल में बन्धन रहित है (सदैवेश्वरः) किसी काल में उसका ऐश्वर्य्य नष्ट नहीं होता (यः) जो (असौ) यह (प्रकृष्टसत्वोपादानात्) सर्वोत्तम बलादि युक्त (शाश्वतिक उत्कर्षः) नित्य ऐश्वर्य्य है (सः) वह (किम्) क्या (सनिमित्तः) कारणसहित है (आहोस्वित्) वा (निर्निमित्तः) विना कारणके है (तस्य) उस उत्कर्ष अर्थात् ऐश्वर्य्य का (शास्त्रम् निमित्तम्) वेदही निमित्त है (शास्त्रम्पुनः किन्निमित्तम्) फिर शास्त्र का निमित्त क्या है ? (प्रकृष्टसत्व निमित्तम्) सर्वोत्तम ऐश्वर्य्य उसका निमित्त है (एतयोः) इन दोनों शास्त्र और उत्कर्ष का (ईश्वरसत्वे) ईश्वर की सत्ता में (वर्त्तमानयोः)

विद्यमान रहनेवालों का (अनादिसम्बन्धः) नित्य सम्बन्ध है (एतस्मात्) इससे (एतद्भवति) यह सिद्ध होता है (सदैवेश्वरः) पुरुष विशेष सदा ऐश्वर्ययुक्त (सदैवमुक्त इति) सदा बंधन रहित है (तच्च) और (तस्यैश्वर्य्यम्) उसका ऐश्वर्य (साम्यातिशय विनिर्मुक्तम्) समानता और अधिकता से रहित है अर्थात् उसके समान वा अधिक किसी का ऐश्वर्य नहीं है (नतावत्) नहीं वैसा (ऐश्वर्यान्तरेण) दूसरे ऐश्वर्य से (अतिशय्यते) ईश्वर हो सक्ता है (यदेव) जोही (अतिशयीस्यात्) अत्यन्त ऐश्वर्यवान हो (तदेव) वही (तत्परात्) ईश्वर होगा (तस्मात्) इसलिये (यत्र) जिसमें (काष्टाप्रातिरैश्वर्य्यस्य) ऐश्वर्य की सीमा हो (सः) वह (ईश्वरः) ईश्वर है (कस्मात्) क्योंकि (द्वयोस्तुल्ययोः) समान गुणवाले दो का (युगपत्) एकही कालमें (कामितेर्थे) विचार करने से (नवमिदमस्तु) यह नया है (पुराण मिदमस्त्विति) यह पुराना है (एकस्यसिद्धौ) एक की सिद्धि होने से (इतरस्य) दूसरे का (प्राकाम्य विघातात्) "इच्छा न भिघातरूपमैश्वर्य्यं प्राकाम्यम्" प्रकाम्यता अर्थात् वह ऐश्वर्य कि जिससे किसी प्रकार की इच्छा पूर्ति में भंग न हो उनके नष्ट होनेही से (ऊनत्वं प्रसक्तम्) न्यूनता सिद्धि हुई (द्वयोश्चतुल्ययोः) समान गुणवाले दो पदार्थों की (कामितार्थ प्राप्तिर्नास्ति) इच्छानुरूप एकता सिद्ध नहीं हो सक्ती (अर्थ स्यविरुद्धत्वात्) क्योंकि दोनों पदार्थों के गुण में अवश्य कुछ भेद होगा तस्मात् इसलिये (यस्य) जिसका (साम्यातिशय विनिर्मुक्तम्) समानता वा न्यूनता से रहित (ऐश्वर्य्यम्) ऐश्वर्य है [सईश्वरः] वह ईश्वर है [सचपुरुष विशेषः] और वह जीव से भिन्न है ॥ २४ ॥

भाष्य का भावा०—अविद्यादि को क्लेश और पाप पुण्य को कर्म कहते हैं एवं कर्म के फलविपाक और फलानुसार वासना आशय कहलाती है वे आशय यद्यपि मन में होते हैं तथापि जीव में आरोपित किये जाते हैं क्योंकि जीवही उनके फल का भोक्ता है जैसे संग्राम में जीत और हार योद्धाओं में होती है परन्तु राजा में आरोपित की जाती

है, जो इन क्लेशादिकों से संबंध रहित है वह जीव से भिन्न व्यापक परमेश्वर है, (प्र०) बहुतसे केवली लोग * मोक्ष को प्राप्त हुए हैं वे लोग तीनों बंधनों को काट कर कैवल्य पद को प्राप्त हुए हैं उनसे भिन्न एक ईश्वर क्यों मानना (उत्तर) जैसे केवली लोगों का प्रथम बंधन था पश्चात् बंधन से मुक्त हुए और जब मुक्त हुए तब ईश्वर बने परन्तु ईश्वर में बंधन न कभी था न है न होगा वह सदैव मुक्त और सदैव ईश्वर रहता है (प्र०) अच्छा तो प्रकृतिलीन योगीतो ईश्वर हो सक्ते हैं क्योंकि उनमें पूर्व बंध कोटि भान नहीं होती (उ०) नहीं वह भी ईश्वर नहीं हो सक्ता क्योंकि उसको उत्तर काल में अवश्य बंध होगा (प्र०) ईश्वर का जो नित्य अविनाशी ऐश्वर्य्य है वह सनिमित्त है वा निर्मित्त है (उ०) सनिमित्त (प्र०) उसका कौन निमित्त है (उ०) उसका निमित्त वेद है (प्र०) वेद का निमित्त क्या है (उ०) ईश्वरीय ज्ञान ; ऐश्वर्य्य और वेद का ईश्वर से अनादि संबंध है क्योंकि गुण और गुणी का नित्य संबंध होता है इससे यह सिद्ध हुआ कि ईश्वर सदा मुक्त और सदैव ऐश्वर्य्य युक्त है परन्तु ऐश्वर्य्य उसका तुलना से रहित है क्योंकि दूसरे ऐश्वर्य्य से उसकी समानता नहीं हो सक्ती क्योंकि जिसमें अधिक ऐश्वर्य्य होगा वही ईश्वर होगा। इसलिये जिसमें ऐश्वर्य्य की सीमा हो वही ईश्वर है क्योंकि उसके समान ऐश्वर्य्य दूसरे में नहीं है जैसे दो वस्तुओं का उत्पत्तिकाल विचारने को एकही समय में प्रवृत्त हों तो अवश्य यह सिद्ध हो जायगा कि यह वस्तु नई यह पुरानीहै बस जब एक का नूतनत्व सिद्ध भया तब न्यूनता भी सिद्ध हो गई इसलिये जिसमें ऐश्वर्य्य की पराकाष्ठा हो और जिसका ऐश्वर्य्य समानता रहित हो वही ईश्वर है ॥ २४ ॥

* केवली जैन मतवालों के तीर्थंकरों को कहते हैं ॥

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥२५॥

पदार्थ—(तत्र) उस ईश्वर में (निरतिशयम्) अत्यन्त अर्थात् सीमा प्राप्त (सर्वज्ञबीजम्) संपूर्ण ज्ञान का कारण ॥ २५ ॥

भावार्थ—उस ईश्वर में ज्ञान की अवधि भी बोधक है ॥ २५ ॥

भाष्य—यदिदमतीतानागत प्रत्युत्पन्न प्रत्येक समुच्चयातीन्द्रियग्रहणमल्प बह्विति सर्वज्ञबीजमेतद्विवर्द्धमानं यत्र निरतिशयं स सर्वज्ञः अस्तिकाष्ठाप्राप्तिः सर्वज्ञबीजस्य सातिशयत्वात्परिमाणवदिति यत्रकाष्ठाप्राप्तिर्ज्ञानस्य स सर्वज्ञः स च पुरुष विशेष इति सामान्यमात्रोपसंहारे कृतोपक्षयमनुमानं न विशेषप्रतिपत्तौ समर्थमिति तस्य संज्ञादिविशेष प्रतिपत्तिरागमतः पर्य्यन्वेष्या तस्यात्मानुग्रहाभावेपि भूतानुग्रहप्रयोजनं ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु संसारिणःपुरुषानुद्धरिष्यामीति तथा चोक्तं आदि विद्वान्निर्माण चित्तमधिष्ठाय कारुण्याद्भगवान् परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रंप्रोवाचेति ॥ २५ ॥

भा० का पदार्थ—(यत्) जो (इदम्) यह (अतीतानागत प्रत्युत्पन्न प्रत्येक समुच्चयातीन्द्रिय ग्रहणम्) भूत भविष्यत् वर्त्तमान रूप समुदाय जो इन्द्रियों से ग्रहण नहीं हो सका किन्तु मन और बुद्धि से जिस ज्ञान का संबन्ध है (अल्पंबह्विति) थोड़ा वा अधिक (सर्वज्ञ बीजम्) सर्वज्ञता का ज्ञान है (एतद्विवर्द्धमानम्) यही ज्ञान बढ़ा हुआ (यत्र) जिसमें (निरतिशयम्) अतिशय से रहित अर्थात् ज्ञान की सीमा हो जाय (सः) वह (सर्वज्ञः) सर्वज्ञ (अस्ति) है (काष्ठाप्राप्तिः) सीमा (सर्वज्ञ

वीजस्य) ज्ञान की (सातिशयत्वात्) अधिक और न्यून होने के कारण से (परिमाणवदिति) तोल वा संख्या के समान (यत) जिसमें (काष्ठाप्राप्तिः) सीमा हो (ज्ञानस्य) ज्ञान की (सः) वह (सर्वज्ञः) सर्वज्ञ है (सच) और वह सर्वज्ञ (पुरुष विशेषः) उक्त पुरुष विशेष है (इति) यह (सामान्य मात्रोपसंहारे) सामान्य ज्ञान में (कृतोपक्षयमनुमानम्) सामान्य तो दृष्ट अनुमान किया है (नविशेष प्रतिपत्तौ) विशेष निश्चय में नहीं (तस्य) उस सर्वज्ञ परमेश्वर की (संज्ञादिप्रतिपत्तिः) अभिधान अर्थात् गुणानुसार व्यापक विष्णु आदि नामों की निश्चय (आगमतः) वेद से (पर्य्यन्वेष्या) विचारनी चाहिये (तस्य) उस पुरुष विशेष के (आत्मानुग्रहाभावेपि) अपना हित साधन नहीं रहते भी (भूतानुग्रह प्रयोजनम्) प्राणियों का हित साधनही प्रयोजन है (ज्ञानधर्म्मोपदेशेन) ज्ञान के उपदेश से और धर्म्म के उपदेश से (कल्पप्रलय महाप्रलयेषु) नित्य प्रलय अर्थात् जब प्राण और शरीर का वियोग प्राणियों का होता है और महाप्रलय अर्थात् समस्त कार्य्य पदार्थों का जब कारण में लय होगा (पुरुषानुद्धरिष्यामीति) जीवोंका उद्धार करूंगा (तथाचोक्तम्) ऐसाही ब्राह्मण ग्रन्थों में भी लिखा है (आदि विद्वान) प्रथम विद्यावित् परमेश्वर ने (निर्म्माण चित्तम्) वेद विद्या के प्रकाश करने की रुचि को (अधिष्ठाय) स्थिर करके (कारुण्यात्) अनुग्रह से (भगवान्) ईश्वर ने (परमर्षिः) परम ऋषि अर्थात् संपूर्ण ज्ञानमय ने (आसुरये) जीव को (तंत्र) वेद (प्रोवाचेति) उपदेश किया ॥ २५ ॥

भावार्थ—भूत भविष्यत् वर्त्तमानकालका जो ज्ञानहै यद्यपि वह अतीन्द्रिय है तथापि मन से ग्रहण होताहै वह ज्ञान प्राणी मात्र को होता है चाहे स्वल्प हो वा अधिक हो परन्तु होता सबको है वही ज्ञान बढ़ते २ जिसमें अवधि को प्राप्त हो जाय वही सर्वज्ञ है, ज्ञान की भी अवधि होती है क्योंकि जो वस्तु घटती बढ़ती है उसकी अवधि भी अवश्य होती

है जैसे परिमाण में न्यूनाधिक्य होता है तो उसमें अवधि भी होती है, बस जिसमें ज्ञानकी अवधि होती है वही सर्वज्ञ ईश्वर है यह सामान्य से सर्वज्ञता का अनुमान है विशेष निश्चय वेदादि सत्य ग्रंथों से करनी योग्य है, यद्यपि परमेश्वर को ज्ञानोपदेश वा धर्म्मोपदेश से स्वार्थ कुछ नहीं है क्योंकि वह पूर्ण काम है परन्तु ज्ञानोपदेश और धर्म्मोपदेश से प्राणियों पर कृपा करनाही प्रयोजन है अर्थात् उसकी यही अभिलाषा होती है कि मैं नित्य प्रलयादि में जीवों का उद्धार करूं—ऐसाही लिखा भी है आदि विद्वान् परमेश्वर ने प्राणियों पर कृपा करके जीव को वेदोपदेश किया ॥ २५ ॥

स एष पूर्वेषामपिगुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ २६ ॥

पदार्थ—[सएषः] यह पूर्वोक्त गुणयुक्त ईश्वर [पूर्वेषामपि] पहिले ऋषियों का भी [गुरुः] उपदेशकहै [कालेन] कालसे [अनवच्छेदात्] खण्डन न होनेसे कारण ॥ २६ ॥

भावार्थ—पूर्वोक्त गुणयुक्त परमेश्वर पूर्वमहर्षियोंका भी उपदेष्टा है क्योंकि उसमें कालकृत खण्डनहीं हैं ॥ २६ ॥

भाष्य—पूर्वेहिगुरवः कालेनावच्छेद्यंते यत्रावच्छेदार्थेन कालोनोपावर्तते सएषपूर्वेषामपिगुरुः यथास्य सर्गस्यादौ प्रकर्षगत्वासिद्धः तथातिक्रांतसर्गादिष्वपि प्रत्येतव्यः ॥२६॥

भा० का पदार्थ—[हि] क्योंकि [पूर्वेगुरवः] पहिले गुरु अर्थात् शास्त्र प्रणेता ऋषिलोग [कालेन] समयसे [अवच्छेद्यन्ते] खंडित अर्थात् सीमाबद्ध हो जाते हैं [यत्र] जिसमें [अवच्छेदार्थेन] सीमा बद्ध करने

के अभिप्राय से [कालेनानवच्छेदात्] समय नहीं समर्थ होता [सएषः] वह परमेश्वर [पूर्वेषामपिगुरुः] पूर्व ऋषियोंका भी उपदेष्टा है [यथा] जैसे [सर्गस्यादौ] सृष्टिके आदि में [प्रकर्षगत्यसिद्ध] ज्ञानयुक्त था [तथा] तैसेही [अतिक्रान्तसर्गादिष्वपि] सृष्टि अंत में भी [प्रत्येतव्यः] निश्चय करना चाहिये ॥ २६ ॥

भा० का भावार्थ—प्रथम के गुरु लोग भी समयकृत सीमा में बद्ध हो जाते हैं अर्थात् उनकी उत्पत्तिका समय नियत है परन्तु उनसे प्रथम कौन गुरु था यह शंका बनी रहती है; किन्तु ईश्वर में कालकृत सीमा नहीं है अर्थात् जैसा वह अब है वैसाही आदिसृष्टि में और उससे भी प्रथम ज्ञानयुक्त था और सृष्टि के अन्त में भी वैसाही रहैगा एवम् सहस्रों सृष्टि व्यतीत हो गईं और होंगी परन्तु उसका अपरिणाम ज्ञान यथास्थित है इसलिये कालकृत सीमाबद्ध परमेश्वर नहीं है और इसही कारण से परमेश्वर पूर्वज ऋषियों का भी गुरु है ॥ २६ ॥

तस्य वाचकः प्रणवः ।२७

पदार्थ—[तस्य] उस परमेश्वर का [वाचकः] कथन करनेवाला [प्रणवः] ओङ्कार है ॥ २७ ॥

भावार्थ परमेश्वर कावाचक ओ३म् है ॥ २७ ॥

भाष्य—वाच्यईश्वरः प्रणवस्य किमस्य संकेतकृतं वाच्यवाचकत्वं अथ प्रदीपप्रकाशवदवस्थितमिति स्थितोस्य वाच्यस्य वाचकेनसहसम्बन्धः संकेतस्त्वीश्वरस्य स्थितमेवार्थमभिनयति यथावस्थितः पितापुत्रयोः सम्बन्धः संकेतेनावद्योत्यते अयमस्य पिता अयमस्य पुत्र इति सर्गान्तरेष्वपि वाच्यवाचकशक्त्यपेक्षस्तथैव संकेतःक्रियते सम्प्रतिपत्तिनित्यतया नित्यः शब्दार्थसम्बन्धः इत्यागमिनः

प्रतिजानीतेविज्ञात वाच्यवाचकत्वस्य योगिनः ॥ २७ ॥

भा० का पदार्थ—[वाच्यईश्वरः] जिसके द्वारा जाना जाताहै वह वाचक और जो जाना जाता है वह वाच्य कहाता है इस स्थल पर वाचक प्रणव और वाच्य ईश्वर है [प्रणवस्य] प्रणव का [किम्] क्या ? [अस्य] इसका [संकेतकृतम् वाच्य वाचकत्वम्] संकेत अर्थात् मनुष्यों ने अपने बोध के लिये कल्पनामात्र वाच्य वाचकत्व नियत किया है [अथ] वा (प्रदीपप्रकाशवदवस्थितम्) दीपक और प्रकाशके समान समवाय संबंधहै (स्थितोस्यवाचस्यवाचकेनसह संबंधः) इस स्थल में वाच्य और वाचक का अनादि सम्बन्ध है (संकेतस्तु) संकेत तो केवल (ईश्वरस्य) ईश्वर के (स्थितमेवार्थम्) स्थिर किये संबंध को (अभिनयति) प्रकाश करता है (यथा) जैसे अवस्थितः) ईश्वर का नियत कियाहै (पिता पुत्रयाः)पिता और पुत्र में (संबंधः) संबन्ध (संकेतेन) संकेत से (अवद्योत्यते) प्रकाशित किया जाता है (अयम्) यह (अस्य) इसका पिताहै (अयम्) यह (अस्य) इस्का (पुत्रइति) पुत्र है (सर्गान्तरेष्वपि) अन्य सृष्टियों में भी (वाच्य वाचकशक्त्यपेक्षः) वाच्य और वाचक में परस्पर संबंध शब्द शक्तिही से प्रकाशित होता है (तथैव)इसके अनुसारही (संकेतः क्रियते) संकेत किया जाता है (संप्रतिपत्ति नित्यतया) क्योंकि शब्द और अर्थ नित्य है नित्य अनादिहै (शब्दार्थ संबंधः) शब्द और अर्थों का परस्पर संबंध (इत्यागमिनः) यह शाब्दिक मानते हैं (प्रतिजानीते) जानते हैं (वाच्य वाचकस्य) वाच्य और वाचक कासंबंध (योगिनः) योगी लोग ॥ २७ ॥

भा० का भावार्थ—प्रणव वाचक और ईश्वर वाच्य है (प्र०) ईश्वर और प्रणव का वाच्य वाचक भाव केवल संकेतमात्र है या दीपक और प्रकाश के समान संबंध है (उ०) ईश्वर और प्रणव का वाच्य वाचक संबंध सांकेतिक है परन्तु कल्पित नहीं किन्तु अनादि है, क्योंकि संकेत

भी ईश्वर में जो वाच्यभाव है उस संबंध कोही प्रकाश करता है जैसे पिता और पुत्र का संबंध नियत है परन्तु संकेत के बिना प्रकाशित नहीं होता सो केवल इतनाही संकेत करना पड़ता है कि यह इसका पुत्र और यह इसका पिता है यह संकेत अवश्य ईश्वर के नियत किये संबंध में लगाना पड़ेगा एवम् शब्द और अर्थ का नित्य संबंध शाब्दिक मानते हैं इसलिये योगीलोग भी प्रणव और ईश्वर में वाच्य वाचक भाव संबंध मानते हैं ॥ २७ ॥

तज्जपस्तदर्थभावनम् ।२८॥

पदार्थ—(तज्जपः) उस प्रणव का जप अर्थात् उच्चारण करना "जप उच्चारणे" (तदर्थ भावनम्) प्रणव के अर्थ को विचारना ॥ २८ ॥

भावार्थ—प्रणवके जप करने और अर्थ विचारनेसे समाधिलाभ होताहै॥२८

भाष्य—प्रणवस्य जपः प्रणवाभिधेयस्यचेश्वरस्य भावना तदस्ययोगिनः प्रणवंजपतः प्रणवार्थंचभावयतश्चित्तमेकाग्र्ं सम्पद्यते तथाचोक्तम् "स्वाध्यायाद्योगमासीत् योगात्स्वाध्यायमामनेत् स्वाध्याययोगसम्पत्या परमात्मा प्रकाशते" इति किंचास्य भवति ॥ २८ ॥

भा० का पदार्थ—(प्रणवस्य) ओम् का (जपः) जप प्रणवाभिधेयस्य (प्रणव वाच्य) (ईश्वरस्य) ईश्वर की (भावना) भावना अर्थात् विचार अर्थात् चिन्तन (तदस्य योगिनः) योगी को (प्रणवंजपतः) प्रणव का जप करने से (प्रणवार्थं च भावयतः) और प्रणव का जो अर्थ ईश्वर है उसके चिन्तनसे (चित्तम्) चित्त (एकाग्रम्) चञ्चलता रहित (सम्पद्यते) होजाता है (तथा चोक्तम्) ऐसाही अन्यत्र भी कहा है (स्वाध्यायात्) स्वाध्याय अर्थात् वेद वा प्रणव के जप से "स्वाध्यायो जपइत्युक्तो वेदाध्ययन कर्मणि" (योगमासीत) योगाभ्यास करे (योगात्) योग अर्थात् समाधिस्थ होकर (स्वाध्यायम् आमनेत्) जप करे (स्वाध्याययोग सम्पत्या) स्वाध्याय और योग के बल से (परमात्मा प्रकाशते) ईश्वर का पूर्णज्ञान होता है ॥ २८ ॥

भा० का भावार्थ—प्रणव के जप और प्रणव के अर्थ विचारने तथा

प्रणववाच्य ईश्वर के चिन्तन से योगी का चित्त एकाग्र होता है, प्रमाण, उपनिषत् ग्रन्थों में लिखा है कि जप से योग और योग से जप को सिद्ध करे तथा दोनों के बल से परमात्मा का पूर्णज्ञान होता है ॥ २८ ॥

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोप्यंतरायाभावश्च ।२९

(ततः) तब (प्रत्यक्चेतनाधिगमः) परमेश्वर का ज्ञान होता है [अन्तरायाभावश्च] और विघ्नों का अभाव भी हो जाता है ॥ २९ ॥

भावार्थ तब योगी के विघ्न नष्ट हो जाते हैं और ईश्वर का पूर्णज्ञान हो जाता है ॥ २९ ॥

भाष्य— ये तावदन्तरायाः व्याधिप्रभृतयस्ते तावदीश्वरप्रणिधानान्नभवंति स्वरूपदर्शनमप्यस्यभवति यथैवेश्वरः पुरुषः शुद्धः प्रसन्नः केवलः अनुपसर्गः तथा यमपिः बुद्धः प्रतिसम्वेदीयः पुरुष इत्येवमगिच्छति, अथकेन्तराया य चित्तस्यविक्षेपकाः क्रेपुनस्ते कियन्तोवेति ॥ २९ ॥

भा० का पदार्थ—[ये] जो [तावत्]जितने "वक्यालंकारे वा" [अन्तरायाः) विघ्न हैं (व्याधि प्रभृतयः) शरीर को रोग आदि [ते] वे [तावत्] "वाक्यालंकारे" (ईश्वर प्रणिधानात्) ईश्वर की भक्ति से (नभवन्ति) नहीं होते (स्वरूप दर्शननमपि) ईश्वर के रूप का दर्शन भी (अस्यभवति) योगी को होता है (यथैव) जेसा कि (ईश्वरः) ईश्वर (पुरुषः) सर्वव्यापक है (शुद्धः) अर्थात् कर्मफल से रहित (प्रसन्नः) अविद्यादि क्लेशों से रहित है (केवलः) अद्वीतीय (अनुपसर्गः) जन्म मृत्यु रहित (तथा) ऐसे ही (अयमपि) यह योगी भी (बुद्धः) बुद्धि से (प्रतिसंवेदीयः) जानने योग्य (पुरुषः) ईश्वर है (इत्येव) यही (अधिगच्छति) जाना जाता है (अथ) अब (के अन्तरायः) विघ्न कौन हैं (ये चित्तस्य विक्षेपकाः) जो चित्त के बिगाड़ने वाले हैं (केपुनस्ते) उनके नाम क्या हैं (कियन्तोवेति) और वे कितने हैं यह अगले सूत्र में कहते हैं ॥ २९ ॥

भावार्थ—जितने योग में विघ्नकारक रोगादि हैं वे सब नष्ट हो जाते हैं और योगी को ईश्वर के स्वरूप का दर्शन भी होता है अर्थात् जैसा ईश्वर सर्व व्यापक आनन्दमय और अद्वीतीय है वैसाही यथार्थ ज्ञान योगी को हो जाता है, अब यह भी विचारना चाहिये कि योग में विघ्न कौन से और कितने हैं अगले सूत्र में इसका वर्णन करते हैं ॥ २९ ॥

व्याधिस्त्यानसंशय प्रमादालस्या विरतिभ्रान्ति दर्शनालब्ध भूमिकत्वा नवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ ३० ॥

सू० का पदा०—(व्याधिस्तयानसंशय प्रमाद लस्या विरतिभ्रान्ति दर्शनालब्ध भूमिकत्वा नवस्थितत्वानि) रोगादि शारीरकविघ्न, स्नेह, संशय, अस्वस्थता, आलस्य, अविरति अर्थात् व्यापार रहित होजाना भ्रान्ति दर्शन, अर्थात् मिथ्याज्ञान, अलब्धभूमिकत्व, अर्थात् योगाभ्यास की विशेषदशा का प्राप्त नहोना, ध्येयईश्वरमें चित्त का स्थिर नहोना (चित्तविक्षेपाः) चित्तके विक्षेप हैं (ते) वही (अन्तरायाः) योगके विघ्न हैं ॥ ३० ॥

सू० काभा०—व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति दर्शन अलब्ध भूमिकत्व, और अनवस्थितत्व, चित्तके विक्षेप और योगमें विघ्न हैं ॥ ३० ।

भाष्य०—नवान्तरायाश्चित्तस्यविक्षेपाः सहैते चित्तवृत्तिभिर्भवन्त्येतेषामभावेनभवन्ति पूर्वोक्ता श्चित्तवृत्तयः व्याधिर्धातु रसकरणवैषम्यं स्त्यानमकर्मण्यता चित्तस्य संशय उभय कोटिस्पृक् विज्ञानं स्यादिदं एवं नैवंस्यादिति प्रमादः समाधिसाधनानामभावनम् आलस्य कायस्य चित्तस्य च गुरुत्वादप्रवृत्तिः अविरति श्चित्तस्य विषय सम्प्रयोगात्मागर्धः भ्रान्ति दर्शनम् विपर्ययज्ञानम् अलब्धभूमिकत्वं समाधि भूमेरलाभः अनवस्थितत्वं यल्लब्धायाम्भूमौ चित्तस्याप्रतिष्ठासमाधि प्रतिलम्भेहि सति तदवस्थितं स्यादिति एते चित्तविक्षेपा नवयोगमलाः योग प्रतिपक्षा योगान्तराया इत्यभिधीयन्ते । ३० ।

भा० का पदा०—(नव) नहीं (अन्तरायाः) विघ्न (चित्तस्य) चित्तके (विक्षेपाः) विक्षेप होते हैं (चित्तवृत्तिभिस्सह) चित्तकी वृत्तियों के सहित (भवन्ति) विक्षेप होते हैं (एतेषाम्) इनके (अभावे) न होनेसे (न भवन्ति) नहींहोते (पूर्वोक्ताः) पहिलेक हीहुई (चित्तवृत्तयः) चित्तकी वृत्तियां ये हैं (व्याधिर्धातुरसकरण वैषम्यम्) व्याधि उसेकहते हैं जो शरीरस्थ धातु और रसके बिगड़नेसे शरीर में विकलता होती है (स्त्यान मकर्मण्यताचित्तस्य) स्त्यान उसविघ्न को कहते हैं जिसमें चित्त दुष्टकर्मकाचिन्तन करता है अथवा जिसमें चित्त कर्म रहित होने की इच्छाकरता है (संशय उभय कोटिस्पृक् विज्ञानम्) संशय उसज्ञान को कहते हैं जो दोनो कोटिकाखंडन करने वाला है "स्पृश् अन्वे बाधनेच" किसी २ ग्रंथ में

उभय कोटिस्पृक् पाठ रहता है उसका अर्थ यह है "दोनो पक्षों को जो स्पर्शकरे अर्थात् कभी कहे यह ठीक है कभीकहै दूसरा ठीक है (एवंनैवस्यात्) इस प्रकारसेनहो (इदमेवंनैवस्यादिति) यह ऐसे नहीं है (प्रमादः समाधि साधनानामभावनम्) योग के साधन अर्थात् उपायों को चिन्तन नकरने को प्रमाद कहते हैं (आलस्यं कायस्य चित्तस्य चगुरुत्वादप्रवृत्तिः) आलस्य उसे कहते हैं जो शरीर वा चित्त के भारी पनसे चेष्टा रहित होजाना है (अविरति श्चित्तस्य विषय संप्रयो-गात्मागर्द्धः) अविरति उसवृत्ति को कहते हैं जिसमें चित्त विषय के संसर्गसे आत्मा को मोहित वा प्रलोभित करदेता है (भ्रान्ति दर्शनम् विपर्ययज्ञानम्) विपरीत अर्थात् उलटेज्ञान को भ्रान्ति दर्शन कहते हैं (अलब्ध भूमिकत्वम्) अलब्ध भूमिकत्व उसे कहते हैं (समाधि भूमेरलाभः) कि जिसमें समाधि की भूमिकी प्राप्ति नहीं होती (अनवस्थितत्वम्) अनवस्थितत्व उसे कहते हैं (यल्लब्धा याम्भूमौ) जिस्से प्राप्त हुईयोग की भूमि में (चित्तस्या प्रतिष्ठा) चित्त की स्थिति नहीं होती (समाधि प्रतिलंभेहि सति) समाधि के प्राप्त होनेपर (तदवस्थितं स्यात्) चित्त स्थिर हो जाता है (एते) यह (चित्त विक्षेपाः) चित्त के विक्षेप (नवयोगमलाः) नव योगमल अर्थात् प्रथम योग के मल (योग प्रतिपक्षाः) योग प्रतिपक्ष अर्थात् योग के शत्रु (योगान्तरायाः) योगान्तराय अर्थात् योग के विघ्न (इत्यभि धीयन्ते) कहलाते हैं । ३० ।

भावार्थ—चित्तके विक्षेपस्वयम् योग के विघ्न नहीं हैं किन्तु चित्तवृत्तियों के साथ मिलकर विघ्न कारक होते हैं और वृत्तियों के

अभाव में बाधक नहीं हो सकते विक्षेप यह हैं, व्याधि वह है जो शरीर के वीर्य और रसादि के बिगड़नेसे शरीर में अस्वस्थता होती है स्त्यान वह है जिस में चित्त चेष्टा रहित वा कुचेष्टा रतहोजाता है संशय उसे कहते हैं जिसमें दो विषयों में भ्रम होता है कि यह करना उचित है वा वह करना उचित है, समाधि के साधनों को चिन्तन न करने को प्रमाद कहते हैं, आलस्य वह कहता है कि जिसमें चित्त। और शरीर भारीपन से चेष्टा रहित होने की इच्छा करता है अविरति वह है जिसमें चित्त विषय संसर्ग से आत्मा को मोहित करदेता है भ्रान्ति दर्शन विपर्य्यय ज्ञान को कहते हैं, समाधि भूमि की अप्राप्ति को अलब्धभूमिकत्व कहते हैं और अनवस्थितत्व उसेकहते हैं जिससे योगभूमि प्राप्त होने पर उसमें स्थिरता को प्राप्त नहीं होता इन्हीं चित्त विक्षेपों को नवयोगमल, योग प्रतिपक्ष, योगान्तराय भी कहते हैं । ३० ।

दुःख दौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वास प्रश्वासा विक्षेप सहभुवः ३१ ॥

सू० का० पदार्थ—(दुःख दौर्मनस्याङ्गमेजयत्व श्वास प्रश्वासाः) तीनो प्रकारके दुःख, दौर्मनस्य मनकाक्षोभित होना, अंगमेजयत्व जो अंगोंको कंपितकरे, श्वास वायुका इन्द्रियों के द्वारा खींचना, प्रश्वास वायुका निकालना, (विक्षेपसहभुवः) विक्षेप के संगयह उत्पन्न होतहैं ॥ ३१ ॥

भावार्थ—दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास, और प्रश्वासः विक्षिप्त चित्त वालोंको होतेहैं ॥ ३१ ॥

भाष्य—दुःख माध्यात्मिकम् चाधि भौतिक माधि दैविकंच येनाभिहताः प्राणिनस्त दुपघाताय प्रयतन्ते त द्दुःखम् दौर्मनस्य मिच्छाभिघाता च्चेतसः क्षोभः यदङ्गा-न्ये जयतिकंपयति तदंग मेजयत्वम् प्राणोयद्वाह्यं वायु माचामति सश्वासः यत्कौष्ट्यं वायुं निस्सार यतिसप्रश्वा सः एते विक्षे पसहभुवो विक्षिप्त चित्तस्यै तेभवन्तिते समाहि-तचित्त स्यैतेनभवन्ति अथैतेविक्षे पाः समाधि प्रतिपक्षा-स्ते ऽभ्यासवैराग्याभ्यान्निरो द्धव्याः, तत्राभ्यासस्य विषयमु-पसंहरन्निदमाह ॥ ३१ ॥

भा० का० पदार्थ—(दुःखम्) पीड़ितहों इन्द्रियां जिसमें (आध्यात्मिकम्) जो मन और शरीरादि में रोग होते हैं (आधिभौ-तिकम्) जोदूसरे प्राणि अर्थात् व्याघ्रवा चोर आदिसे होते हैं (आधिदैविकम्) जो इन्द्रियों की चंचलता मनके विकार और अशुद्धतादि से क्लेश होते हैं (येन) जिस्से (अभिहताः) पीडितहुई (प्राणिनः) प्राणीसमुदाय (तदुपघाताय) उसके नाश करने को (प्रयतन्ते) प्रयत्न करते हैं (तद्दुःखम्) वह दुःख (दौर्मनस्यम्) दौर्मनस्य उसे कहते हैं (इच्छाभिधाताचेतसः क्षोभः) जो इच्छाभंग होनेसे मन में क्षोभ अर्थात् अप्रसन्नता उत्पन्न होतीहैं (यत्) जो (अंगानि) शरीर के भागों को (एजयति कम्पयति) कंपाताहै (तत्) वह (अंगमेजयत्वम्) अंगमे जयत्व कहाता है "द्वितीयाया अलुक्" (प्राणः) अंगमे जयत्व प्राणवायु को कहते हैं (यत्) जो (वाह्यम्) बाहरकी (वायुम्) वायुको (आचामति) खींचता है (सः) वह

(श्वासः) श्वास कहा जाताहै (यत्) जो (कौष्ठ्यम्) उदर की (वायुम्) वायु को (निस्सारयति) बाहरनिकालता है (सः) वह (प्रश्वासः) प्रश्वास कहाता है (एते) यह विक्षेप (सहभुवः) विक्षेप की भूमिका अर्थात् इन्हीसे विक्षेप उत्पन्न होतेहैं (विक्षिप्त चित्तस्य) विक्षिप्त चित्तवालेको (एते) यह (भवन्ति) होते हैं (समाहित चित्तस्य) सावधान चित्तवाले को (एते) यह (नभवन्ति) नहीं होते (अथ) अबविचारना चाहिये (एते विक्षेपाः) यह विक्षेप (समाधि प्रतिपक्षाः) योग के शत्रु हैं (ते) इनको (अभ्यास वैराग्याभ्याम्) अभ्यास और वैराग्य से (निरोद्धव्याः) रोकना वा निवृत्त करना चाहिये (तत्र) उनमें (से अभ्यास विषयम्) अभ्यास के विषय को (उपसंहरन्) वर्णन करते हुवे (इदमाह) अगलासूत्रक हतेहैं ।

भावार्थ—समाधि की विक्षेप भूमियह है प्रथम अध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख, दुःखका सामान्य लक्षण यह है कि जिससे पीड़ीत होकर प्राणी उसके नाशक रनेका प्रयत्न करता है उसे दुःख कहते हैं दूसरी भूमि दौर्मनस्य है दौर्मनस्य उसे कहते हैं कि जो इच्छाभंग होनेसे मनमें क्षोभ उत्पन्न होताहै तीसरी विक्षेपभूमि अंगमेजयत्व है इसका लक्षण यह है कि जो अंगोंको कपावे उस प्राणवायुको अंगमेजयत्व कहते हैं, चौथी श्वास, जिससे बाहरकी वायु को खींचा जाताहै उसे श्वास कहते हैं, पांचवी प्रश्वास जिसे उदरस्थ वायुको बाहर निकाला जाताहै, यह विक्षेपभूमि विक्षिप्त अर्थात् चंचलचित्त वालोंको होती हैं और सावधान चित्त वालोंको नहीं होतीं यह विक्षेपभूमि योग की शत्रु हैं इसलिये

इनको अभ्यास और वैराग्यसे निरुद्ध करना उचित है, अभ्यास का लक्षण अगले सूत्रमें कहते हैं ॥ ३१ ॥

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ३२

पदार्थ—(तत्प्रतिषेधार्थम्) उसके दूरकरने को (एकतत्वाभ्यासः) एक तत्वका अभ्यासकरे ३२ ।

भावार्थ—उक्त विक्षेप भूमियों की निवृत्ति के लिये एक तत्व अर्थात् एकाग्रचित्तता वा एकईश्वर स्मरण का अभ्यास करे ३२ ।

भाष्य—विक्षेप प्रतिषेधार्थमेकतत्वावलंबनम् चित्त मभ्यसेत् यस्यतु प्रत्यर्थं नियतं प्रत्ययमात्रक्षणिकं चित्तं तस्य सर्वमेव चित्त मेकाग्रं नास्त्येव विक्षिप्तं यदि पुनरिदं सर्वतः प्रत्याहृत्य एकस्मिन्नर्थे समाधीयते तदा-भवत्येकाग्रमित्यतो न प्रत्यर्थं नियतं योपि सदृश प्रत्यय प्रवाहेण चित्त मेकाग्रं मन्यते तस्यैकाग्रता यदि प्रवाह चित्तस्यधर्म्मस्तदैकंनास्ति प्रवाह चित्तंक्षणिकत्वात् अथ प्रवाहांशस्यैव प्रत्ययस्यधर्म्मः ससर्वः सदृश प्रत्यय प्रवाही वा विसदृश प्रत्यय प्रवाही वा प्रत्यर्थं नियतत्वादेकाग्र एवे ति विक्षिप्त चित्तानुपपत्तिः तस्मादेक मनेकार्थमव स्थित-मिति यदि च चित्तेनैकेना नन्विताः स्वभावभिन्नाः प्रत्ययाजायेरन् अथ कथमन्य प्रत्ययदृष्टस्यान्यः स्मर्ताभवेत् अन्यप्रत्ययोपचितस्य कर्माशयस्यान्यः प्रत्यय उपभोक्ता भवेत् कथंचित् समाधीयमानमप्येतद्गोमय पायसीयं न्यायमा-

क्षिपति किंचस्वात्मीनुभवापह्नव: चित्तस्यान्यत्वे प्राप्नोति कथं यदहमद्राक्षं तत्स्पृशामि यच्चास्प्राक्षं तत्पश्यामीति अहमिति प्रत्यय: कथमत्यन्तभिन्नेषु चित्तेषु वर्तमान: सामान्यमेकं प्रत्ययिन माश्रयेतस्वानुभवग्राह्यश्चाय मभेदात्मा अहमिति प्रत्यय: नच प्रत्यक्षस्यमाहात्म्यम् प्रमाणा न्तरेणाभिभूयते प्रमाणांतरं च प्रत्यक्षबलेनैव व्यवहारं लभते तस्मादेका मनेकार्थं मवस्थितं च चित्तं यस्येदं शास्त्रेण परिकर्म निर्दिश्यते तत्कथम् । ३२) ।

भा० पदार्थ (विक्षेपप्रतिषेधार्थम्) चित्तविक्षेप के निवृत्त करने को (एक तत्वावलंबनम्) एक ही "एकस्याद्वितीयस्य ब्रम्हण स्तत्वं यथार्थज्ञानं एतस्यावलंबनम्" परमेश्वर के तत्व अर्थात् ज्ञान के आश्रयके धारण और विचार में मग्नता को (चित्त मभ्यसेत्) चित्त से अभ्यास करे (यस्यतु) और जिसका चित्त (प्रत्यर्थनियतम्) एक एक विषय में नियुक्त रहता है (प्रत्ययमात्रं क्षणिकं चित्तम्) केवल ज्ञानमात्र क्षणिक चित्त है (तस्यसर्वमेव) उसका सम्पूर्ण ही (चित्त मेकाग्रंनास्त्येव) चित्त एकाग्र नहीं है (विक्षिप्तम्) विक्षिप्त चित्त (यदि) चाहे हो (पुनरिदम्) परंतु जब इस चित्तको (सर्वत:) सब विषयों से (प्रत्याहृत्य) हटाकर (एकस्मिनर्थे) एक परमेश्वर में (समाधीयते) स्थिर किया जाता है (तदा) तब (भवत्येकाग्रम्) एकाग्र हो जाता है (अत:) इस कारण से (न प्रत्यर्थनियतम्) एक एक विषय के लिये चित्त नियत नहीं है (योपि) जो (सदृश प्रत्यय प्रवाहेण) समान ज्ञान के प्रवाह द्वारा (चित्त मेकाग्रंमन्यते) चित्त को एकाग्र-

मानता है (तस्यैकाग्रता) तो चित्त की एकाग्रता (यदि प्रवाह चित्तस्य धर्मः) यदि प्रवाह चित्त का गुण है (तदैकं नास्ति) तो चित्त एक नहीं हो सका (प्रवाहचित्तं) प्रवाहरूपचित्त (क्षणिकत्वात्) क्यों कि प्रवाह क्षणिक होता है (अथ प्रवाहांशस्यैव प्रत्ययस्य धर्मः) यदि प्रवाहांशके ज्ञानकाही गुण है (सः सर्वः) तो वह सम्पूर्ण प्रवाह (सदृश प्रत्यय प्रवाही वा) समान ज्ञान की प्रवाहवाला है (विसदृश प्रवाहीवा) या असमान ज्ञान प्रवाहवाला है (प्रत्यर्थनियतत्वात्) प्रत्यर्थ नियतता के कारण यदि (एकाग्र एवेति) एकाग्र है (विक्षिप्तानुपपत्तिः) तो विक्षिप्त चित्त सिद्ध नहीं हो सका (तस्मात्) इसलिये (एक अनेकार्थस्थितं चित्तम्) एक ही अनेक विषयों में जो स्थित है वह चित्त है (यदिच) और जो (चित्तेनैकेन) एक ही चित्त से (अनन्विताः) सम्बन्ध रहित अर्थात् (स्वभावभिन्नाः) भिन्नस्वभाव के (प्रत्ययाजायेरन्) ज्ञान होतेहैं (अथ) तो (कथम्) किसप्रकार से (अन्य प्रत्ययदृष्टस्य) और के देखेहुवे पदार्थ का (अन्यः) दूसरा (स्मर्ताभवेत्) स्मरण करनेवाला हो सका है (अन्य प्रत्ययोपचितस्य) दूसरे के द्वारा जो संग्रह कियेगये (कर्माशयस्य) कर्म उनके फलों का (अन्य प्रत्यय उपभोक्ता भवेत्) दूसरा भोग करने वाला हो जायगा (कथंचित्) तो किसी प्रकार से (समाधीयमानेपि) एकाग्र चित्त होने परभी (एतद्गोमय पायसीयन्यायमाक्षिपति) गोमय पायसीयन्याय अर्थात् खीर और गोबर की श्रुति के अनुसार हो जावगा जैसे कि सीने सुनाकि गाय से खीर बनती है और दुग्ध से बनी खीर खाई भी परन्तु पुनर्योर उसने गाय के गोवर को चावलों में मिलाकर अग्नि में सिद्ध करके खाना आरम्भ करदिया

(किंच) और (स्वात्मानुभवापह्नवः) अपने आत्मा के अनुभव में मिथ्यात्व "सतोपिवस्तुनोऽसत्वेनकथनमपह्नवः" (चित्तस्य) चित्त की (अन्यत्वे) भिन्नता में (प्राप्नोति) प्राप्तहोती है (कथम्) यदि कहैं कि भिन्न हैतो (यदहमद्राक्षम्) जो मैंने देखाथा (तत्स्पृशामि) उसे छूताहूं (यच्च) और जिसे (अस्प्राक्षम्) छुवाथा (तत्) उसे (पश्यामीति) देखताहूं (अहमिति प्रत्ययः) इनस्थलों में जो 'मैं' का ज्ञान है (कथमत्यन्तभिन्नेषु) वह कैसे अत्यन्तभिन्न (चित्तेषु) चित्तों में (वर्तमानः) वर्तमान (सामान्यमेकं प्रत्ययिनम्) सामन्य रीतिसे एक ज्ञानी को (आश्रयेत) आश्रय कर सक्ता है (स्वानुभवग्राह्यः) अपने अनुभव से ग्रहण करने योग्य (अयमभेदात्मा) यह एकही आत्मा (अहमिति प्रत्ययः) अहम् ज्ञान से जाना जाता है (नच) और न (प्रत्यक्षस्य) प्रत्यक्ष प्रमाणका (माहात्म्यम्) महात्म्य अर्थात् प्रबलता (प्रमाणान्तरेण) दूसरे प्रमाणसे (अभिभूयते) खंडित होता है (प्रमाणान्तरं च) और दूसरे अनुमानादि प्रमाण (प्रत्यक्ष बलेनैव) प्रत्यक्ष प्रमाण के आश्रय हीसे (व्यवहारं लभते) सिद्ध होते हैं (तस्मात्) इस कारण से (एक मनेकार्थस्) जो एक अनेक विषयों मे (अवस्थितम्) अवस्थित अर्थात् मस्तहो (चित्तम्) उसे चित्त कहते हैं (यस्य) जिस चित्तका (इदम्) यह ।

भा० का० भावार्थ—पूर्व सूत्रमें कहे जो दुःखादि विक्षेप उनको निवृत्त करने को एक अद्वितीय ईश्वरका चिन्तन करै परन्तु चिन्तनमें चित्त एकाग्र होना चाहिये यदि कोई कहै कि अनेक विषयों में भ्रमण करना चित्तका स्वाभाविक गुण है उसका

एक ज्ञात वा अज्ञात विषय में स्थिर होना असंभव है तो उनसे पूछना चाहिये कि कि यदि भ्रमण चितका स्वाभाविक गुण है तो जब सब विषयों से खींचकर चित्तको एक विषय में लगाते हैं तब एकाग्रक्यों होजाता है, एकाग्र होजाने से सिद्ध होता है कि चित्त प्रत्यर्थनियत नहीं है, और जो ऐसा मानते हैं कि विषय प्रवाह में चित्त एकाग्र होता है अर्थात् एकही विषय के अवान्तर भेदोंमें चित्तकी गतिको एकाग्रता कहते हैं तो उनसे यह प्रश्न है कि चित्तक्या पदार्थ है। यदि कहैं कि चिन्तनको चित्त कहते हैं तो विषय प्रवाह क्षणिक होने से चित्तभी क्षणिक हुवा और जोएग्रता प्रवाहांशका धर्म मानें तो वह सम्पूर्ण सदृश प्रत्यय प्रवाह है? वा विसदृश प्रत्यय प्रवाह यदि इन सब प्रश्नोंके उत्तरमें वह कहै कि एकाग्रताही चित्तका गुण है तो विक्षिप्त चित्त सिद्ध नहीं हो सका इसकारण से चित्तवह पदार्थ है जिस एक में विक्षिप्त एकाग्रतादि अनेक गुण रहते हैं यदि कहैं कि चित्त कोई पदार्थ नहीं है किन्तु स्वभाव से भिन्न २ अनेक ज्ञान उत्पन्न हुवा करते हैं, तो हम कहते हैं कि अन्य पुरुष के देखेहुवे पदार्थोंका अन्य पुरुष को स्मरण होना चाहिये अथवा अन्यके किये कर्मोंका अन्य पुरुष भोक्ता होजाय—परन्तु ऐसा जगत् में होना दृष्टि तथा विरुद्ध है और यदि चित्तकोई पदार्थ न होतो किसी प्रकार से सावधान होने पर भी गोमय पाय सीय न्याय की कहावत हो जायगी इसके अतिरिक्त आत्मा के होने मेंभी सन्देह होने लगेगा क्यों कि जो मैंने देखाथा उसे छूताहूं जिसे छुयाथा उसको देखताहूं इस स्मरणका आधार कोई नही है अर्थात् जिस ज्ञान से देखाथा वह नष्ट होगया

तब 'मैने" कहना असत्यहु वा इसलिये चित्त ज्ञान से भिन्न एक पदार्थ अवश्य है क्यों कि प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध होता है और प्रत्यक्ष प्रमाण को अन्य प्रमाणों से कोई खंडन नहीं कर सक्ता किन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण के आश्रय से अन्य प्रमाण भी सिद्ध होते हैं इस हेतुसे चित्त वह पदार्थ है जिससे अनेक विषयों का चिन्तन होता है वस उस ही को अनेक विषयों से हटाकर एकईश्वरीय विषय में लगाने के लिये शास्त्रका उपदेश है उसको विषयों से हटाने का उपाय क्या है ? इसका उत्तर अगले सूत्रमें लिखते हैं। ३२।

मैत्रीकरुणा मुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्य विषयाणांभावनातश्चित्त प्रसादनम् ३३ ॥

सू० का पदार्थ—(मैत्रीकरुणा मुदितोपेक्षाणाम्) प्रीति, दया प्रसन्नता, त्याग की (सुखदुखःपुण्या पुण्य विषयाणाम्) सुखी—दुःखी–पुण्यात्माऔर पापियों में (भावनातः) धारणा से (चित्त प्रसादनम्) चित्त प्रसन्न होता है । ३३ ।

सू० का भावार्थ—सुखी से प्रति दुःखीपर दया पुण्यात्मापर प्रसन्नता और पापीकात्याग करलेसे चित्त सावधान होताहै ३३ ।

भाष्य—यत्र सर्वप्राणिषु सुखसम्भोगापन्नेषु मैत्रीं भावयेत् दुःखितेषु करुणाम् पुण्यात्मकेषु मुदिता मपुण्य शीलेषूपेक्षा मेवमस्य भावयतः शुक्लो धर्म्म उपजायते

ततश्च चित्तं प्रसीदति प्रसन्न मेकाग्रं स्थितिपदं लभते ।

भा० का पदार्थ—(तत्र) उनमें से (सर्वप्राणिषु) वे सब प्राणि (सुखसम्भोगापन्नेषु) जो सुख और सम्पत्ति से युक्त हैं उनसे (मैत्रीम्) मित्रता (दुःखितेषु) दुखियों में (करुणाम्) दया (पुण्यात्मकेषु) पुण्य अर्थात् सुकर्म करने वालों में (मुदिताम्) प्रसन्नता (अपुण्य शीलेषु) दुष्ट कर्म करने वालोंमें (उपेक्षाम्) त्याग अर्थात् उनसे दूर रहना (भावयेत्) धारण करे (एवम्) इस प्रकार से (अस्य) मनुष्यके (भावयतः) धारण करने से (चित्तम्) चित्त (प्रसीदति) प्रसन्न होताहै (प्रसन्नमेकाग्रं स्थितिपदंलभते) प्रसन्न हुवा चित्त एकईश्वर में स्थितिको प्राप्त करता है ३३ ।

भावार्थ—सुख सम्भोग युक्त प्राणियों में मैत्री दुखितों में दया पुण्यात्माओं में मुदिता और पापियों में उपेक्षा करने से शुद्ध धर्म की प्राप्ति होती है उससे चित्त प्रसन्न होता है और प्रसन्न होकर चित्त एकाग्र तथास्थिर हो जाता है ३३ ।

प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य ३४ ।

सू० का पदार्थ—(वा) वा (प्राणस्य) प्राणवायु के (प्रच्छर्दन विधारणाभ्याम्) बलपूर्वक बाहर निकालने तथा पुनः खींचनेसे ३४ ।

भावार्थ—अथवा प्राणवायु को बलपूर्वक बाहर निकालने और पुनः खीचने से अर्थात् प्राणायाम करने से चित्त एकाग्र होता है ३४ ।

भाष्य—कौष्टस्य वायोर्नासिका पुटाभ्यां प्रयत्न विशेषा द्वमनं प्रच्छर्दनम् विधारणंप्राणायामः ताभ्यां वामनसः

स्थितिं सम्पादयेत् ३४ ।

भा० का० पदा०—(कौष्टस्य) उदर में स्थित (वायोः) वायु को (नासिका पुटाभ्याम्) नाक के नथनों से (प्रयत्नविशेषात्) अधिकप्रयत्न से (वमनम्) बाहर निकालने को (प्रच्छर्दनम्) प्रच्छर्दन कहते हैं (विधारणम्) विशेष धारण अर्थात् खींचना (प्राणायामः) "आसमन्ता द्यमयते ऽनेनेतियामः प्राणानांयामः प्राणायामः" प्राणवायु को खींचकर निरोध को कहते हैं (ताभ्याम्) इन दोनों से (वा) या (मनसः) मनकी स्थितिं सम्पादयेत् (एकाग्रता प्राप्तकरै ॥ ३४ ॥

भावार्थ—उदरस्थ प्राणवायु को नासिका के नथनों से प्रयत्न पूर्वक निकालने को प्रच्छर्दन और खींचने को विधारणा कहते हैं इन दोनोंसे मनकी स्थिरता करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

विषयवती वा प्रवृत्ति रुत्पन्ना मनसः स्थिति निबन्धनी ॥ ३५ ॥

पदार्थ—(विषयवती) दिव्य विषयवाली (प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (उत्पन्ना) उत्पन्न होकर (मनसः) मनकी (स्थितिनिबन्धनी) स्थिरताको स्थिरकरती है ॥ ३५ ॥

भावार्थ—अथवा जब दिव्य विषय में प्रवृत्ति उत्पन्न होती है तब मनस्थीर होता है ॥ ३५ ॥

भाष्य—नासिकाग्रे धारयतोस्य या दिव्यगंधसंवि

रसागंध प्रवृत्तिः जिह्वाग्रे रससंवित् तालुनिरूप संवित् जिह्वामध्ये स्पर्शसंवित् जिह्वामूले शब्द संवित् इत्येताः प्रवृत्तय उत्पन्ना श्चित्तस्थितौ निबध्नन्ति संशय विधमन्ति समाधि प्रज्ञायांच द्वारीभवन्तीति एतेन चन्द्रादित्यग्रह मणि प्रदीपरत्नादिषु प्रवृत्ति रुत्पन्ना विषयत्वे ववेदितव्या यद्यपिहित च्छास्त्रानु मानाचार्यो पदेशैरवगत मर्थं तत्वं सद्भूत मेव भवति एतेषां यथाभूतार्थ प्रतिपादन सामर्थ्यात् तथापियाव देक देशोपि कश्चित् नस्वकरण संवेद्योभवति तावत् सर्वं परोक्षमिवापवर्गा दिषु सूक्ष्मेष्वर्थेषु नदृढांबुद्धि मुत्पादयति तस्माच्छास्त्रानुमाना चार्यो पदेशोपोद्वलनार्थ मेवा वश्यं क श्चिद्विशेषः प्रत्यक्षीकर्तव्यः तत्र तदुपदिष्टार्थे कदेश प्रत्यक्षत्वेसतिसर्वंसुसूक्ष्ममप्यापवर्गात् श्रद्धीयते एतदर्थ मे वेदं चित्त परिकर्म निर्दिश्यते अनियतासुवृत्तिषु तद्विषयायां वशीकार संज्ञायामुप जातायां समर्थंस्यात् तस्याः प्रतिबन्धे न भविष्यन्तीति ॥ ३५ ॥

भा० का० पदार्थ—(नासिकाग्रे) नासिका के अग्रभाग में (धारयतः) ध्यानकरने से (अस्य) मनुष्य को (या) जो (दिव्यगंधसंवित्) दिव्य गंधकाज्ञान होता है (सा) वह (गंधप्रवृत्तिः) गंधकी प्रवृत्ति है (जिह्वाग्रे) जिह्वा के अग्रभाग में (रससंवित्) रसकाज्ञान (तालुनि) तालु में (रूपसंवित्) रूपका ज्ञान अर्थात् दिव्यदृष्टि (जिह्वामध्ये) जिह्वा के मध्यभाग में (स्पर्श संवित्) स्पर्श

ज्ञान अर्थात् दिव्यत्वक् (जिह्वामूले) जिह्वाकी मूलभाग अर्थात् जड़ में (शब्दसंवित्) शब्दज्ञान अर्थात् दिव्य श्रवणशक्ति (इत्येताः प्रवृत्तयः) यह सब प्रवृत्तियां (उत्पन्नाः) उत्पन्न होकर (चित्तस्थितौ) चित्तकी स्थिति में (निबध्नन्ति) युक्त करती हैं (संशयं विधमन्ति) संशय को दूरकरती हैं (समाधि प्रज्ञायां च) और योगोपयोगिनी बुद्धिकी (द्वारीभवन्ति) द्वार होती हैं (एतेन) इससे (चन्द्रादित्य ग्रहमणि प्रदीप रत्नादिषु) चन्द्रमा सूर्य्य तारागण दीपक और रत्न आदिकों में (प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (उत्पन्ना) उत्पन्न होकर (विषयति) अपने अपने विषयों को स्थिर करती है (एवं) इस प्रकार से (वेदितव्या) प्रवृत्ति जाननी चाहिये (यद्यपि) यद्यपि (तच्छास्त्रानुमाना चार्य्योपदेशैः) शास्त्र अनुमान और आचार्य्य के उपदेश से (अवगतम्) निश्चय पूर्वक जानागया (अर्थ तत्वम्) अर्थों का तत्व (सद्भूतमेव) सत्यही (भवति) होता है (एतेषाम्) इन सबका (यथा भूतार्थं प्रतिपादनम्) (यथार्थ रूपसे बराबरज्ञान) (सामर्थ्यात्) योग शक्ति से होता है (तथापि) तौभी (यावत्) जबतक (एकदेशोपि) किसी विषयका एक अंशभी (न) नहीं (स्वकरण संवेद्योभवति) अपनी नेत्रादि इन्द्रियों से प्रत्यक्ष होता (तावत्) तबतक (सर्वम्) सम्पूर्ण (परोक्षमिव) विनदेखे के समान (अपवर्गादिषु) मोक्षादिकों में (सूक्ष्मेष्वर्थेषु) दिव्यपदार्थों में (दृढाम्) निश्चयात्मक (बुद्धिम्) बुद्धिको (उत्पादयति) उत्पन्न करता है (तस्मात्) इसलिये (तच्छास्त्रानुमानाचार्य्योपदेशो पोद्बलनार्थम्) शास्त्र, अनुमान, आचार्य्यों के उपदेश के निश्चय करने को (अवश्यम्) जरूर (कश्चित्) कोई (विशेषः) आवश्यक विषय (प्रत्यक्षी कर्तव्यः) प्रत्यक्ष करना चाहिये (तत्र)

सूक्ष्म विषयों में से (तदुपदिष्टार्थैक देश प्रत्यक्षत्वे सति) शास्त्र अनुमान और आचार्य के उपदेश किये विषय के एक देश प्रत्यक्ष होने से (सर्वम्) सम्पूर्ण (सुसूक्ष्म विषयम्) दिव्य विषय (अपवर्गात्) मोक्षपर्य्यन्त (श्रद्धीयते) परविश्वास हो जाता है (एतदर्थं मेव) इसही प्रयोजन से (चित्त परिकर्मं निर्दिश्यते) चित्तका एकाग्र करना उपदेश किया जाता है (अनियतासु वृत्तिषु) यदि चित्तवृत्ति नियतन रहैं गी अर्थात् विक्षिप्त वृत्ति रहैं गीतो कुछ प्रत्यक्ष न होगा (तद्विषयायां वशीकार संज्ञायाम्) जब उन विषयाकार वृत्तियों का निरोध हो जाता है (समर्थंस्यात्) शक्ति हो जाती है (तस्य तस्यार्थस्य प्रत्यक्षी करणाय) सूक्ष्म विषयों के प्रत्यक्ष करने में (तथाच सति) और जब दिव्यविषय प्रत्यक्ष होते हैं (श्रद्धावीर्य्यस्मृति समाधयः) श्रद्धा, उत्साह, स्मृति, और समाधि होती हैं (अस्य) चित्तके (अप्रतिबन्धे) निग्रहनहोनेसे (नभविष्यन्ति) श्रद्धादि नहीं होती । ३५ ।

विशोका वाज्योतिष्मती ३६ ॥

सू० का पदार्थ—(वा) या (विशोका) शोकरहित (ज्योतीष्मती) प्रकाशयुक्त अथवा ज्ञानयुक्त ।

भावार्थ—अथवा जब शोकरहित प्रकाशयुक्त प्रवृत्ति उत्पन्न होती है तब मनस्थिर होता है ।

भाष्य—प्रवृत्ति रुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनीति अनुवर्तते हृदय पुंडरीके धारयतो याबुद्धिसंवित् बुद्धिसत्वं हि

भास्वर माकाशकल्पं तत्रस्थिति वैशारद्यात् प्रवृत्तिः सूर्य्येन्दु ग्रहमणि प्रभारूपाकारेण विकल्पते तथास्मितायांसमाप न्नंचित्तं निस्तरं गमहोदधिकल्पंशान्त मनं तमस्मितामात्रं भवतियत्रे दमुक्तं तमणुमात्र मात्मान मनु विद्या स्मीति एवं तावत् संप्रजानीते इत्ये षाद्वयो विशोका विषयवती अस्मिता माबाच प्रवृत्तिर्ज्योतिष्मतीत्युच्यते यया योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभते इति ३६ ॥

भा० का पदार्थ—(प्रवृत्ति रूत्पन्ना) उत्पन्नहुई प्रवृत्ति (मनसः स्थिति निबन्धनीति) मनको स्थिर करने वाली होती है यह वाक्य पूर्वसूत्रसे (अनुवर्तते) इस सूत्रमे आताहै (हृदय पुंडरीके) हृदय कमलमें (धारयतो) धारण अर्थात् ध्यान करनेवाले का जो (बुद्धि संवित्) निश्चयात्मक ज्ञान अथवा सुखदुः खादिकाज्ञान (बुद्धिसत्वंहि) ध्यान करने में बुद्धिकी सत्ता (भास्वरम्) प्रकाशयुक्त (आकाशकल्पम्) आकाशके समान विस्तृत (तत्र) उस हृदय कमलमें (वैशारद्यात्) उत्साह युक्त सूक्ष्म (प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (सूर्य्येन्दुग्रह मणिप्रभारूपाकारेण) सूर्य्य चन्द्रमा और मणिके प्रकाशके रूपके आकारसे (विकल्पते) बदल जाती है (तथास्मितायाम्) जब अस्मितामें (समापन्नं चित्तम्) चित्त स्थिर हो जाता है (निस्तरंगमहोदधिकल्पम्) तरंग रहित समुद्र के समान (शान्तम्) उपाधिरहित (अनन्तम्) अनन्त ज्ञानयुक्त (अस्मितामात्रम्) स्वच्छ अपने रूपमें विचारशील (भवति) होताहै * (यत्र) जिस अवस्थामें

* इस योग को आस्मितानुगत कहते हैं।

(हृत्सुकम्) यह कहा जाता है कि (तम्) उस (अणुमात्रम्) पर-माणुके समान (आत्मानम्) परमेश्वरको (अनुविद्यास्मीति) मैं जानताहूं अर्थात् परमेश्वर के यथार्थ ज्ञानको प्राप्त हुवाहूं (एवम्) इस प्रकार से (तावत्संप्रजानीते) तब ऐसा ईश्वरको जानता है (इत्येषा) यह (द्वयीविशोका) जीवात्मा और परमात्मा से शोक अर्थात् ग्रसर हित (अस्मितामात्राच) अस्मिता मात्र अर्थात् जिसमें जीव अपने वा स्वविकल्प को जाने और ईश्वर के यथार्थ ज्ञान को प्राप्त हो जाय वह (प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (ज्योतिष्मतीत्युच्यते) ज्योतिष्मती कहीजाती है (यया) जिससे (योगिनः) योगीका (चित्तम्) चित्त (स्थितिपदम्) स्थिरभाव को (लभते) प्राप्त होता है ३६ ।

भा० का भावार्थ – हृदयकमल अर्थात् हृदयाकाश में जब प्राण-धारणा की जाती है तब योगी को निश्चयात्मक ज्ञानकी प्राप्ति होती है बुद्धि अर्थात् निश्चयात्मक ज्ञान प्रकाश युक्त और आकाशके समान विस्तृत होता है उससे स्थिर होनेसे सूर्य्य चन्द्रमा और मणियो के प्रकाश के समान जाज्वल्यमान ज्ञान प्राप्तहोता है तब चित्त अस्मिता से अर्थात् अपने रूपज्ञान में प्राप्त होता है और उसकी दशा इस दसा में तरङ्ग रहित महासागर के समान शान्त और निश्चल होती है तब जीव यह समझता है कि मैंने इस सूक्ष्मतर परमात्मा को अवजाना है और अपने स्वरूप को भी समझा है, इस प्रवृत्ति को ज्योतिष्मती कहते है ज्योतिष्मती प्रवृत्ति के उत्पन्न होने से योगीका चित्त स्थिर होता है ३६ ॥

स्वप्न निद्रा ज्ञाना लम्बनम्वा ३७ ॥

पदार्थ—(वा) या (स्वप्न ज्ञाना लम्बनम्) स्वप्न के समान ज्ञान के आश्रय से (निद्राज्ञानालम्बनम्) निद्राके समान ज्ञान के आश्रय से ३७ ॥

भावार्थ—अथवा जैसे स्वप्नावस्था और सुषुप्ति (गाढ़ निद्रा) में जाग्रत् अवस्था का विषयज्ञान और इन्द्रिय चांचल्य नष्ट हो जाता है ऐसेही ज्ञान के आश्रय से जब योगी की बाह्यवृत्ति नष्ट होजाती है तब चित्त स्थिर होता है ३७ ॥

भाष्य–स्वप्न ज्ञानालम्बनं निद्राज्ञानालंबनम् † वात-दाकारं योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभते इति ३७ ॥

भा० का पदार्थ—(स्वप्नज्ञानालंबनम्) "स्वप्नस्य ज्ञान मिवज्ञानं स्वप्न ज्ञानमेवमन्यत्रापि" स्वप्नके समान ज्ञानके आश्रयसे (निद्रा ज्ञानालंबनम्) "निद्राशब्दे नात्र सुषुप्तेर्ग्रहणम स्वप्नयो भयोरेकतर स्यग्रहणंव्यर्थंस्यात्" सुषुप्ति अवस्थाके ज्ञानके समान (तदाकारम्) इनके समान होनेसे (योगिनः) योगीका (चित्तम्) चित्त (स्थितिपदम्) स्थिरताको (लभते) प्राप्त करता है ३७ ॥

भावार्थ—स्वप्नावस्थाके ज्ञानके समान ज्ञान में मग्नहोने और सुषुप्ति अवस्थाके ज्ञानके समान ज्ञान में मग्नहोने से योगियोंका चित्त स्थिर होता है ३७ ॥

† इन्द्राग्नीत्र्यमा संपदे मत्यं कमाभिवध्यते ।

यथाभिमत ध्यानाद्वा ३८ ॥

सू० का पदार्थ—(वा) अथवा (यथाभिमत ध्यानात्) इच्छाके अनुकूल किसी सुखप्रद विषयके ध्यानसे ३८ ॥

भावार्थ—अथवा किसी ऐसी वस्तु के ध्यानसे जो योगी की इच्छा के अनुकूल हो चित्त स्थिरहोता है ३८ ॥

भाष्य—यदेवाभिमतं * तदेव ध्यायेत् तत्र लब्ध स्थितिक मन्यत्रापि स्थितिपदं लभते । ३८ ।

भा० का पदार्थ—(यदेव) जो ही (अभिमतम्) इच्छाके अनुकूलहो (तदेव) उसहीका (ध्यायेत) ध्यानकरे (तत्र) उसमें (लब्धस्थिति-कम्) स्थिर होनेसे (अन्यत्रापि) दूसरेस्थलमें भी (स्थितिपदं) स्थिर-भावको (लभते) प्राप्त होताहै ।

भा० का भा०—अगले सूत्रमें कहीहुई दोनो कोटि में से किसी एकके ध्यानसे मन स्थिर होताहै ।

परमाणु महत्वान्तो ऽस्यवशीकार: २९ ॥

सू० का पदार्थ—(परमाणु परम महत्वान्तः) परमाणु से लेकर महास्थूल पदार्थो तक (अस्य) मनके (वशीकारः) वश करने का स्थान है २९ ।

सू० का भावार्थ—मन के वश करने के लिये परमाणु से महा-स्थूल पदार्थ तक जो प्रिय हो उसी के द्वारा मनको स्थिर करे ।

* वच्यमाणकोटिद्वयं ॥

भाष्य—सूक्ष्मे निविश मानस्य परमाण्वन्तं स्थितिपदं लभते इति स्थूले निविशमानस्य परम महत्वान्तं स्थितिपदं चित्तस्यैवंताभुमय कोटि मनुधावतो योस्या प्रतिघातः सपरो वशीकारः तद्वशीकारात् परिपूर्णयोगिनश्चित्तं न पुनरभ्यासकृतं कर्मापेक्षत इति अथ लब्ध स्थिति कस्य चेतसः किंस्वरूपा किंविषया वा समापत्ति रिति तदुच्यते ३९ ।

भा॰ का पदार्थ—(सूक्ष्मे) सूक्ष्म पदार्थ में (निविश मानस्य) प्रविष्टहुवे चित्तका (परमाण्वन्तम्) अदृश्य परमाणु तक (स्थिति पदम्) जिस स्थलसे आगे न जासके उस पदको (लभते) प्राप्त होताहै (स्थूलेनिविश मानस्य) स्थूल विषय के चिन्तन में प्रविष्टहुवे का चित्त (परम महत्वान्तम्) परम स्थूल महतत्व पर्यन्त (स्थिति पदम्) स्थिरता का पदहै (चित्तस्य) चित्तका (एवम्) इस प्रकार से (ताम्) उक्त (उभय कोटिम्) दोनो कोटी अर्थात् सूक्ष्म और स्थूल की टिको (अनुधावतः) अनुसरण करने वाले 'दोनो पथ पर चलने वाले" (यः) जो (अस्य) चित्तका (प्रतिघातः) रोकना (सः) वह (परोवशी कारः) परम वशीकरण है (तद्वशी कारात्) चित्त के वश होनेसे (योगिन श्चित्तम्) योगी का चित्त (न) नहीं (पुनः) फिर (अभ्यास कृतम्) बारम्बार अनुष्ठान कृत् (कर्म) कर्म की (अपेक्षते) अपेक्षारखताहै (अथ) अब यह प्रश्न होताहै कि (लब्ध स्थितिकस्य चेतसः) स्थिर हुवे चित्त की (किंस्वरूपा) किस प्रकार की (किं विषया वा) किस विषय की (समापत्तिः) स्थिति वा धारण होतीहै (तदुच्यते) यह अगले सूत्र में कहते हैं । ३९ ।

भा० का भावार्थ—जगत् में दो प्रकार के पदार्थ हैं एक सूक्ष्म दूसरे स्थूल योगी को उचित है कि दोनो में से किसी कोटी को धारण करे अर्थात् जब सूक्ष्म कोटी में चित्त को लगावेगा तब सब से सूक्ष्म परमाणु का चिन्तन करने से उससे भी सूक्ष्मतर ईश्वर में चित्त स्थिरता को प्राप्त होगा और ऐसे ही स्थूल पदार्थ के चिन्तन से आकाश आदि महास्थूल पदार्थों के चिन्तन के अनन्तर उन से भी स्थूल परमेश्वर में स्थिति को प्राप्त हो जायगा उपनिषत् में भी लिखा है "अणोरणीयान् महतो महीयान्" चित्त जो दोनो कोटियों की ओर दौड़ता है उसको एक कोटी में लगाने को वश करना कहते हैं, जब योगी का चित्त एक कोटी में स्थिर हो जाता है तब उसे दूसरे उपायों की अपेक्षा नहीं रहती। ३९।

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ४०।

सू० का पदार्थ—(क्षीणवृत्तेः) क्षीण होगई हैं वृत्तियां जिसकी (अभिजातस्य) उत्पन्न हुई (मणेरिव) मणि के समान (ग्रहीतृ ग्रहण ग्राह्येषु) ग्रहण करने वाले ग्रहण करने के साधन और ग्रहण करने योग्य पदार्थ में (तत्स्थतदञ्जनतासमापत्तिः) स्थिर होनेसे उसकी समानता प्रतीत होने लगती है। ४०।

सू० का भावार्थ—जिसकी वृत्ति क्षीण हो जाती हैं उसके चित्तकी प्रतीति ऐसी रहती है जैसी स्फटिकमणि की अर्थात् स्फटिकमणि जैसे स्वयं स्वच्छ है परन्तु वह समीपस्थ पदार्थ के रंगका

प्रतीत होने लगता है ऐसे ही योगी का चित्तस्वयं स्वच्छ होता है परन्तु हरितसंयोग से वहतदाकार प्रतीत होने लगता है। ४०।

भाष्य—क्षीण वृत्तेरिति प्रत्यस्तमित प्रत्ययस्येत्यर्थं अभिजातस्येव मणेरिति दृष्टान्तोपादनं यथा स्फटिक उपाश्रय भेदात् तत्तद्रूपोपरक्त उपाश्रयरूपाकारेण निर्भासते तथा ग्राह्यालंवनोपरक्तं चित्तं ग्राह्य समापन्नं ग्राह्यरूपाकारेण निर्भासते भूतसूक्ष्मोपरक्तं भूतसूक्ष्म समापन्नं भूतसूक्ष्मस्यस्वरूपाभासं भवति तथा स्थूलालंवनोपरक्तं स्थूलरूपसमापन्नं स्थूलरूपाभासंभवति ग्रहणेष्वपीन्द्रियेष्वपिद्रष्टव्यम् ग्रहणालवनो परक्तं गृहण समापन्नम् गृहण स्वरूपाकारेणानिर्भासते तथा गृहतृपुरूषालंवनोपरक्तं गृहीतृपुरुष समापन्नं गृहीतृ पुरुष स्वरुपाकारेण निर्भासते तथामुक्त पुरुषालंबनो परक्तं मुक्त पुरुष समापन्नं मुक्त पुरुषस्वरुपाकारेण निर्भासते तदेव मणिजातकल्पस्य चेतसो गृहीतृ गृहण ग्राह्येषु पुरुषेन्द्रिय भूतेषु या तत्स्थ तदंजनता तेषु स्थितस्य तदाकारापत्तिः समाप्ति रित्युच्यते ४०।

भा० का पदार्थ—(क्षीणवृत्तेरिति) क्षीणवृत्ति वालेकी अर्थात् (प्रत्यस्तमित प्रत्ययस्येत्यर्थः) जिसके विकल्पादि मिथ्याज्ञान अस्तहो गये हैं (अभिजातस्येव मणेरिति) सूत्र में जो (अभिजात स्येवमणेः) यह लिखा है (दृष्टान्तो पादानाम्) सो दृष्टान्तका ग्रहण किया है (यथा) जैसे (स्फटिकः) स्फटिक पत्थर (उपाश्रयभेदात्) समीप में

(तद्रूपोपरक्तः) समीप में रक्खी हुई वस्तुके रङ्गवाला (उपाश्रयरूपाकारेण निर्भासते) समीपस्थ आश्रयके रूपके समान ही भान होता है (तथा) ऐसेही (ग्राह्यालम्बनो परक्तं चित्तम्) चित्त जिस विषयको ग्रहण करता है (ग्राह्य समापन्नम्) ग्राह्य विषयके रूपवाला भान होता है (भूत सूक्ष्मोपरक्तं) जिसका चित्त सूक्ष्मभूतों में लग्न होता है (भूत सूक्ष्म समापन्नम्) सूक्ष्म भूतोंमें लय होजाने से (भूत सूक्ष्मस्य स्वरूपाभासम्भवति) सूक्ष्म भूतोंके स्वरूपके समान ही होजाता है (तथा) ऐसेही (स्थूलालम्बनोपरक्तं स्थूल समपन्नं स्थूल रूपाभासं भवति) जिस योगीका चित्त स्थूल वस्तुओंमें लग्न होता है वह स्थूलमें मग्न होनेके कारण स्थूल स्वरूपकाही ध्येता होता है (ग्रहणेष्वपि) ग्रहण करनेमें जो अत्यन्त सहायक (इन्द्रियेष्वपि) इन्द्रियां हैं उनमें भी (ग्रहणालम्बनो परक्तम्) संलग्न होनेसे (ग्रहण समापन्नम् ग्रहण रूपाकारेण निर्भासते) इन्द्रियामें लय होनेसे उनके स्वरूपमें भान होता है (तथा)ऐसेही (ग्रहीतृपुरुषालम्बनोपरक्तम्) ग्रहण करनेवाले पुरुषमें उपरक्त होनेसे (ग्रहीतृपुरुषसमापन्नं ग्रहीतृपुरुषाकारेण निर्भासते) गृहीताके रूपमें लय होनेसे गृहीता पुरुषके आकारका भान होता है (तथा) तैसेही (मुक्तपुरुषालम्बनोपरक्तम् मुक्त पुरुषा कारही चित्त हो जाता है (तदेव मणिजातकल्पस्यचेतसः इस रीतिसे स्फटिक मणिके समान चित्तकी (गृहीतृ ग्रहण ग्राह्येषु) गृहीता ग्रहण और ग्राह्य विषयोंमें (यातत्स्थतदंजनता तेषु स्थितस्य तदाकारापत्तिः) उनमें स्थिर होनेसे तदाकार हो जाता है (समापत्तिरित्युच्यते) उसे समापत्ति कहते हैं ॥ ४० ॥

भा० का भा०। जिसके चित्तकी वृत्ति अस्त हो गई हैं उसकी स्फटिकमणिके समान ग्राह्य ग्रहण गृहीतृभावको धारण करता है उसे समापत्ति कहते हैं तात्पर्य्य यह है कि जैसे स्फटिक मणि जिस वस्तुके समीप रक्खी जाति है उसहीके रूपको धारण कर लेती है ऐसेही चित्त भी जिस विषयमें संलग्न होताहै एवम् तदाकारापत्तिको समापत्ति कहते हैं। ४०

*

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः सङ्कीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥४१॥

सू० का पदार्थ—(तत्र) उस में (शब्दार्थज्ञान विकल्पैः) शब्द अर्थ और ज्ञान के विकल्पसे (संकीर्णा) संकीर्ण अर्थात् सीमाबद्ध (सवितर्का समापत्तिः) वितर्क सहित समापत्ति होती है ॥ ४१ ॥

सू० का भावार्थ—शब्द अर्थ और ज्ञान के विकल्पद्वारा समापत्ति संकीर्ण और सवितर्क होती है ॥ ४१ ॥

भाष्य—तद्यथा गौरिति शब्दोगौरित्यर्थो गौरिति ज्ञानमि त्यविभागेन विभक्ता नामपि ग्रहणं दृष्टं विभज्य-मानाश्चान्ये शब्दधर्म्मा अन्येऽर्थधर्म्माश्चान्ये विज्ञानधर्म्मा इत्येतेषां विभक्तः पन्थास्तत्र समापन्नस्य योगिनो योगवा-दर्थः समाधि प्रज्ञायां समारूढः सचेच्छब्दा ज्ञान विकल्पा-नुविद्ध उपावर्तते सा संकीर्णा समापत्तिः सवितर्केत्युच्यते यदापुनः शब्द संकेतस्मृति परिशुद्धौ श्रुतानुमान ज्ञान विकल्प शून्यायाम् समाधि प्रज्ञायाम् स्वरूप मात्रेणाव-

* ४० सूत्र के शेष पदार्थ और भावार्थ तथा अन्यत्र भी जो इस अंक में छूट गये हैं वह अगले अङ्क में शुद्धि पत्रद्वारा प्रकाशित होंगे।

स्थितोर्थ स्तत्स्वरूपाकार मात्र तयैवावच्छिद्यते साचनिर्वितर्का समापत्ति: तत्पर प्रत्यक्ष तच्च श्रुतानुमानयोर्बीजं तत: श्रुतानुमाने प्रभवत: नच श्रुतानुमान ज्ञान सहभूतं तद्दर्शनम् तस्माद् संकीर्णं प्रमाणान्तरेण योगिनो निर्वितर्क समाधिजं दर्शनमिति निर्वितर्काया: समापत्तेरस्या: सूत्र लक्षणं द्योत्यते ॥ ४१ ॥

भा० का पदार्थ—(तद्यथा) वह समापत्ति जैसे (गौरिति शब्द:) गौ यह शब्द है (गौरि त्यर्थ:) गौ यह अर्थ (गौरिति ज्ञानाम्) गौ यह ऐसाज्ञान (इत्यविभागेन) इन तीनोंको एकता रहती है (विभक्तानामपि) पृथक् २ भी (ग्रहणं दृष्टम्) ग्रहण करना देखागया है (विभज्यमाना:) विभाग किये यह शब्दादि (अन्ये शब्द धर्म्मा:) शब्द के गुण भिन्न होते हैं (अन्येर्थ धर्म्मा:) अर्थके गुणभिन्न होते है (अन्ये विज्ञान धर्म्मा:) विज्ञान के धर्म्म पृथक् होते हैं (इत्येतेषां विभक्त: पंथा:) यह इनका पृथक् किया गया मार्ग है (तत्र) उस में (समापन्नस्य योगिन:) प्रविष्टहुवे योगी को (योग वा द्यर्थ:) जीगौ आदि शब्दोंका अर्थ है (समाधि प्रज्ञायाम्) स्थिरबुद्धि अर्थात् समाधिस्थ बुद्धि में (समारूढ:) बैठा हुवा है (सचेत्) यदि वह (शब्दज्ञान विकल्पानुविद्ध:) शब्द के ज्ञान से मिलाहुवा (उपावर्तते) रहता है (सा) वह (संकीर्णा) सीमाबद्ध (समापत्ति:) समापत्ति (सवितर्केत्युच्यते) सवितर्क कहलाती है (यदा) जब (पुन:) फिर (शब्द संकेत स्मृति परिशुद्धौ) शब्द के संकेत अर्थात् कल्पित अर्थों

की अतिशुद्ध होनेसे (श्रुतानुमान ज्ञान विकल्प शून्यायम्) श्रुत सुनेहुए अनुमान किये हुवे, ज्ञान और विकल्प से रहित अथवा श्रुत और अनुमित पदार्थ ज्ञान के विकल्प से शून्य (समाधि प्रज्ञायाम्) समाधिस्थ बुद्धि में (स्वरूप मात्रेणावस्थितः) केवल अपनेरूपसे अर्थात् अन्य से संग रहित हो कर (अर्थः) अर्थ रहता है (तत्स्वरूपाकार मात्रतया) अपने स्वरूप कही आकार से (अवच्छिद्यते) अवशिष्ट रहता है (साच) और वह (निर्वितर्का) निर्वितर्क (समापत्तिः) समापत्ति कहलाती है (तत्परं प्रत्यक्षम्) वह परं प्रत्यक्ष (तच्च) और वह (श्रुतानु मानयोः) श्रवण और अनुमान किये हुवे का (बीजम्) कारण है (ततः) उस्से (श्रुतानुमाने) श्रवण और अनुमान (प्रभवतः) उत्पन्न होते हैं (नच) नहीं (श्रुतानुमान ज्ञान सहभूतम्) श्रवण और अनुमान ज्ञान के (सहभूतम्) संग होता है (तद्दर्शनम्) उसका दर्शन (तस्मात्) इस कारण से (असंकीर्णम्) सीमा रहित (प्रमाणा-न्तरेण) दूसरे प्रमाण से (योगिनः) योगी को (निर्वितर्क समाधिजं) निर्वितर्क समाधि में प्राप्त हुवा प्रकाश होता है ।

भा० का भावार्थ—जैसे गौशब्द, गोशब्द का अर्थ, और गो शब्द का ज्ञान यह तीनो कहीं एक रूपसे रहते हैं और कहीं पृथक् पृथक् रहते हैं जब योगी इनकी भिन्नता के मार्ग को अनुसरण कर्ता है अर्थात् योगी की समाधिस्थ बुद्धि में जब तक यह तीनो भिन्न भिन्न भान होते है तब तक उसकी समाधि का नाम सवितर्क समापत्ति रहता है इस्से यह सिद्ध हुवा कि जिस समापत्ति में वितर्क बनी रहती है वह सवितर्क समपात्ति कहलाती है और जब समाधिस्थ

बुद्धि में अर्थ मात्रका भान रहजाता है तब निर्वितर्क समापत्ति होती है यह निर्वितर्क समापत्ति पर प्रत्यक्ष है अर्थात् श्रुत और अनुमित सर्व अर्थ इस ही में प्रत्यक्ष होते हैं यही श्रवण और अनुमान काहेतु है इस लिये सीमा रहित निर्वितर्क समापत्ति में प्रमाणान्त की अपेक्षा नहीं रहती है सवितर्क समापत्तिका लक्षण कह कर अगले सूत्र में निर्वितर्क समापत्तिका लक्षण कहते हैं । ४१ ।

स्मृति परिशुद्धौ स्वरूपशून्ये वार्थमात्र निर्भासा निर्वितर्का ॥४२॥

सू० का पदार्थ—(स्मृति परिशुद्धौ) स्मरण के शुद्ध हो जाने में (स्वरूप शून्येवार्थ मात्र निर्भासा) स्वरूप शून्य के समान भान होने वाली (निर्वितर्का) समापत्ति निर्वितर्क कहलाती है ।

सू० का भावार्थ—स्मृति के शुद्ध हो जाने पर जिस में अर्थ स्वरूप रहित के समान भान होता है वह निर्वितर्क समापत्ति है ।

भाष्य—या शब्दसंकेत श्रुतानुमान ज्ञान विकल्प स्मृति परिशुद्धौ ग्राह्यस्वरूपोपरक्ता प्रज्ञास्वमिव प्रज्ञारूपं ग्रहणात्मकं त्यक्त्वा पदार्थमात्रस्वरूपा ग्राह्यस्वरूपापन्नेव भवति सा निर्वितर्कासमापत्तिः तथाच व्याख्याता तस्या एक बुद्ध्युपक्रमोह्यार्थात्माणुप्रचयविशेषात्मा गवा दिर्घटादि र्वालोकः सच संस्थान विशेषो भूतसूक्ष्माणां साधारणो धर्म

आत्मभूत: फलेनव्यक्तो नानुमित: स्वव्यंजकांजन: प्रादुर्भवति धर्मान्तरोदयश्च तिरोभवति सएषधर्मी वयवीत्युच्यते योसावेकश्च महाश्चाणीयांश्च स्पर्शवांश्च क्रियाधर्मकश्चा- नित्यश्च तेनावय विना व्यवहार क्रियते यस्य पुनर वस्तुक: स: प्रचयविशेष: सूक्ष्मंचकारणमनुपलभ्यन्तस्यावयव्यभा वात् अतद्रूपप्रतिष्ठं मिथ्या ज्ञानमिति प्रायेण सर्वमेव प्राप्तं मिथ्याज्ञानमिति तदा च सम्यक्ज्ञान मपिकिंस्यात् विषयाभावात् यद्यदुपलभ्यते तत्तदवयवित्वेनाघ्रातं तस्माद- स्त्यवयवीयो महत्वादिव्यवहारापन्न: समापत्ते र्निर्वितर्काया विषयो भवति । ४२ ।

भा० का० पदार्थ—(या) जो (शब्दसंकेत श्रुतानुमान ज्ञान विकल्पस्मृति परिशुद्धौ) शब्द, संकेत (नियतकिया अर्थ) सुनाहुवा अनुमान, विकल्प और स्मृतिकी शुद्धता होनेपर (ग्राह्यस्वरूपोपरक्ता) ग्राह्यपदार्थके रूपमें प्रतीत होनेवाली (प्रज्ञास्वमिव) बुद्धिअपनेआप (प्रज्ञारूपम्) बुद्धीरूप (ग्रहणात्मकम्) ग्रहणके साधनरूपको (त्यक्त्वा) त्यागकर (पदार्थमात्रस्वरूपा) पदार्थके रूपको प्राप्तहुई (ग्राह्यस्वरूपा- पन्नेव) ग्राह्य " ग्रहणकरने योग्य " पदार्थके स्वरूप में परिणतहुई के समान (भवति) होती है (सा) वह (निर्वितर्कासमापत्तिः) निर्वि तर्क समापत्ति है (तथाच) ऐसे ही (व्याख्याता) (तस्यै) उसके निमित्त (एकबुद्ध्युपक्रम:) स्थिरबुद्धि का उपक्रम अर्थात् ज्ञानपूर्वक आरम्भ अथवा

उपाय (अर्थात्मा) अर्थ (अणुप्रचय विशेषात्मा) परमाणुसमूह (गवादिर्घटादिर्वा) गौ आदि वा घट आदि (लोक:) संसार है (सच) और वहलोक (संस्थान विशेषः) आकार विशेष हैं (भूत-सूक्ष्माणाम्) सूक्ष्मतत्वोंका (साधारणो धर्मः) सामान्यगुण (आत्मभूतः) उनमे अभिन्न है (फलेनव्यक्तेन) फलके प्रत्यक्ष होनेसे (अनुमितः) (स्वव्यंजकांजनः) अपना प्रकाश होता है (प्रादुर्भवति) प्रगट होता है (धर्म्मान्तरोदयश्च) दुसरा धर्म्म (तिरोभवति) एक छिपजाता है (सएष धर्म्मः) यहगुण (अवयवीत्युच्यते) अवयवी अर्थात् मुख्य कहलाता है (योसौ) यहधर्म्म (एकश्च) एकलाही (महांश्च) बहुतबड़ा (अणीयांश्च) अणुसेभी सूक्ष्म (स्पर्शवांश्च) और स्पर्शवाला क्रिया धर्मकश्च) क्रियायुक्त (अनित्यश्च) और अनित्य कहलता है (तेनावयविना) उस प्रधानसे (व्यवहारः क्रियन्ते) ध्यानादि व्यवहार किये जाते हैं (यस्य) जिसका (पुनरवस्तुकः) कारण सूक्ष्म है (सः) वह (प्रचयविशेषः) समूह विशेष सूक्ष्म च कारण मनुपलभ्यम्) सूक्ष्महै और उसका कारण प्राप्त होनाभी दुस्साध्य है (तस्या वयव्यभावत्) क्योंकिवह निरवयव होता है (अतद्रूपप्रतिष्ठम्) इसलिये उसकी स्वरूपस्थिति नहीं (मिथ्याज्ञानमिति) स्वरूप स्थितिके अभाव से मिथ्याज्ञान हुवा (स्थिति प्रायेण सर्वमेव प्राप्तं मिथ्याज्ञानमिति) इसप्रकार से संसारांतर्गत प्रायः सब पदार्थ मिथ्याहुवे (तदा) तब (सम्यकज्ञानमपि) यथार्थ ज्ञानका (किंस्यात्) कौन विषय होगा अथवा विषयके "ज्ञेय" अभाव से यथार्थ ज्ञानही नहीं हो सक्ता (विषयाभावात्) क्योंकि ज्ञेयपदार्थ के अभाव से (यद्यत्) जोजो (उपलभ्यते) मिलता है

(तत्तत्) वह सब (अवयवित्वेनाघ्रातम्) रूपवत्ता से सुगंधित है अर्थात् पदार्थमात्र अवयवी हैं (तस्मात्) इस हेतुसे (अस्ति) है (अवयवीयः) रूपवान् (महत्वादि) महत्तत्वादि (व्यवहारापन्नः) व्यवहार करने योग्य (समापत्ते निर्विकल्पायाः) निर्विकल्प समापत्तिका (विषयः) (भवति) विषय होती है। ४२।

भा० का० भावार्थ—जो समापत्ति, शब्दसंकेत, श्रुत, अनुमान, ज्ञान, विकल्प ग्राह्य के स्वरूप में भान होनेवाली अर्थात् अपने ग्रहणात्मकरूप को त्यागकरके निर्वितर्का समापत्ति में ग्राह्याकारभान होने लगती है यह सब बुद्धिका विकार है परन्तु आत्माशब्दादिको त्यागकरके वह अर्थ में आरूढ़ होजाता है जैसे गवादि अथवा घट आदि के वस्तुरूपान्तर है सूक्ष्मतत्वों के धर्म्म सब में एक समान हैं कभी किसी भूतका और किसी भूतके धर्म्मका प्रादुर्भाव और तिरोभाव होता रहता है यदि कहैं कि यह धर्म्म अवयवी है उसमें स्थिरहोने से निर्वितर्का समापत्ति नहीं हो सकी क्योंकि यह एकही धर्म्म अणुसे सूक्ष्म और महास्थूल स्पर्शवान् क्रियावान् और अनित्य है उस अवयवी से व्यवहार कियाजाता है, तो हम कहसक्ते हैं कि जो अवस्तुक अर्थात् अभाव है वह अतद्रूप प्रतिष्ठ है और मिथ्या है तब उस का विचार भी मिथ्याहुवा क्योंकि उस ज्ञानका कोई विषय नहीं है और जोध्येय पदार्थ दृश्य हैं वे सब अवयवी हैं इस लिये स्थूल पदार्थ भी निर्वितर्का समापत्तिके विषय हैं *

* यह सब तर्क दृश्य पदार्थों पर हैं ॥

उपाय (अर्थात्मा) अर्थ (अणुप्रचय विशेषात्मा) परमाणुसमूह (गवादिर्घटादिर्वा) गौ आदि वा घट आदि (लोकः) संसार है (सच) और वहलोक (संस्थान विशेषः) आकार विशेष है (भूत-सूक्ष्माणाम्) सूक्ष्मतत्वोंका (साधारणो धर्मः) सामान्यगुण (आत्मभूतः) उनसे अभिन्न है (फलेनव्यक्तेन) फलके प्रत्यक्ष होनेसे (अनुमितः) (स्वव्यञ्जकांजनः) अपना प्रकाश होता है (प्रादुर्भवति) प्रगट होता है (धर्मान्तरोदयच) दूसरा धर्म (तिरोभवति) एक छिपजाता है (सएप धर्मः) वहगुण (अवयवीत्युच्यते) अवयवी अर्थात् मुख्य कहलाता है (योसौ) वहधर्म (एकश्च) एकलाही (महाश्च) बहुतबड़ा (अणीयांश्च) अणुसेभी सूक्ष्म (स्पर्शवांश्च) और स्पर्शवाला क्रिया धर्मकश्च) क्रियायुक्त (अनित्यश्च) और अनित्य कहलता है (तेनावयविना) उस प्रधानसे (व्यवहारः क्रियन्ते) ध्यानादि व्यवहार किये जाते हैं (यस्य) जिसका (पुनरवस्तुकः) कारण सूक्ष्म है (सः) वह (प्रचयविशेषः) समूह विशेष सूक्ष्मं च कारण मनुपलभ्यम्) सूक्ष्महै और उसका कारण प्राप्त होनाभी दुस्साध्य है (तस्या वयव्यभावत्) क्योंकिवह निरवयव होता है (अतद्रूपप्रतिष्ठम्) इसलिये उसकी स्वरूपस्थिति नहीं (मिथ्याज्ञानमिति) स्वरूप स्थितिके अभाव से मिथ्याज्ञान हुवा (स्थिति प्रायेण सर्वमेव प्राप्तं मिथ्याज्ञानमिति) इसप्रकार से संसारांतर्गत प्रायः सब पदार्थ मिथ्याहुवे (तदा) तब (सम्यकज्ञानमपि) यथार्थ ज्ञानका (किंस्यात्) कौन विषय होगा अथवा विषयके "ज्ञेय" अभाव से यथार्थ ज्ञानही नहीं हो सक्ता (विषयाभावात्) क्योंकि ज्ञेयपदार्थ के अभाव से (यद्यत्) जोजो (उपलभ्यते) मिलता है

(तत्तत्) वह सब (अवयवित्वेनाघ्रातम्) रूपवत्ता से सुगंधित है अर्थात् पदार्थमात्र अवयवी हैं (तस्मात्) इस हेतुसे (अस्ति) है (अवयवीयः) रूपवान् (महत्वादि) महत्त्वादि (व्यवहारापन्नः) व्यवहार करने योग्य (समापत्ते निर्विकल्पायाः) निर्विकल्प समापत्तिका (विषयः) (भवति) विषय होती है । ४२ ।

भा० का० भावार्थ—जो समापत्ति, शब्दसंकेत, श्रुत, अनुमान, ज्ञान, विकल्प ग्राह्य के स्वरूप में भान होनेवाली अर्थात् अपने ग्रहणात्मकरूप को त्यागकरके निर्वितर्का समापत्ति में ग्राह्याकारभान होने लगती है यह सब बुद्धिका विकार है परन्तु आत्माशब्दादिको त्यागकरके वल अर्थ में आरूढ़ होजाता है जैसे गवादि अथवा घट आदि के वलरूपान्तर है सूक्ष्मतत्वों के धर्म्म सब में एक समान हैं कभी किसी भूतका और किसी भूतके धर्म्मका प्रादुर्भाव और तिरोभाव होता रहता है यदि कहैं कि यह धर्म्म अवयवी है उसमें स्थिरहोने से निर्वितर्क समापत्ति नहीं होसक्ती क्योंकि यह एकही धर्म्म अणुसे सूक्ष्म और महास्थूल स्पर्शवान् क्रियावान् और अनित्य है उस अवयवी से व्यवहार कियाजाता है, तो हम कहसक्ते हैं कि जो अवस्तुक अर्थात् अभाव है वह अतद्रूप प्रतिष्ठ है और मिथ्या है तब उस का विचार भी मिथ्याहुवा क्योंकि उस ज्ञानका कोई विषय नहीं है और जोध्येय पदार्थ दृश्य हैं वे सब अवयवी हैं इस लिये स्थूल पदार्थ भी निर्वितर्क समापत्तिके विषय हैं *

* यह सब तर्क दृश्य पदार्थों पर हैं ॥

एतयैव सविचारा निर्विचाराच सूक्ष्मविषया व्याख्याता ४३ ॥

सू० का० पदार्थ—(एतया) इससे (एव) ही (सविचारा) विचार सहित (निर्विचारा) विचार रहित (सूक्ष्मविषया) सूक्ष्म विषय वाली समापत्ति (व्याख्याता) वर्णित की गई ४३ ।

सू० का० भावार्थ—सवितर्क और निर्वितर्क समापत्तिके वर्णन करने से ही सविचार निर्विचार स्थूल विषय और सूक्ष्म विषय समापत्तियों का विषयभी समझना उचित है ४३ ।

भाष्य—तत्र भूतसूक्ष्मेष्वभिव्यक्तधर्म्मकेषु देशकाल निमित्तानुभवावच्छिन्नेषु यासमापत्तिः सा सविचारेत्युच्यते तत्राप्येक बुद्धिनिर्ग्राह्यमेवोदित धर्मविशिष्टं भूतसूक्ष्म मालंबनीभूतं समाधिप्रज्ञायामुपतिष्ठते या पुनः सर्वथोसर्वतः शान्तोदिताव्यपदेश्य धर्मानवच्छिन्नेषु सर्वधर्म्मानुपातिषु सर्व धर्म्मात्मकेषु समापत्तिस्सा निर्विचारेत्युच्यते एवंस्वरूपंहित-द्भूत सूक्ष्मं एतेनैवस्वरूपेणालंबनी भूतमेव समाधि प्रज्ञास्व रूपमपरंजयति प्रज्ञा प्रज्ञाचस्वरूपशून्यैव अर्थमात्रा यदा-भवति तदा निर्विचारेत्युच्यते तत्रमहद्वस्तु विषया सवितर्का निर्वितर्काच सूक्ष्मविषया सविचारा निर्विचारांच एव मुभयोरेतयैव निर्वितर्का या विकल्पहानिर्व्याख्यातेति ४३ ।

भा॰ का प॰ । (भूत सूक्ष्मकेषु) सूक्ष्म भूतोंमें (अभिव्यक्त धर्म्मकेषु) प्रकट हैं धर्म्म जिनके उनमें (देश काल निमित्तानुभवावच्छिन्नेषु) जो देश काल निमित्त और अनुभवसे संयुक्त हैं उनमें अथवा जिनका देश काल निमित्त से अनुभव किया जाता है (या समापत्तिः) जो समापत्ति होती है (सा) वह (सविचारेत्युच्यते) सविचार कहातीहै (तत्रापि) उस सविचार समाधि में भी (एक बुद्धिनिर्ग्राह्यम्) निश्चलबुद्धिके द्वारा-ग्रहण करने योग्य (उचित धर्म्म विशिष्टम्) प्रत्यक्ष धर्म्मयुक्त (भूत सूक्ष्मम्) सूक्ष्म भूत (आलम्बनीभूतम्) बुद्धिका आश्रय (समाधि प्रज्ञायाम्) सविचार समाधिस्थ बुद्धिमें (उपतिष्ठते) प्राप्त होता है (या पुनः) और जो (सर्वथा) सब प्रकारसे (सर्वतः) सब ओरसे (शान्तोदिताव्यपदेश्य-धर्म्मानवच्छिन्नेषु) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष व्यपदेश्य अर्थात् मुख्य धर्म्मवाले पदार्थोंमें (सर्व धर्म्मानुपातिषु) सर्व धर्म्म अर्थात् गुणोंसे रहित (सर्व धर्म्मात्मकेषु) और सब गुण युक्त जो पदार्थ हैं उनमें (या समापत्तिः) जो समाधि है (सा) वह (निर्विचारेत्युच्यते) निर्विचार कहाती है (एवम्) इस प्रकारसे (स्वरूपंहि तद्भूत सूक्ष्मम्) उक्त लक्षणवालेभूत सूक्ष्म (एतेन स्वरूपेणालम्बनी भूतमेवसमाधिः) इससे यह सिद्ध हुआ कि जो स्वरूपके आश्रयसे समाधि होती है वह सवितर्क (प्रज्ञा स्वरूप मपरं जयति) दूसरी अर्थात् निर्विचार (प्रज्ञास्वरूप शून्येव) जो समाधिस्थ बुद्धि स्वरूप शून्य (अर्थ मात्रा) अर्थ मात्र (यदा) जब (भवति) होती है (तदा) तब (निर्विचारेत्युच्यते) निर्विचार कहाती है (तत्र) अथवा दूसरा लक्षण इनका यह है (महद्वस्तु विषया सवितर्का) स्थूलाश्रयवाली समाधि सवितर्क (निर्वितर्काच सूक्ष्मविषया) और जो सूक्ष्म विषयके आश्रयसे समाधि होती है वह निर्विचार कहाती है (एवम्) इस प्रकार (एतयैव) इसही व्याख्या से (निर्वितर्कायाः) निर्वितर्क समाधिसे (विकल्प हानिः) संकल्प विकल्पकी निवृत्ति (व्याख्याता) कथनकी ॥ ४३ ॥

भा॰ का भा॰ । सूक्ष्म भूतोंके आश्रय देश काल और निमित्तके सं-

सूक्ष्मविषयत्वञ्चालिङ्गपर्य्यवसानम् ॥४४

सू० का प० (सूक्ष्मविषयत्वम्) सूक्ष्मविषयता (च) और (अलिंगपर्य्यवसानम्) चिह्न रहित पर्य्यन्त है ॥ ४४

सू० का भा० सूक्ष्मविषय वो कहाता है जो चिह्न से पर्य्यवसन्न हो अर्थात् अचिह्न न हो परन्तु अति सूक्ष्म हो जैसे जलका रस ॥ ४४

पार्थिवस्याणो र्गन्धतन्मात्रं सूक्ष्मो विषयः आप्यस्य रसतन्मात्रं तैजसस्य रूपतन्मात्रं वायवीयस्य स्पर्शतन्मात्रं आकाशस्य शब्दतन्मात्रम् इति तेषामहंकारः अस्यापि लिङ्गम् सूक्ष्म विषयः लिङ्गमात्रस्याप्यलिङ्गम् सूक्ष्मोविषयः न चालिङ्गात्परं सूक्ष्ममस्ति नन्वस्ति पुरुषसूक्ष्म इति सत्यम् यथा लिङ्गात्परमलिङ्गस्य सौक्ष्म्यम् नैवं पुरुषस्य किन्तु लिङ्गस्यान्वयी कारणं पुरुषो न भवति हेतुस्तु भवति अतः प्रधाने सौक्ष्म्यन् निरतिशयं व्याख्यातम् ॥४४॥

भा० का प० (पार्थिवस्याणोः) पृथिवी के अणुका (गन्धतन्मात्रं सूक्ष्मविषयः) गन्ध सूक्ष्म विषय है (आप्यस्य रसतन्मात्रं) जलके परमाणुका रस (तैजसस्य रूपतन्मात्रं) अग्निके परमाणुका रूप (वायवीयस्य स्पर्श तन्मात्रम्) वायुके परमाणुका स्पर्श (आकाशस्य शब्दतन्मात्रम्) आकाशका शब्द (इति तेषामहंकारः) ये पृथिवी आदिके अहंकार हैं (अस्यापि लिंगं सूक्ष्मो विषयः) इसका भी चिह्नमात्र सूक्ष्म विषय है (लिंगमात्रस्याप्यलिंगं सूक्ष्मो विषयः) चिह्नमात्रका सूक्ष्म विषय अलिंग कहाता है (नचालिंगात्परं सूक्ष्ममस्ति) अलिंग से अधिक कोई सूक्ष्म नहीं है (नन्वस्तिपुरुषः सूक्ष्मः)

यदि कहो कि उससेभी पुरुष सूक्ष्म है (इति सत्यम्) सो सत्य है (यथा लिंगात्परमलिंगस्य सौक्ष्मम्) जैसे लिंग से परे अलिंगका सूक्ष्म भाव है (नैवं पुरुषस्य) ऐसे पुरुषका नहीं है (किन्तु लिंगस्यान्वयी कारणम्) किन्तु लिङ्गका अनुकरण का कारण (पुरुषो न भवति) पुरुष नहीं है (हेतु-भवति) हेतु है (अतः) इससे (प्रधाने) प्रधान में (सौक्ष्मम्) सूक्ष्मता (निर-तिशय व्याख्यातम्) अतिशय रहित कही है ॥ ४४

भा० का भा० पृथिवी आदि पञ्चभूतसे उनके अणु सूक्ष्म हैं और अणुसे भी गन्धादि तन्मात्रा एवम् उनसे भी उनका अहङ्कार और अहङ्कार से भी चिह्नमात्र चिह्नमात्रसे भी अलिंग सूक्ष्म है और अलिंगसे सूक्ष्म कोई पदार्थ नहीं है यदि कहोकि पुरुष है तो पुरुष जैसे चिह्नमात्र से अलिङ्ग सूक्ष्म है वैसा नहीं है पुरुषलिङ्गका अन्वयी कारण नहीं है किंतु हेतु है अतएव पुरुष अतिशय सूक्ष्म है ऐसा नहीं कहा जाता है ॥ ४४

ता एव सबीजः समाधिः ॥४५

सू० का प० (ताएव) वोही (सबीजस्समाधिः) बीज सहित समाधि ॥ ४५ ॥

सू० का भा० वोहीचार प्रकारकी समाधि सबीज समाधि कहाती है ।४५

ताश्चतस्रः समापत्तयो वहिर्वस्तु बीजइति समाधिरपि सबीजः तत्र स्थूलेर्थे सवितर्कोनिर्वितर्कः सूक्ष्मेर्थे सविचारो निर्विचारः इति चतुर्धोपसंख्यातः समाधिरिति ॥४५॥

भा० का प० (ताश्चतस्रः) वेचारों (समापत्तयः) समाधियों (वहिर्वस्तु बीजा इति समाधिरपि बीजः) (तत्र) तहां (स्थूलेर्थे) स्थूल अर्थ में (सवित-र्को निर्वितर्कः) सवितर्क और निर्वितर्क (सूक्ष्मेर्थे) सूक्ष्म अर्थ में (सविचारो निर्विचारः) सविचार और निर्विचार (इति चतुर्धोपसंख्यातः) येचार प्रकार की (समाधिरिति) समाधि ॥ ४५

भा० का भा० आगे कहों चार प्रकारको समाधि बीज सहित कहाती हैं। तहां स्थूल अर्थ में सवितर्क और निर्वितर्क और सूक्ष्म अर्थ में सविचार निर्विचार येही चार समाधि सबीज कहाती हैं ॥ ४५

निर्विचारवैशारद्ये आध्यात्मप्रसादः ॥४६

सू० का प० (निर्विचार वैशारद्ये) निर्विचार समाधिकी विशारद भाव में (अध्यात्मप्रसादः) आध्यात्मिक प्रसाद ॥ ४६

सू० का भा० योगी जब निर्विचार समाधिस्थ होता है तब उसे आगे कहा हुवा अध्यात्म प्रसाद होता है ॥ ४६

अशुद्ध्यावरणमलापेतस्य प्रकाशात्मनो बुद्धिसत्वस्य रजस्तमोभ्याम् अभिभूतः स्वच्छः स्थितिप्रवाहः वैशारद्यम् निर्विचारस्य समाधेः वैशारद्यमिदं जायते तदा योगिनो भवति अध्यात्मप्रसादः भूतार्थविषयः क्रमाननुरोधी स्फुटप्रज्ञालोकः तथाचोक्तं प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान् भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोनुपश्यति ॥४६॥

भा० का प० (अशुद्ध्यावरणमलापेतस्य) अशुद्ध रूप आवरणके मलसे ढके हुवे (प्रकाशात्मनो बुद्धि सत्वस्य) प्रकाशरूप बुद्धि सत्वको (रजस्तमोभ्याम्) रज और तमो गुण के (अभिभूतः) ज्ञानशून्य (स्वच्छः) स्वच्छ (स्थिति प्रवाहः) स्थितिका प्रवाह (वैशारद्यम्) वैशारद्य कहाता हैं (यदा) जब (निर्विचारस्य समाधेः) निर्विचार समाधिका (वैशारद्यमिदं जायते) ये पूर्वोक्त वैशारद्य होता हैं (तदा) तब (योगिनः) योगीको (भवति) होता है (अध्यात्म प्रसादः) अध्यात्म प्रसाद (भूतार्थविषयः) भूत अर्थका विषय (क्रमाननुरोधी) क्रमके अनुकूल (स्फुट-

सू० का प० (तज्जः) उक्त समाधिसे उत्पन्न हुआ जो (संस्कारः) संस्कार (अन्य संस्कार प्रतिबन्धी) और संस्कारों का दूर करनेवाला होता है ॥ ४९

सू० का भा० समाधिसे उत्पन्न हुए संस्कार से अन्य संस्कार नष्ट हो जाते हैं ॥ ४९

समाधि प्रज्ञाभवः संस्कारो व्युत्थानसंस्काराशयम्बाधते व्युत्थान संस्काराभिभवात् तत्प्रभवाः प्रत्यया न भवन्ति प्रत्यय निरोधे समाधिरुपतिष्ठते ततः समाधिजाप्रज्ञा ततः प्रज्ञाकृता संस्कारा इति नवसंस्काराशयो जायते ततः प्रज्ञाततश्च संस्काराद्इति कथमसौ संस्कारातिशयश्चित्तं साधिकारन्न करिष्यतीति नते प्रज्ञाकृताः संस्काराः क्लेशक्षये हेतुत्वात् चित्तमधिकारविशिष्टं कुर्वन्ति चित्तं हि तेस्वकार्यादवसादयन्ति ख्यातिपर्यवसानं हि चित्तचेष्टितमिति किञ्चाख्य भवति ॥४९॥

भा० का प० (समाधिप्रज्ञा प्रभवः) समाधिस्थ बुद्धिके द्वारा उत्पन्न हुआ (संस्कारः) संस्कार (व्युत्थान संस्काराशयम्बाधते) लौकिकसंस्कारों का बाध करता है (व्युत्थानसंस्काराभिभवात्) लौकिक संस्कारों के नाश होने से (तत्प्रभावाः प्रत्ययान भवन्ति) उनसे उत्पन्न होने वाले ज्ञान भी नहीं होते (प्रत्ययविरोधे) सांसारिक ज्ञान के नष्ट होने से (समाधिरुपतिष्ठते) समाधि अवस्था प्राप्त होती है (ततः) उससे (समाधिजा प्रज्ञा) समाधि विषयिणी बुद्धि उत्पन्न होता है (ततः) उसके पश्चात् (प्रज्ञा कृताः संस्काराः) समाधि विषयणी बुद्धिके संस्कार होते हैं (इतिनवः संस्काराशयो जायते) नूतन संस्कार उत्पन्न होते हैं

(ततः प्रज्ञाः) उन संस्कारों से पुनः बुद्धि (ततश्च संस्काराः) और उस्से पुनः संस्कार (कथमसौ) क्यों नहीं संस्कारोंका चक्र (चित्तम्) चित्तको (साधिकारम्) विषययुक्त (न करिष्यति) क्यों नहीं करेगा (न ते प्रज्ञा कृताः) वे बुद्धिकृत संस्कार विषययुक्त नहीं करेंगे (क्लेशक्षये हेतुत्वात्) क्योंकि वे संस्कार अविद्यादि क्लेशोंको क्षय करनेके हेतु है (चित्तं हि) क्योंकि वह चित्तको (अधिकार विशिष्टम्) समाधिके अधिकारयुक्त (कुर्वन्ति) करते हैं (चित्तं हि) चित्तको वे संस्कार (स्वकार्य्यादवसादयन्ति) उसके कार्य्य से हटाते हैं (ख्यातिपर्य्यवसानंहि) विचार पर्य्यन्तही (चित्त चेष्टितम्) चित्तकी क्रिया हैं ॥ ४९ ॥

सू० का भा० । समाधिक संस्कार विषय संस्कारोंको नाश कर देता है जब विषयके संस्कार नष्ट हो जाते हैं तब विषयका ज्ञान भी विनष्ट हो जाता है जब विषय ज्ञान नाशको प्राप्त होजाता है तब समाधि विषयिणी बुद्धि उत्पन्न होती है पश्चात् समाधिज बुद्धिके संस्कार होते हैं अब यहां यह शंका होती है कि बुद्धिसे संस्कार और संस्कार से फिर बुद्धि होती रहेगी तब इस चक्रसे चित्त कभी स्थिर न होगा इसका यह समाधान है कि समाधिक बुद्धि और संस्कारसे चित्त चञ्चल नही होता क्योंकि यह बुद्धि और संस्कार अविद्यादि क्लेशोंके नाशक हैं वे योगोके चित्तको समाधिका अधिकारी बनाता है और जो चित्तकी चञ्चलता है उसे भी नष्ट कर देता हैं ॥ ४९ ॥

तस्यापिनिरोधे सर्वनिरोधान्निर्वीजस्समाधिः ॥५०

सू० का प० । (तस्यापि) उस अन्य संस्कारके भी (निरोधे) अवरोध होनेसे (सर्व निरोधात्) सबके निरोध होनेसे (निर्वीजः समाधिः) निर्विकल्प समाधि होती है ॥ ५० ॥

इति पातंजले सांख्यप्रवचने योगशास्त्रे

समाधिपादः ॥ प्रथमः ॥ १ ॥

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः १

सू० का पदार्थ—(तपः) स्वधर्म्मानुष्ठान (स्वाध्याय) वेदादि सत्य-शास्त्रोंका अभ्यास (ईश्वर प्रणिधानि) ईश्वरकी भक्ति विशेष (क्रियायोगः) क्रियायोग कहलाता है। १

सू० का भावार्थ—तप, स्वाध्याय और ईश्वर-भक्तिको क्रियायोग कहते हैं। १

भाष्य। उद्दिष्टः समाहितचित्तस्य योगः कथं व्युत्थितचित्तोपि योगयुक्तः स्यादित्येतदारभ्यते। नातपस्विनो योगः सिध्यति अनादि कर्म्मक्लेश वासना विचित्र प्रत्युपस्थित विषय जाला चाशुद्धिर्नान्तरेण तपः संभेदमापद्यते इति तपस उपादानम् तच्च चित्त प्रसादनमबाधमानमनेनासेव्यमिति मन्यते स्वाध्यायः प्रणवादिपवित्राणां जपः मोक्ष शास्त्राध्ययनं वा ईश्वर प्रणिधानं सर्व्वक्रियाणां परमगुरावर्पणम् तत्फल संन्यासो वा। १

भा० का० प०। (उद्दिष्टः) उपदेश [illegible]या गया (समाहित चित्तस्य)

सावधान चित्तवालेको (योगः) योग (कथं) किस प्रकारसे (व्युत्थित चित्तोपि) विवेकयुक्त चित्तवाला (योगयुक्तः) योगयुक्त (स्यादितेरतत्) होता है यह (आरभ्यते) आरम्भ किया जाता है (न) नहीं (अतपस्विनः) तपश्चर्य्यारहित मनुष्यको (योगस्सिध्यति) योगसिद्ध होता है (अनादि कर्मक्लेश वासना) अनादि कर्म्म और अविद्यादि क्लेशोंकी जो वासना अर्थात् संस्कार (विषय प्रत्युपस्थित जाला) विषयोंकी उठानेवाला विषयजाल (च) और (अशुद्धिः) मलिनता (नान्तरेण) नहीं बिना (तपस्संभेदम्) तपके खण्डन (आपद्यते) होती हैं (इति) यह (तपसः) तपका (उपादानम्) कारण है (तच्च) और वहतप (चित्त प्रसादनम्) चित्तका प्रसन्नकरनेवाला (अबाध्यमानम्) अखण्डनीय हैं (अनेन) इस कारणसे (आसेव्यम्) भली प्रकारसे धारण करने योग्य है (इति) यह (मन्यते) योगी समझता है (स्वाध्यायका अर्थ है कि (प्रणवादि पवित्राणां जपः) ओम् आदि पवित्र मन्त्रोंको जपना (मोक्ष शास्त्राध्ययनम् वा) या जिन शास्त्रोंमें मोक्षका उपदेश है शास्त्रोंके पढ़नेको स्वाध्याय कहते हैं (ईश्वर प्रणिधानम्) ईश्वर भक्तिका अर्थ है कि (सर्व क्रियाणाम्) सब क्रियाओंको (परमगुरौ) परमगुरु परमेश्वरमें (अर्पणम्) अर्पण करना (तत्फल सन्यासो वा) अथवा कर्म्मफलोंका त्याग ॥ १ ॥

भा० का भा० । पूर्व्वोक्तयोग सावधान चित्तवालेको कैसे सिद्ध होता है अब इस विषयका आरम्भ किया जाता है, तपश्चर्य्यारहित पुरुषको योग सिद्ध नहीं होता क्योंकि अनादि कर्म्म और अविद्यादि क्लेशोंकी वासनासे उत्पन्न हुआ विषय जाल तथा चित्तकी मलिनता विना तपके कभी नष्ट नहीं होती, बस तपका यही उपादान कारण है अर्थात् इसही अभिप्रायसे तप किया जाता है तपसे चित्त प्रसन्न होता है इसलिये तप रुचिपूर्वक ग्रहण करने योग्य है प्रणव आदि पवित्र वेदोक्त मन्त्रोंके जपको अथवा मोक्षोपदेशक शास्त्रोंके अध्ययनको स्वाध्याय और शुभकर्मोंको ईश्वरार्पण करने अथवा उनके फलत्यागको ईश्वर प्रणिधान कहते हैं ॥ १ ॥

सहि क्रियायोगः समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥ २ ॥

सू० का० प०। (सहि) क्योंकि वह (क्रियायोगः) क्रियायोग (समाधि भावनार्थः) समाधिके सिद्ध और (क्लेशतनूकरणार्थश्च) बहुसारा क्लेशोंके न्यूनकरनेके लिये है॥ २॥

सू० का भा०। उक्त क्रियायोग समाधिके सिद्ध और क्लेशोंके न्यून करनेके लिये होता है॥ २॥

भाष्य। सहि क्रियायोगः आसेव्यमानः समाधिं भावयति क्लेशाँश्चतनूकरोति प्रतनूकृतान् क्लेशान् प्रसंख्यानाग्निना दग्धबीज कल्पान प्रसव धर्मिणः करिष्यतीति, तेषां तनूकरणात्पुनः क्लेशैरपरामृष्टासत्व पुरुषान्यतामात्रख्यातिः सूक्ष्मप्रज्ञा समाप्ताधिकारा प्रतिप्रसवाय कल्पिष्यते इति अथ क्लेशाः कियन्तोवेति।

भा० का प०। (हि) क्योंकि (सः) वह (क्रियायोगः) कर्मयोग (आसेव्यमानः) उत्तमरीतिसे धारण किया जानेसे (समाधिम्) समाधिको (भावयति) प्रकाशित वा सिद्ध करता है (च) और (क्लेशान्) क्लेशोंको (तनूकरोति) न्यूनकरता है (प्रतनूकृतान्) न्यूनकिये हुवे क्लेशोंको (क्लेशान्) अविद्यादि क्लेशोंको (प्रसंख्यानाग्निना) योगाग्निसे (दग्धबीज कल्पान्) जलेहुवे बीजके समान (अप्रसवधर्मिणः) उत्पन्न होनेके अयोग्य (करिष्यति) करदेगा (तेषाम्) उनके (तनूकरणात्) सूक्ष्म करने से (पुनः) फिर (क्लेशैः) क्लेशोंसे (अपरामृष्टः स्पर्शरहित (सत्व-पुरुषान्यता मात्रख्यातिः) केवलज्ञानरूप (सूक्ष्मा) सूक्ष्मविषयोंको विचारने

वाली (प्रज्ञा) बुद्धि (समाप्ताधिकारा) समाप्त होगये हैं विषयमें अधिकार जिसके (अप्रति प्रसवाय) पुनः क्लेशोंको उत्पन्न नहीं (कल्पिष्यते) करेगी।

भा० का भा०। सूत्रोक्त क्रियायोग जब अच्छी प्रकारसे धारण किया जाता है तब वह समाधिको सिद्ध करता है और क्लेशोंको दूर करता है अर्थात् योगाग्निसे क्लेशोंके बीजको जलाकर फिर उन्हें उत्पन्न होनेके योग्य नहीं रखता जब योगीके क्लेश नष्ट हो जाते हैं तब इसकी बुद्धि सूक्ष्म विचार करने योग्य होती है और फिर क्लेश उत्पन्न नहीं होते ॥ २ ॥

अथ क्लेशाः के कियन्तोवेति ।

अब अगले सूत्रमें यह वर्णन करेंगे कि क्लेश कौन कौन हैं और कितने हैं ॥ २ ॥

अविद्यास्मिता राग द्वेषाभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः ॥ ३ ॥

सू० का भा०। अविद्या १ अस्मिता २ राग ३ द्वेष ४ और अभिनिवेश ५ यह प्रकारका क्लेश है ॥ ३ ॥

सू० का प०। (अविद्य) वेत्तिपदार्थानां तत्वस्वरूपं ययासाविद्यात ऽविद्या जिससे सब पदार्थोंका यथार्थरूप जाना जाय उसे विद्या कहते हैं और उससे विपरीत अविद्या कहलाती है (अस्मिता) अहङ्कार (राग) प्रीति (द्वेष) शत्रुता (अभिनिवेश) अनित्यैरपिदेहादिभिर्मे वियोगोमाभूदितिमरणभीतिजनकमज्ञानमभिनिवेशः, मरनेके भयको अभिनिवेश कहते हैं (पञ्चक्लेशः) यही पांच क्लेश हैं ॥ ३ ॥

भाष्य।—क्लेशाइति पञ्चविपर्ययाइत्यर्थः तेस्यन्दमानागुणाधिकारं द्रढयन्ति परिणाममवस्थापयन्ति कार्य्य-

कारणस्रोत उन्नमयन्ति परस्परानुग्रहतन्त्रीभूत्वा कर्मविपा-
कञ्चाभिनिर्हरन्तीति ॥ ३ ॥

भा० का प० । (क्लेश इति) क्लेशका अर्थ करते हैं (पञ्चविप-र्ययाः) पांच प्रकारके मिथ्याज्ञान (स्पन्दमानाः बढ़कर वा अधिक होकर (गुणाधिकारम्) तमोगुणादिके अधिकारको (दृढयन्ति) दृढ़ करते हैं (परिणामम्) भिन्न दशा अर्थात् स्वभावके विकारको (अवस्था-पयन्ति) सिद्ध वा स्थिर करते हैं (कार्यकारणस्रोतः) अविद्याके कार्य जो सुख दुःखादि और अविद्या कारण जो अविवेक इन दोनों कार्य्य कारण नदलेको (उन्नमयन्ति) बढ़ाते हैं (परस्परानुग्रहतन्त्रीभूत्वा) एक दूसरेके सहायक होके (कर्मविपाकञ्च) कर्मके फलको (अभिनिर्ह-रन्ति) प्रकाशित करते हैं ॥ ३ ॥

भा० का भा० । अविद्यादि पांचक्लेश अर्थात् पांच प्रकारके मिथ्या ज्ञान जब अधिक होतेहैं तब अपने अपने गुणोंको दृढ़ करलेते हैं अर्थात् जब मनुष्यकी अस्मिता अधिक होती है तब अहङ्कार दृढ़ होजाता है और चित्तकी प्रकृतिको बदल देते हैं, सांसारिक सुख और दुःखकी नदीको बहाने लगते हैं एक दूसरे के सहायकारी होके कर्मके फलोंको प्रका-शित करते हैं ॥ ३ ॥

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनु विच्छिन्नोदाराणाम् ॥ ४ ॥

सू० का प० । (उत्तरेषाम्) अस्मिताको आदि लेके क्लेशोंका (प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्) प्रसुप्त अर्थात् दग्ध अथवा लीनके समान है स्वरूप जिनका और नष्ट होगई है उदारता अर्थात् शक्ति जिनकी (अविद्या क्षेत्र स्थान हैं ॥ ४ ॥

सू० का भा०। और सब क्लेशोंका अविद्या कारण है॥ ४॥

भाष्य। अत्राविद्याक्षेत्रम् प्रसवभूमिरुत्तरेषामस्मितादीनां चतुर्विधकल्पितानाम् प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् तत्रका प्रसुप्तिःचेतसि शक्तिमात्र प्रतिष्ठानां बीजभावोपगमः तस्यप्रबोध समये संमुखीभावः प्रसंख्यानवता दग्धक्लेश बीजस्य संमुखीभूतेप्यालम्बने नासौपुनरस्ति दग्धबीजस्य कुतः प्ररोह इति अतः क्षीण क्लेशः कुशल चरमदेह इत्युच्यते तत्रैवसा दग्धबीजभावा पञ्चमीक्लेशावस्थानान्यत्रेति सतां क्लेशानां तदाबीजसामर्थ्यं दग्धमितिविषयस्य सम्मुखीभावेपि सति-न भवत्येषां प्रबोध इत्युक्ता प्रसुप्तिर्दग्धबीजानाम प्ररोहश्च तनुत्वमुच्यते। प्रतिपक्षभावनोपहताः क्लेशास्तनवोभवन्ति तथा विच्छिद्य विच्छिद्य तेन तेनात्मना पुनः समुदाचरन्तीति॥ विच्छिन्नाः कथं रागकाले क्रोधस्यादर्शनात् नहि रागकाले क्रोधस्समुदाचरति रागश्च क्वचिद्दृश्यमानो नविषयान्तरे नास्ति नैकस्यां स्त्रियां चैत्रो रक्त इति अन्यासु स्त्रीषु विरक्तः किन्तु तत्र रागो लब्धवृत्तिः अन्यत्र भविष्यद्वृत्तिरिति सहितदा प्रसुप्ततनु विच्छिन्नो भवति विषये यो लब्धवृत्तिः स उदारः सर्वएवैते क्लेशविषयत्वान्नातिक्रामन्ति कस्तर्हि-विच्छिन्नः प्रसुप्ततनुरुदारोवा क्लेश इत्युच्यते सत्यमेवैतत्

किन्तु विगृह्यास्ता सर्वेषां विच्छिन्नादित्वम् यथैव प्रतिपक्ष
भावना तोनिवृत्तस्तथैव स्वव्यञ्जकांजनेनाभि भवति यद्
विद्या वस्तु कार्येति तथैवानु शेरते सर्वभावविपर्यास यत्र
काले उपलभ्यन्ते चैषाणां चाविद्यामनुजीयन्त इति तस्या
विद्यास्वरूपमुच्यते ॥ ४ ॥

भा० का प० । (अत्र) इन समस्त क्लेशमें (अविद्या क्षेत्रम्) अविद्यान्वित (प्रसवभूमिः) अर्थात् उत्पत्तिका स्थान है (उत्तरेषाम्) आगेलिखे (अस्मितादीनाम्) अस्मितादि (चतुर्विध कल्पितानाम्) चार प्रकारकी मनोवृत्तियोंका (प्रसुप्त तनुविच्छिन्नोदाराणाम्) प्रसुप्त अर्थात् लीन वा सोयेहुवेके समान तनु अर्थात् सूक्ष्मभूत और नष्ट होगई है शक्ति जिनकी (तत्र) उनमें (का) क्या है (प्रसुप्तिः) अर्थात् प्रसुप्ति किसे कहते हैं (चेतसि) चित्तमें (प्रतिष्ठानाम्) रहनेवाले क्लेशोंका (बीज भावोपगमः) बीजभावको प्राप्त होजाना (तस्य) उस क्लेशका (प्रबोध आलम्बने) जाग्रत अर्थात् चैतन्य होनेपर (अभिमुखीभावः) क्लेश प्रदान करनेको उद्यत होना और विषयमें फँसादेना होजाता हैं (प्रसंख्यानवतः) योगीको (दग्धक्लेशबीजस्य) दग्ध होगये हैं क्लेशोंके बीज जिसके हृदयमें (सम्मुखीभूतेपि) यदि क्लेश फिर सम्मुख वा चैतन्य हों भी (आलम्बने) आश्रय (न) नहीं (पुनः) फिर (अस्ति) है (दग्धबीजस्य) जिसका बीजही जलगया है (कुतः) कहांसे (प्ररोहः) उत्पत्ति (अतः) इसलिये (क्षीणक्लेशः) जिसके क्लेश क्षीण होगये हैं (कुशलः) सुचतुर (चरमदेहः) यह वर्त्तमान शरीरही जिसकी अंतावस्था है (इत्युच्यते) कहता है (तत्रैव) उसहीमें (सा) वह (दग्धबीजभावा) भस्म होगया है बीज जिसका (पञ्चमी क्लेशावस्था) पांचवी क्लेशकी अवस्था (न) नहीं (अन्यत्रेति) और किसीमें वर्तमान (क्लेशानाम्) क्लेशोंकी (तदा) उसकालमें (बीज सामर्थ्यम्) उत्पन्न होनेकी शक्ति (दग्धम्)

भस्म होगई है (विषयस्य) विषयके (सन्मुखीभावेपि) सन्मुख होनेपर भी (न भवति) नहीं होता (एषाम्) क्लेशोंका (प्रबोधः) प्रबोध (इत्युक्ता) इस प्रकारसे कही जाती है (प्रसुप्तिः) क्लेशोंकी प्रसुप्त अवस्था (दग्धबीजानाम्) जलेहुवे बीजवालोंका (अप्ररोहश्च) फिर उत्पन्न न होना (तनुत्वम्) तनु अर्थात् हलका होना (उच्यते) कहाता है (प्रतिपक्ष भावनोपहताः) प्रतिपक्ष अर्थात् क्लेशके शत्रु योग की भावना अर्थात् विचारता साधनसे नाश हुवे (क्लेशः) पांचोक्लेश (तनवोभवन्ति) तनु अर्थात् सूक्ष्माकार प्रायः अदृश्यके समान होजाता है (तथा) ऐसेही (विच्छिद्यविच्छिद्य)टुकड़े टुकड़े होकर (तेनतेनात्मना) अपने अपने रूपसे (पुनः) फिर (समुदाचरन्ती) आदरितहोने लगते हैं (विच्छिन्नाः कथम्) खंडित कैसे होतेहैं ? (रागकाले) मोहके समयमें (क्रोधस्यादर्शनात्) क्रोधके गुप्त हो जानेसे (नहि) क्योंकि न ही (रागकाले) रागके समयमें (क्रोधः समुदाचरति) क्रोध रहताहै (रागश्च) और रागकी (क्वचित्) कहीं (दृश्यमानः देखा गया (न) नहिं (विषयान्तरे) दूसरे क्रोधादि विषयोंमें (नास्तिति) यह नहीं होता (एकस्यांस्त्रियाम्) एकस्त्रीमें (चैत्रोनुरक्तः) चैत्रनामाएकपुरुष प्रीतिमान् है (अन्यासुस्त्रीषु) और स्त्रियोंमें (विरक्तः) विरक्त है (किन्तु) लेकिन (तत्र) पहिलीस्त्रीमें (रागः) प्रीति (लब्धवृत्तिः) लगी हुई (अन्यत्र) और स्त्रियोंमें (भविष्यद्वृत्तिः) प्रीति भविष्यत् रूपसे है (स) वह (तदा) उस कालमें (प्रसुप्त तनु विच्छिन्नः) प्रसुप्त तनु अथवा विच्छिन्न (भवति) होता है (विषये) विषयमें (यः) जिस की (लब्धवृत्तिः) वृत्ति लगी है (सः) वह (उदारः) उदार कहाता है।

भा० का भा० इन सब क्लेशोंका मूल कारण अर्थात् उत्पत्ति स्थान अविद्या है क्योंकि विना अविद्याके अन्यचारों क्लेश प्रसुप्तके समान पड़े रहते है अर्थात् उनका बीजमात्र हृदयमें रहता है परन्तु जब अविद्याका मनुष्यके हृदयमें संचार होता है तब अन्य क्लेशभी जाग्रत होजाते है किन्तु योगाग्निसे जिसकेक्लेश भस्म जाते हैं उसको पुनः किसि क्लेशका आविर्भाव

नहीं होता क्योंकि जलेबीजसे वृक्षकी उत्पत्ति होनाही असम्भव है ॥ ४ ॥

अनित्याशुचि दुःखानात्मसुनित्य शुचि सुखात्मख्यातिरविद्या ॥ ५ ॥

सू० का पदार्थ, (अनित्याशुचि दुःखानात्मसु) अनित्यमें, अपवित्रमें, दुःखमें, अनात्म अर्थात् जड़ पदार्थोंमें (नित्यशुचि सुखात्मख्यातिः) क्रमशः नित्य, पवित्र, सुख, आत्म, अर्थात् चैतन्य, बुद्धि को (अविद्या) अविद्या कहते हैं ॥ ५ ॥

सू० का० भा० । अनित्य में नित्यबुद्धि अपवित्रमें पवित्रबुद्धि दुःख में सुखबुद्धि अनात्म में आत्मबुद्धि को अविद्या कहते हैं ।

व्या० दे० कृ० भाष्य—अनित्येकार्ये नित्यख्यातिः । तद्यथा ध्रुवा पृथिवी ध्रुवा सचन्द्रतारकाद्यौः अमृतादिवौकस इति । तथाशुचौ परम बीभत्से कार्ये शुचिख्यातिः । उक्तञ्च स्थानाद्बीजादुपष्टम्भान्निःस्यन्दान्निधनादपि कायमा-धेय शौचत्वात् पण्डिताह्य शुचिं विदुः । इत्य शुचौ शुचि-ख्यातिर्दृश्यते नवेवशशाङ्क लेखा कमनीयेयं कन्यामध्व मृतावयव निर्मितेव चन्द्रंभित्वानिःसृतेव ज्ञायते नीलोत्पल पत्रायताक्षी हावगर्भाभ्यां लोचनाभ्याञ्जीव लोकमाश्वास-यन्तीवेति कस्यकेनाभि सम्बन्धः । भवतिचैवमशुचौ शुचि विपर्या स प्रत्यय इति एते ना पुण्ये पुण्यप्रत्ययस्तथैवानर्थे चार्थप्रत्ययो व्याख्यातः तथा दुःखे सुखख्यातिं वक्ष्यति

परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुणवृत्ति विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिन इति तत्र सुखख्यातिरविद्या तथा अनात्मन्यात्मख्यातिर्बाह्योपकरणेषु चेतनाचेतनेषु भोगाधिष्ठाने वा शरीरे पुरुषोपकरणे वा मनसि अनात्मन्यात्म ख्यातिरिति तथैतदत्रोक्तं व्यक्तमव्यक्तं वा सत्वमात्मत्वेनाभि प्रतीत्य तस्य सम्पदमनुनन्दत्यात्म सम्पदं मन्वानस्तस्य व्यापदमनु शोचत्यात्म व्यापदं मन्वानः सर्वोप्रति बुद्ध इत्येषा चतुष्पदा भवत्यविद्या मूलमस्य क्लेश सन्तानस्य कर्माशयस्य च स विपाकस्येति तस्याश्चामित्रा गोष्पदवद्वस्तु स तत्वं विज्ञेयम् यथानामित्रो मित्राभावो न मित्र मात्रकिन्तु देमएव तास्यासन्यवस्तु्त्वंतरम् एवम् विद्या न प्रमाणं न प्रमाणाभावः किन्तु विद्या विपरीतं ज्ञानान्तरमविद्येति । ५

भा० का० प० –(अनित्ये कार्ये) अनित्य अर्थात् अस्थिर अथवा प्रकृतिके कार्य रूप जगत् में नित्य अर्थात् चिरस्थायी अथवा कारण बुद्धि करना (तद्यथा) जैसे (ध्रुवा पृथिवी) अनित्य पृथ्वीमें ध्रुव अर्थात् अचल और स्थिर बुद्धि करना अविद्या है (ध्रुवा सचन्द्रतार कादयौः) तारागण और चन्द्रमाके सहित उर्द्धलोकों को अविनाशी मानना अविद्या है (अमृतादिवौकसः) देवतालोग अमर अर्थात् मृत्यु रहित हैं (इति) इसको अविद्या कहते हैं (इतरशुचौ) इस प्रकार से अपवित्रमें (शुचिख्यातिः) पवित्रता विषयक बुद्धि (दृश्यते) दीखती है (नवेयंशशांक लेखा) यह चन्द्रकला नवीन है (कमनीयेयं कन्या) यह कन्या कमनीय अर्थात् कामना योग्य वा मनोहर है (मध्ववयवनिर्मितेव) कोमल अमृत के समान

अङ्गोंवाली (हावगर्भाभ्यां लोचनाभ्याम्) हाव भावसे भरे नेत्रोंसे (जीव-लोकमाश्वासयन्तीव) प्राणियों को आश्वासन करती है (भवति चैवमशुचौ) होती है अपवित्रमें (शुचिविपर्य्यास प्रत्ययः) पवित्र बुद्धि ज्ञानका विषय (एतेन) इससे (अपुण्ये पुण्य प्रत्ययः) पापमें पुण्य ज्ञान (तथैव) ऐसेही (अनर्थेचार्थ प्रत्ययः) अनर्थमें अर्थ ज्ञान (तथा) ऐसेही (दुःखेसुखख्यातिम्) दुःखमें सुखबुद्धि के नष्ट होनेसे सोचता है (आत्मव्यापन्नं मन्यमानः) अपनी हानि समझता है (इत्येषा चतुष्पदा) इस प्रकारके चार भागवाली (भवत्य-विद्या) अविद्या होती है (मूलमस्य क्लेश सन्तानस्य) इस क्लेश समुदायकी मूल अविद्याही है (कर्माशयस्य) सब प्रकारके कर्मोंकी (सविपाकस्य) और कर्म फलोंसे दुःख होते हैं उनका कारण अविद्या है (तस्याश्च) और उस अविद्याका अभिप्राय (अमित्रा गोष्पदवद्वस्तु सतत्वं विज्ञेयम्) अमित्र अगोष्पदके समान तत्वार्थके सहित समझनी योग्य है (यथा) जैसे (ना-मित्रः) हित साधकको मित्र कहते हैं और जो उसके विपरीत अर्थात् अहित चिन्तक हो उसे अमित्र कहते हैं एवम् जो अमित्रके विपरीत हो वह नामित्र कहाता है (मित्राभावो न मित्र मात्रम्) अभिप्राय यह है कि नामित्र शब्दसे मित्राभाव अर्थात् शत्रुता सिद्ध नहीं होती । ५ ।

भा० का भा० । अनित्य-कार्य्यमें अर्थात् पृथिवी और अन्तरिक्षस्थ सब लोक अचल हैं, अथवा देवता अमर हैं इत्यादि विपरीत बुद्धिको अविद्या कहते हैं, अथवा मल मूत्रादि परम अशुचि पदार्थों के स्थान दे-हादिमें पवित्रबुद्धि करना अविद्या है, क्योंकि जगत्में देखते हैं कि को-टिशः मनुष्योंको स्त्रीके अपवित्र शरीरमें और स्त्रीको वैसेही पुरुषके शरीरमें पवित्रताकी बुद्धि होती है, ऐसेही दुःखमें सुखबुद्धि, और अनात्म पदा-र्थोंमें आत्मबुद्धिको अविद्या कहते हैं ॥ ५ ॥

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ६

सू० का प० । (दृग्दर्शनशक्त्योः) द्रष्टा और दर्शन अर्थात् देखनेमें

सहायक इन दोनोंकी शक्तियोंको (एकात्मतेव) अभिन्न जानना (अस्मिता) अस्मिता कहाती है ॥ ६ ॥

सू० का भा० । द्रष्टा और दर्शन शक्तिमें अभेदज्ञानको अस्मिता कहते हैं ॥ ६ ॥

भा० । पुरुषोदृक् शक्तिर्बुद्धिर्दर्शनशक्तिरित्येतयोरेकस्वरूपापत्ति रिवास्मिताक्लेश उच्यते भोग्यभोक्तृ शक्त्योरत्यंतविभक्तयो रत्यन्ता सङ्कीर्ण योर विभाग प्राप्ताविव सत्यां भोगः कल्पते । स्वरूप प्रतिलम्भेतु तयोः कैवल्यमेव भवति । कुतो भोग इति तथा चोक्तम् बुद्धितः परम पुरुषमाकार शील विद्यादिभिः विभक्तमपश्यन् कुर्य्यात्तत्रात्म बुद्धिं मोहेनेति ॥ ६ ॥

भा० का प० । (पुरुषोदृक्शक्तिः) पुरुष अर्थात् जीव में देखने की शक्ति होती है (बुद्धिर्दर्शनशक्तिः) बुद्धिमें दर्शन अर्थात् देखनेमें सहायकारिणी शक्ति होती है (एतयोः) इन दोनों शक्तियोंको (एकस्वरूपापत्तिः) एक स्वरूप अर्थात् अभिन्न मानना (अस्मिता क्लेश उच्यते) अस्मिता क्लेश कहाता है (भोग्यभोक्तृत्व शक्ति) ऐसेही भोग्यशक्ति और भोक्तृ शक्तियोंको (अत्यन्त विभक्तयोः) जो अत्यन्तही भिन्न हैं (अत्यन्तासंकीर्णयोः) और जो अत्यन्त असङ्कीर्ण अर्थात् जिनका परस्पर कुछभी मेल नहीं है (अविभाग प्राप्ताविव) विभाग रहित अर्थात् एक मानकर (भोग कल्पते) भोगकी कल्पना करना है उसे अस्मिता कहते हैं (स्वरूप प्रतिलम्भेतु) जब स्वरूपकी अर्थात् जीवको परमेश्वर वा अपने रूपकी प्राप्ति अर्थात् ज्ञान होता है तबतो (तयोः कैवल्यमेव भवति) दृक्शक्ति और दर्शन शक्ति कैवल्यको प्राप्त होजाती हैं (कुतो भोगः) फिर भोगही

एक क्या होगा – (तथा चोक्तम्) ऐसाही अन्यत्रभी कहा है "(बुद्धितः) बुद्धिसे (परम पुरुषम्) ईश्वर और जीवको (आकारशील विद्यादिभिः) लक्षणशील विद्यादिकोंसे (अविभक्तम्) अभिन्न (अपश्यन) बिना देखे आत्म बुद्धिम् एकताको कुर्य्यात् करे (बुद्धि मोहेनेति) मूर्खताजनित है ॥ ६ ॥

भा॰ का भा॰। पुरुष अर्थात् ईश्वर और जीव इनमें देखनेकी शक्ति है, और बुद्धिमें दिखलानेकी शक्ति है इससे इन दोनों शक्तियों को एक मानना इसेही अस्मिता क्लेश कहते हैं, जिस प्रकारसे भोग्य अर्थात् भोग करनेके योग्य और भोक्तृशक्ति अर्थात् भोग करनेवालेकी शक्ति जो परस्पर अतिही भिन्न और अत्यंतही असङ्कीर्ण हैं उनको एक मानना ऐसाही अन्यत्र भी लिखा है कि बुद्धिसे परम पुरुष अर्थात् ईश्वर वा जीव को लक्षणशील विद्यादिसे विभक्त अर्थात् भिन्न विना विचारे तिनमें एक बुद्धि करना केवल मूर्खताही है कैवल्य समाधिमें बुद्धि लीन हो जाती हैं ॥ ६ ॥

सुखानुशयी रागः ७

सू॰ का प॰। (सुखानुशयी) सुखका अनुस्मरण पूर्व्वक जो सुख में प्रवृत्ति होती है (रागः) राग कहाता है।

सू॰ का भा॰। सुखसाधनको राग कहते हैं ॥ ७ ॥

भा॰। सुखाभिज्ञस्य सुखानुस्मृति पूर्व्वः सुखेतत्साधनेवायो गर्धस् तृष्णा लोभः स राग इति ॥ ७

भा॰ का प॰। (सुखाभिज्ञस्य) जिसको सुख ज्ञान इच्छा हो उसको (सुखानुस्मृति पूर्व्वः) सुखके अनुस्मरण पूर्व्वक (सुखे) सुखमें (तत्साधनेवा) अथवा उसके साधनमें (यो) जो (गर्धः) लोभ (सः) सो (रागइति) राग है ॥ ७ ॥

दुःखानुशयीद्वेषः ॥ ८॥

सू० का प०। (दुःखानुशयी) दुःखका अनुस्मरण (द्वेषः) द्वेष कहाता है। ८।

सू० का० भा० दुःखसाधन को द्वेष कहते हैं ८॥

भा० दुःखाभिज्ञस्य दुःखानुस्मृति पूर्वो दुःखतत्साधनेषु यः प्रतिघो मन्युर्जिघांसा क्रोधः स द्वेषः ॥ ८ ॥

भा० का पा० दुःखाभिज्ञस्य (दुःख जाननेवालेका) दुःखानुस्मृति पूर्वकः (दुःखानुस्मरण पूर्वक (दुःखे) (दुःखमें) तत्साधनेषु वा (अथवा तिसके साधनमें) योमन्युः (जो क्रोध) सद्वेषः (वो द्वेष है) ८।

भा० भा० दुःखके जानने वालेका दुःख स्मरण पूर्वक जो क्रोध उसे द्वेष कहते हैं ॥८

स्वरसवाही विदुषोपि तथा रूढोऽभिनिवेशः। ९

सू० का पदार्थ – (स्वरसवाही) अपने स्वभावको प्राप्त करानेवाला (विदुषोपि) पण्डितोंको भी (तथा) तैसे (आरूढ़ः) प्राप्त (अभिनिवेशः) उसे अभिनिवेश दुःख कहते हैं। ९।

सू० का भावार्थ – जो मूर्ख तथा पण्डितोंको एक समान प्रवेश हो उसे अभिनिवेश कहते हैं ॥ ९ ॥

भा०। सर्वस्य प्राणिन इयमात्माशीर्नित्या भवति मा न भूवं भूयासमिति। नचाननुभूत मरण धर्म कस्यैषा भवत्या त्माशीः एतया च पूर्व्व जन्मानुभवः प्रतीयते स चायम-

भिनिवेश: क्लेश: स्वरसवाही क्रमेरपि जात मात्रस्य प्रत्य-क्षानुमानागमैर संभावितो मरणत्रा स उच्छेद दृष्ट्यात्मक: पूर्वं जन्मानुभूतं मरण दुःखमनुमापयति । यथा चायमत्यन्त मूढ़ेषु दृश्यते क्लेश तथा विदुषोपि विज्ञात पूर्वापरान्तस्य रूढ़: कस्मात् समानाहितयो: कुशला कुशलयो: मरण दुःखानुभवादियं वासनेति ॥ ९ ॥

भा॰ का प॰ । (सर्व्वस्य प्राणिन:) सब प्राणिओंकी (इयम्) यह (आत्माशी:) आशा अर्थात् अपने जीवको आशीर्वाद अर्थात् हितचिन्तन (नित्या भवति) सदैव होता है (मानभुवंहिभूयासमिति) मैं न हूँ यह नहीं किन्तु मैं हूँ (न च) नहीं (अननुभूत मरण धर्मकस्य) बिना भोगे मरनेके दुःखवालेको (एषा) यह (भवति) होता है (आशी:) हित (एतया च) और इस आशीर्वादसे (पूर्व्व जन्मानुभव: प्रतीयते) पूर्व्व जन्मका अनुभव प्रतीत होता है (सचायमभिनिवेश: क्लेश:) यह अभिनिवेश क्लेश कहाता है (स्वरसवाही क्रमेरपि) अपने रसमें मग्न कीड़ेको (जात मात्रस्य) तत्क्षण उत्पन्न हुएको (प्रत्यक्षानुमानागमैरसम्भावित:) प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्दप्रमाणसे कीड़ेने मरनेके दुःखको नहीं समझा (मरणात्रा स उच्छेद दृष्ट्यात्मक:) मरनेसे शरीर सत्ता भङ्ग होजाती है यह (पूर्व्व जन्मानुभूतम्) पूर्व्व जन्ममें भोगे हुए (मरण दुःखमनुमापयति (मरनेके दुःखको अनुमान कराता है (यथा) जैसा (अत्यन्त मूढ़ेषु दृश्यते) यह भय अत्यन्त मूर्खोंमें दीखता है (क्लेशस्तथा विदुषोपि) वैसा ही क्लेश विद्वानोंको (विज्ञात पूर्व्वा परान्त रूढ़) पूर्व परको जाननेवालोंमें भी होता है (कस्मात्) क्योंकि (समाहि) तुल्य है (तयो: कुशला कुशलयो:) मूर्ख और विद्वान्‌की (मरण दुःखानुभवात्) मरण दुःखके अनुभवसे (इयम् वासना यह संस्कार होता है॥ ९ ॥

भा० का भा०। प्राणी मात्रको आत्महित चिन्तन जरूर रहता है अर्थात् सबकी यही रुचि रहती है कि मैं कभी न मरूं, परन्तु बिना मृत्युका दुःख भोगे यह अपना हित चिन्तन होनाही असम्भव है, इससे पुनर्जन्म सिद्ध होता है मृत्युका भय प्राणी मात्रको देखते हैं जो भय प्राणीमें समान पाया जाता हो उसे अभिनिवेश कहते हैं, यदि कोई कहे कि मरण समयमें दूसरेका दुःख देखकर प्राणियोंका भयभीत होना कहा जाय तो अभी उत्पन्न हुआ कीड़ा मृत्युसे क्यों डरता है, उस कीड़ेको प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द प्रमाणसे मृत्युके दुःखकी सिद्धि नहीं हुई परन्तु उसको भय होता है इससे सिद्ध भया कि पुनर्जन्म अवश्य है, इत्यादि सर्व्व समान व्यापि दुःखको अभिनिवेश कहते हैं॥ ८॥

ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः १०

सू० का प०। (ते) वे दुःख (प्रतिप्रसवहेयाः) निषिद्ध वस्तुकी पुनः प्राप्ति भावनाके समान त्याज्य (सूक्ष्माः) लघु हैं॥ १०॥

सू० का भा०। पूर्व्वोक्त पञ्चक्लेश प्रतिप्रसवहेय अर्थात् त्यक्त वस्तुकी पुनः प्राप्तिके त्यागके समान त्याज्य है और सूक्ष्म है॥ १०

भा०। ते पञ्च क्लेशा दग्धबीज कल्पा योगिनश्चरिताधिकारे चेतसि प्रलीने सह तेनैवास्तङ्गच्छन्ति स्थितानान्तु बीज भावोपगतानाम्॥ १०॥

भा० का प०। ते (वो) पञ्चक्लेशाः (पांचोक्लेश) दग्धबीजकल्पा (दग्धबीजके समान) योगिनश्चरिताधिकारे योगमें (चेतसिलीने) चित्त लीन होनेसे (सहतेनैव) उसहीके सङ्ग (अस्तङ्गच्छन्ति) अस्तहो जाते हैं (स्थितानान्तु) बीजभावोपगतानाम्) स्थितभी होनेपर बीजोत्पत्ति नाश हो जाती हैं॥ १०॥

भा० का भा० । पूर्व्वोक्त पञ्चक्लेश बीजनाशके समान योगसे चित्त लीन होनेसे उसहीके सङ्ग अस्त होजाते हैं स्थित रहने परभी उनकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती ॥ १० ॥

ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ ११ ॥

सू० का पदार्थ । (ध्यानहेयाः) क्रियायोग से त्याज (तद्वृत्तयः) क्लेशवृत्ति ॥ ११ ॥

सू० का भा० । पञ्चक्लेशकी जो वृत्तियां हैं वे पूर्व्व ही क्रियायोगसे हेय अर्थात् त्यागने योग्य हैं ॥ ११ ॥

क्लेशानांयावृत्तयः स्थूलास्ताः क्रियायोगेनतनूकृताः सत्यः प्रसंख्यानेनध्यानेन हातव्याः यावत्सूक्ष्मीकृतायावद्दग्धबीज कल्पा इति यथाचवस्त्राणां स्थूलमलःपूर्व्वन्निर्धूयतेपश्चात्सूक्ष्मोयत्नेनोपायेनचापनीयतेतथास्वल्पप्रतिपक्षाःस्थूलावृत्तयःक्लेशानाम् सूक्ष्मास्तुमहाप्रतिपक्षाइति ॥ ११ ॥

भा० का प० । (क्लेशनाम्) क्लेशोंकी (यावृत्तयस्थूलाः) जो वृत्तियां स्थूल हैं (सत्यःताः) वे (क्रियायोगेन) क्रिया योगसे (तनूकृताः) सूक्ष्म कियी हुई (प्रसङ्ख्यानेन) विचारसे (ध्यानेन) ध्यानसे (हातव्याः) त्यागने योग्य हैं (यातत्सूक्ष्मी कृताः) जितनी सूक्ष्म हों (यावद्दग्धबीज कल्पा इति) जबतक दग्धबीजके समान हों (यथाच) जैसे (वस्त्राणाम्) वस्त्रोंका (स्थूलोमलः) ऊपरका मैल (पूर्व्वम्) प्रथम (निर्धूयते) धोया जाता है (तत्पश्चात्) तिसके पीछे (सूक्ष्मः) सूक्ष्ममल (यत्नेनोपायेनच) यत्न और उपायसे (अपनीयते) दूर करते हैं (तथा) तैसेही (स्वल्प-

प्रतिपक्षाः) अल्प व्यवहारवाली (स्थूला वृत्तयः) स्थूलवृत्ति हैं क्लेशा-नाम्) क्लेशोंकी (सूक्ष्मास्तु महाप्रतिपक्षाः) सूक्ष्मवृत्ति वह है जो महा-व्यवहारवाली हैं ॥ ११ ॥

भा० का भा० । क्लेशोंकी वृत्तियां जो स्थूल हैं और क्रियायोगसे सूक्ष्म होरही हैं वे विचार तथा ध्यानसे त्याग करने योग्य हैं जबतक सूक्ष्म वा दग्धबीज समान हो जैसे वस्त्रोंका स्थूल मल प्रथम धोया जाता है पश्चात् सूक्ष्म मल यत्न और उपायसे दूर किया जाता है वैसेही जिनका अल्प व्यवहार है वो स्थूलवृत्ति और जिनका बहुत व्यवहार है वो सूक्ष्मवृत्ति हैं इन दोनोंको क्रमसे विचार और ध्यानसे त्याग दे ॥ ११ ॥

क्लेशमूलःकर्माशयोदृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ॥ १२ ॥

सू० का प० । (क्लेशमूलः) उक्त पांचों क्लेशका मूल (कर्म्माशयः) कर्म्मों का समूह (दृष्टादृष्ट जन्म वेदनीयः) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षका जन्मस्थान जानने योग्य है ॥ १२

सू० का भा० । पञ्च क्लेशका मूल कर्म्म समूहही है और दृष्ट तथा अदृष्ट कर्म्मों का जन्मस्थान भी वही है ॥ १२

तत्रपुण्यापुण्यकर्माशयःकामलोभमोहक्रोधप्रसवःसदृष्टजन्मवेदनीयश्चादृष्टजन्मवेदनीयश्च तत्रतीव्रसंवेगेनमंत्रतपःसमाधिभिर्निर्वर्तितईश्वरदेवतामहर्षि महानुभावानामाराधनाद्वायःपरि-निष्पन्नःससद्यःपरिपच्यते पुण्यकर्माशयइति तथातीव्रक्लेशेनभी-तव्याधितकृपणेषु विश्वासोपगतेषु वा महानुभावेषु वातपस्विषु

कृतः पुनः पुनरपकारः सचापि पापकर्म्माशयःसद्यएवपरिपच्यते यथा नन्दीश्वरःकुमारोमनुष्यपरिणामंहित्वा देवत्वेन परिणतः तथानहुषोपिदेवानामिन्द्रःस्वकंपरिणामंहित्वातिर्य्यक्त्वेनपरिणत इति तत्रनारकाणांनास्तिदृष्टजन्मवेदनीयः कर्माशयःक्षीणक्लेशानामपिनास्त्यदृष्टजन्मवेदनीयःकर्माशय इति ॥ १२ ॥

भा० का० प० । (तत्र पुण्यापुण्य कर्माशयः) धर्म्म और अधर्म्म सम्बन्धी कर्म्मका मूल (काम लोभ मोह क्रोध प्रसवः) काम लोभ मोह क्रोध का उत्पत्ति स्थान (सदृष्ट जन्मवेदनीयः) और वह दृष्ट जनम वेदनीयहै (तत्र तीव्रवेगेन) तीव्रवेग योगसे (मन्त्र तपः समाधिभिः) वेद स्वधर्म्म समाधियोंसे (निर्वर्तितः) आचरित (ईश्वर देवता महर्षि महानुभानामाराधनाद्वा) ईश्वरादिकी आराधनासे (यः परिनिष्पन्नः) जो पूर्ण हो (स सद्यः) सो शीघ्रही (परिपच्यते) परिपाकको प्राप्त होता है (पुण्य कर्माशयः) वह पुण्य कर्माशय है (तथा) तैसे (तीव्र क्लेशेन) तीक्ष्ण क्लेशसे (भीत व्याधित कृपणेषु) भय प्राप्त रोगी और कृपणोंमें (विश्वासोपगतेषु) जिनको विश्वास है उनमें (वा) या (महानुभावेषु) उत्तम पुरुषोंमें (वा तपस्विषु) अथवा तपस्वियोंमें (कृतः पुनः पुनरपकारः) बार२ अपकार करे (सचापि पाप कर्माशयः) सो पाप कर्माशय है (सद्यः परिपच्यते) शीघ्र परिपाक होता है (यथा) जैसे (नन्दीश्वरः कुमारः) नन्दीश्वर कुमार (मानुष्य परिणामम्) मनुष्य भावको (हित्वा) त्यागके (देवत्वेन परिणतः) देव भावको प्राप्त भया (तथा) तैसेही (नहुषोपि देवानामिंद्रः) नहुष भी देवराज (स्वकं परिणामम्) निज भावको (हित्वा) त्याग कर (तीर्य्यक्त्वेन परिणतः) तीर्य्यक् भावमें प्राप्त भया (तत्र नारकाणां नास्ति दृष्टकर्म्म वेदनीयः) नारक पुरुषोंका दृष्ट जानने योग्य नहींहै (कर्माशयः)

क्लेशकर्मविपाकानुभवनिर्मिताभिस्तुवासनाभिरनादिकालसंमू-
र्च्छितमिदंचित्तंचित्रक्लतमिव सर्वतोमत्स्यजालंग्रंथिताम् भिरि-
वाततइत्यता अनेकभवपूर्विकावासना: । यस्त्वयंकर्माशयएषए-
वैकभविकउक्तइति । येसंस्काराः स्मृतिहेतवस्तावासनाः
ताश्चानादिकालीनाइति । यस्त्वसावेकभविकः कर्माशयः
सनियतविपाकश्चानियतविपाकश्च । तत्रदृष्टजन्मवेदनीयस्य
नियतविपाकस्यैवायंनियमो नत्वदृष्टजन्मवेदनीयस्यानियत
विपाकस्य । कस्मात् योह्यदृष्टजन्मवेदनीयो नियतविपाकस्तस्य
त्रयीगतिः कृतस्याविपाकस्यनाशः प्रधानकर्मण्यवापगमनम् वा
नियतविपाकप्रधानकर्मणाभिभूतस्य वा चिरमवस्थानमिति तत्र
कृतस्याविपक्वस्यनाशो यथाशुक्लकर्मोदयादिहैवनाशः कृष्णस्ययत्रे
दमुक्तम् द्वे द्वे हकर्मणीवेदितव्ये पापकृतस्यैकोराशिः पुण्यकृ-
तोपहन्ति तदिच्छ स्वकर्म्मणा सुकृतानि कर्तुमिहैवतेकर्मक-
वयो वेदयन्ते प्रधान कर्मण्यवापगमनं यत्रेदमुक्तम् स्यात्
स्वल्पः सङ्करः सपरिहारः सप्रत्यवमर्शः कुशलस्य नापकर्षाया-
लम् कस्मात् कुशलं हि मे वह्वन्यदस्तियत्रा यङ्मावापगतः स्वर्गे
प्यकर्षमल्पकरिष्यतीति नियत विपाकप्रधान कर्मणाभिभूतस्य
वा चिरमवस्थानम् कथमिति अदृष्टजन्मवेदनीयस्यैव नियत-
विपाकस्यकर्मणः समानं मरणमभिव्यक्तिकारणमुक्तम् । न त्व-

दृष्टजन्मवेदनीयस्यानियतविपाकस्य यत्वदृष्टजन्मवेदनीयम् कर्मानियतविपाकन्तन्नश्येत् आवापंवागच्छेत् अभिमतं वा चिरमप्युपासितयावत्समानङ्कर्माभिव्यञ्जकं निमित्तस्य न विपा काभिमुखं करोतीति तद्विपाकस्यैव देशकालनिमित्ता नव धारणादियं कर्मगतिश्चित्रादुर्विज्ञानाचेति न चोत्सर्गस्याप- वादात् निवृत्तिरित्येकभविकः कर्माशयोनुज्ञायत इति ॥१३॥

भा० का प०। (सत्सु क्लेशेषु) क्लेश रहनेसे (कर्माशयः) कर्मसमूह (विपाकारम्भी भवति) फल देनेमें योग्य होता है (नोच्छिन्न क्लेशमूलः) नहीं च्छिन्न क्लेश होनेसे (यथा) जैसे (तुषावनद्धास्तण्डुलाः) तुससे वेष्टित चावल (अदग्धवीजभावाः) जिनको वीजोत्पत्ति नहीं नष्ट भयी (पुनः प्ररोह समर्थाः भवन्ति)

पुनः उत्पन्न होनेमें समर्थ होते हैं। नापनीत तुषादग्धवीजभावा (नहीं त्यक्ततुस जिनकी उत्पत्ति नष्ट होगई है) तथा क्लेशावनद्धः (तैसे ही क्लेश युक्त) कर्म्माशयोपि (कर्म्म समूह भी) विपाक प्ररोही भवति (फल देनेमें समर्थ होता है) नापनीत क्लेशः (न गतक्लेश) न प्रसंख्यान दग्ध क्लेशवीजभावो वेति (नहीं विचारदग्ध क्लेश को) स च विपाकः (वो फल) त्रिविधः (तीन प्रकारका है) जातिरायुः भोग इति (वर्ण आयु और भोग) तत्रेदं विचार्य्यते (तहां यह विचारने योग्य है) किमेकं कर्म्म एकस्य जन्मनः कारणम्) क्या एक कर्म एकही जन्म का कारण है) अथैक (कर्मानेकजन्माक्षिपतीति) अथवा एक कर्म्म से बहुत जन्म होते हैं) द्वितीया विचारणा (दूसरे विचारने योग्य) किमनेकं कर्म्म अनेकं जन्मनिर्वर्त्तयति (क्या अनेक कर्म अनेक जन्मके कारण होते हैं) (अथानेकं कर्मैकं जन्मनिर्वर्त्तयतीति) अथवा अनेक कर्म एक जन्म

के कारण होते हैं) मतावदेकं कर्मैकस्य जन्मनः कारणम् (नहीं एक कर्म एक जन्मका कारण) कस्मात् (काहेसे) अनादिकाल प्रचितस्या संख्येयस्यावशिष्टकर्मणः (अनादिकालसे असंख्य शेष कर्म से) साम्प्रति कस्य च फल क्रमा नियमात् (ये जन्म किस कर्मके फलसे है इसके अनि-यमसे) अनाश्वासो लोकस्य प्रसक्तः लोकको इसका आश्वास नहीं है) सोप्यनिष्ठ इति (सो अनिष्ठ है) नचैकंकर्म्मानेकस्य जन्मनः कारणम् (न एक कर्म अनेक जन्मोंका कारण है) इत्यवशिष्ठस्य (अवशिष्टका) विपाककालाभावः प्रसक्तः (फलकालका अभाव होगा) सचाप्यनिष्ट इति (सोभी अनिष्ट है) नचानेकं कर्म्मानेकस्य जन्मनः कारणम् (न अनेक कर्म अनेक जन्मका कारण है) कस्मात् (काहेसे) अनेक जन्म युगपत् (अनेक जन्मएक सङ्ग) न सम्भवति (नहीं होसकते) इति (इससे) क्रमेण वाच्यम् (क्रमसे कहना उचित है) अतथा च (अन्यथा) पूर्वदोषानुसङ्गः (पूर्व्वोक्त दोष पतित होंगे) तस्मात् (तिससे) जन्म-प्रायणान्तरे (जन्म प्राप्तिके अनन्तर) कृतः पुण्यापुण्य कर्म्माशय प्रचयः (किया धर्म अधर्म कर्म) विचित्र (अद्भुत) प्रधानोपसर्ज्जनभावेनावस्थितः (मुख्य और गौण भावसे स्थित है) प्रायणाभिव्यक्तः (प्राप्त होनेसे प्रकाशित) एक प्रघट्टके मिलित्वा (दोनों मिलकर) न मरणमप्रसाध्य-संमूर्छित एकमेव जन्म करोति) मरण पर्य्यन्त एकही जन्म देते हैं (तेनैव कर्मणा) उसही कर्मसे (लघ्वायुष्कम्भवति) अल्पायुवाला मनुष्य होता है (तस्मिन्नायुषि) उस कर्म प्रदत्त आयुमें (तेनैव कर्मणा) उसही कर्म से (भोगस्सम्पद्यते) शरीर-साधनरूप भोग सिद्ध होता है (असौ) यह (कर्म्माशयः) कर्मसमूह (जन्मायुर्भोग हेतुत्वात्) जन्म, अवस्था और भोगका हेतु होने से (त्रिविपाको विधीयते) त्रिविपाक कहा जाता है (अतः) इसलिये (एकभविकः) एक जन्म का (कर्म्माशयः) कर्म समूह (इति दृष्टजन्म वेदनीयस्तु) और दृष्ट जन्ममें जानने

योग्य तो (एक विपाकारम्भी) एक फलको आरम्भ करनेवाला होता है (नन्दीश्वरवत् नहुषवद्देति) नन्दीश्वर वा नहुषके समान (क्लेशकर्म्मविपाकानुभवनिर्मिताभिस्तु) क्लेश और कर्म्म फलको अनुभवसे निर्मित (वासनाभिः) वासनाओंसे (अनादिकालात् संमुर्च्छित मिदम् चित्तम्) अनादि समयसे मूर्च्छित हुआ चित्त (चित्रीकृतमिव) चित्र बासना हुआ (सर्वतोमत्स्यजाल ग्रन्थितमिव) चारों ओरसे मकरीके समान जालमें फंसा हुआ (अनेक भव पूर्विका बासना) अनेक जन्मकी वासना (यस्त्वयम्) यह जो (कर्म्माशयः) कर्म्म समूहहै (एषः) यह (एवैक भविक उक्तः) एकही जन्मका कहा है (ये संस्कारास्मृति हेतवः) जो संस्कार स्मृतिके हेतु हैं (तावासनाः) वह बासना अनादि कालकी हैं (यस्त्वसावेक भविकः कर्म्माशयः) एक जन्मका कर्म्महै (स नियतश्चा नियत विपाकश्च) वह दो प्रकारका है एक नियत विपाक दूसरा अनियत बिपाक (तत्र) उन दोनों में (दृष्टजन्म वेदनीयस्य नियत विपाकस्य) दृष्ट जन्म वेदनीय का नियत बिपाक कस्य एवायं नियमः) नियत बिपाक होका ये नियम है (न तु) नहीं (अदृष्ट जन्मवेदनीय) अनियत विपाक का (कस्मात्) क्योंकि (योहि) जो (अदृष्टजन्मवेदनीयस्यः) अदृश्य जन्मद्वारा जाननेयोग्य (नियत विपाकः) नियत फलवाला है (तस्य) उसकी (त्रयीगतिः) तीन प्रकारकी गति है (कृतस्य बिपाकस्य नाशः) एकतो किये हुवे कच्चे कर्म्मफलकानाश (प्रधान कर्म्मणि) दूसरा प्रधान कर्म्ममें (अवापगमनम्) न्यूनता (वा) अथवा (नियत प्रधान कर्म्मणाभिभूतस्य) नियत बिपाक प्रधान कर्म्मद्वारा अभिभूत अर्थात् अनादृत (वा) या (चिरमवस्थानम्) चिरकाल तक स्थिर रहना (तत्र) इन तीन प्रकारकी गतियोंमें (कृतस्याविपक्वस्यनाशः) किये हुवे कर्म्मके कच्चे फलका नाश (यथा) जैसे शुक्ल कर्मोदयात्) पवित्र कर्मोंके उदय होनेसे (इहैव) इसही जगतमें (नाशः कृष्णस्य) अपवित्र

कर्मों का नाश होजाता है (यत) जिसके प्रमाणमें (द्वद्वसुताम्) यह कहा जाता है (द्वे द्वे ह कर्म्मणी वेदितव्ये) कर्मों की दो दो गति अथवा राशि समझनी चाहिये (पापकृतस्यैको राशिः) एक पापकर्मों की राशिहै (पुण्य कृतोऽपहानि) दूसरी पुण्यकृत राशि पुण्यकृत कर्म्म राशि पाप कृत कर्म्म राशिको नाश करती है (तदिच्छस्व) इस लिये इच्छा कर (कर्म्मणा) अपने कर्मसे (सुकृतानिकर्तुम्) सुकर्म करनेको ॥ १२ ॥

भा० का भा० । क्लेशोंकी विद्यमानतामें कर्मोंके फल उनके आरम्भ करनेवाले होते हैं जैसे चावलों पर जबतक तुष (छिलका) रहता है तब तक उनमें उत्पन्न होनेकी शक्ति रहती है परन्तु जब उनका छिलका उतार दिया जाता है तब उनमें उत्पन्न होने की शक्ति नहीं रहती ऐसेही जब तक कर्मफलमें क्लेश रहते हैं तब तक कर्म फल क्लेशोंको उत्पन्न करते हैं परन्तु जिस कर्माशय में क्लेशोंका अभाव होगया है उसमें पुनः क्लेशोंकी उत्पन्न होना सर्वथा असम्भव है, कर्म्म विपाक तीन प्रकारका है, एक जाति, दूसरा आयु तीसरा भोग, अब यहां पर यह प्रश्न होताहै कि एक कर्म्मसे एक जन्म होताहै वा एक कर्म्मसे अनेक जन्म होतेहैं दूसरा प्रश्न यह है कि अनेक कर्म्म अनेक जन्मको देतेहैं अथवा अनेक कर्म्म एक जन्म को देते हैं इसका उत्तर यह है कि एक कर्म्म एक जन्मका दाता नहीं है क्योंकि अनादि कालके इकट्ठे हुवे असंख्य कर्मोंका फल मिलने से अनियम होगा अर्थात् यदि कहा जाय कि परमेश्वर केवल एकही जन्ममें एक कर्म्मका फल देता है तो अनादि कालसे जो कर्म्म इकट्ठे हैं उनके फल देनेमें अनियम होगा, और मनुष्योंको घबड़ा हट भी होगी और वह अनाश्वास अनिष्ट है और न एक कर्म्मसे अनेक जन्म हो सक्ते हैं क्योंकि जब एकही कर्म्म से अनेक जन्म होजायंगे तो अनेक कर्म्म निष्फल होंगे क्योंकि एक जन्म में असंख्य कर्म्म मनुष्य करता है तो सबके फलों का भोगना असम्भव होगा, ऐसेही अनेक कर्म्म अनेक जन्मोंके दाताभी नहीं

हो सकते हैं क्योंकि अनेक जन्मोंका एक समय में होना ही असम्भव है तब कहियेगा कि क्रमशः होंगे तब वही पूर्वोक्त दोष आवेगा, इसलिये जन्म प्राप्तिके अनन्तर जो कुछ शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं वह सब एक समूह में मिलकर प्रधान और अप्रधान रूपसे जन्मसे और मरण पर्य्यन्त एक ही जन्म देतेहैं वह जन्म उसही कर्म्म समुदायसे अल्पायु (वा दीर्घायु) होता है और उक्त अवस्थामें उस ही कर्म्म समुदायसे जीव भोग करता है इस वास्ते यह कर्म्म समुदाय जन्म आयु और भोग का हेतु होनेसे त्रिविपाक कहलाता है एक जन्मका आरम्भ करनेवाला तथा समाप्त करनेवाला कर्म समूह कहा — इसका दृष्टान्त नन्दीश्वर और नहुष है।

क्लेश और कर्म्म विपाक की अनुभव से बनी हुई वासना से मूर्छित हुवा चित्त चित्रलिखित के समान रहता है, जो स्मरण कराने वाले संस्कार हैं। उन्हे वासना कहते हैं वह वासना अनादि है क्योंकि कर्म्म और संस्कार अनादि हैं पूर्व जो एक भविक (एक जन्मकादेनेवाला) कर्म्मसमूह कहा था वह दो प्रकार का है एक नियत विपाक और दूसरा अनियत विपाक उक्त नियम नियत विपाक कर्म्मसमूह का है क्यों कि जो अदृष्टजन्मवेदनीय अर्थात् अनियत विपाक कर्म्म समूह है उस की गति तीन प्रकार की है एक अपक्व फल का नाश, दूसरी प्रधान कर्म्म से असंयोग, तीसरी प्रधान कर्मफलसे अवरोध होकर चिरकाल तक निष्फल रहना जैसे शुभ कर्म्मके उदय होनेसे दुष्कर्म वहीं नाश हो जाता है — लिखा भीहै कि कर्मकी दो राशि समझनी चाहिये एक पुण्यकृत, दूसरी पापकृत ॥ १३ ॥

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्य

हिंसाकृतोप्यस्ति शरीरः कर्म्माशय इति। (हिंसाकृत भी शरीरक ही कर्म्म समूह है) विषयसुखंचाविद्येत्युक्तम् (विषय सुख को अविद्या कहते हैं) या (जो) भोगेन्द्रियाणाम् (भोगेंद्रियों की) तृप्तेः (तृप्तीकी) उपशांतिः (शांति है) तत् सुखम् (सो सुख है) यालौल्यात् (जो चञ्चलतासे) अनुपशान्तिः (अशान्ति होती है) तद्दुःखम् (सो दुःख है) न चेन्द्रियाणाम् (नहीं इन्द्रियों के) भोगाभ्यासेन (भोगके अभ्यास से) वैतृष्णम्) (विषयमें विरक्ति) कर्तुंशक्यम् (करना समर्थ है) कस्मात् (काहे से) यतः (जाहे से) भोगाभ्यासम् (भोगाभ्यास के प्रति) विवर्द्धंते रागा (बढ़ते हैं दुःख) कौशलानिचेन्द्रियाणामिति (और इन्द्रियो कि कुशलता) तस्मात् (तिससे अनुपाय सुखस्य भोगाभ्यास इति (भोगाभ्यास सुखका साधक नहीं है) सखल्वयं वृश्चिकविषभीत इव (सो ये बीछी विष भीत के समान) आशीविषेणदष्टः (सांपसे काटा हुवा) यः (जो) सुखार्थी (सुख की इच्छा करनेवाला) विषयान् (विषयों को) अनुवासितः (धारण करता हुवा) महति बढ़े (पंके) कीचमें मग्नः (फंसाहुवा) इति एसा (ये) परिणाम दुःखतानाम (परिणामदुःखता नामक) प्रतिकूला विरुध) असुखा (सुख रहित) अवस्थायामपि (अवस्थामें भी) योगिनमेव (योगीही को) क्लिश्नाति (दुःख देती है) अथ कातापदुःखता (अब यह प्रश्न है कि ताप और दुःखपना किसे कहते हैं,) सर्वस्य (प्राणी मातके) द्वेषानुविद्धः (द्वेषसे पूर्ण) चेतनाचेतनाधीनः चेतन और अचेतनताके आश्रय है (तापानुभव इति (क्लेशका अनुभव (तत्रास्ति) उसमें है (द्वेषजः) द्वेषसे उत्पन्न हुआ (कर्म्मशिय) कर्मसमूह (सुखसाधनानि प्रार्थ्यामानः) सुख की साधनों के चाहनेवाला (कायेन) शरीरसे (परिस्पन्दते) कुछ उद्योग करता है (ततः परम्) इसके पश्चात् (अनुग्रहाति) किसी पर अनुग्रह करता है (च) अथवा (उपहन्ति च) अनिष्ट चिन्तन) वा क्रोध करता है (परानुग्रह पिण्डाभ्याम्) उत्कृष्ठ अनुग्रह और क्रोधसे

(धर्म्माधर्म्मावुपचिनोति) धर्म और अधर्म का संग्रह करता है (सः) वह (कर्माशयः) कर्मसमूह (लोभान्मोहाच्च भवति) लोभ और मोहसे होता है (इत्येषा) यह तापदुःखतेत्युच्यते) तापदुःखता कहाती है (का पुनः संस्कार दुःखता) फिर संस्कार दुःखता क्या है ? (सुखानुभवात्) सुख के अनुभव से (सुख संस्काराशयः) सुखसंस्कारका समूह (दुःखानुभवादपि) दुःखके अनुभवसे भी (दुःख संस्कारातिशयः) दुः संस्कार की अधिकता से (एवम्) इस प्रकार से (कर्म्मभ्यो विपाकेनुभूयमाने) कर्म्म द्वारा फलका अनुभव करनेसे (सुखे दुःखे वा) सुखमें अथवा दुःखमें (पुनः कर्माशयप्रचयः) पुनर्वार कर्म और फलका संग्रह हो जाता है (एवमिदमनादि दुःखस्रोतः) इस प्रकारसे यह अनादि दुःख प्रवाह (विप्रसृतम्) विशेषत्र (योगिनमेव) योगिही को (प्रतिकूलात्मकत्वात्) विरुद्ध होनेके कारण (उद्वेजयति) दुःख देता है (कस्मात्) क्योंकि (अक्षिपात्र कल्पो हि) चक्षुके समान (विद्वानिति) जानता है (यथा) जैसे (उर्णातन्तुः) मकड़ी का जाला (अक्षिपात्रे न्यस्तः) नेत्रके गोलकमें लगाने से (स्पर्शेन) स्पर्शसे (दुःखयति) दुख देता है (तानि) वह (गात्रावयवेषु) शरीरके भागों में (एवमेतानि दुःखानि) इस ही प्रकारसे सब दुःख (अक्षिपात्रकल्पम्) अक्षिपात्र के समान (योगिनमेव) योगिही को (क्लिश्नन्ति) दुःख देते हैं (नेतरम्) अन्य लोगों को नहीं (प्रतिपत्तारम्) निश्चय करनेवालों को (इतरन्तु) अन्य लोगोंको (स्वकर्म्मोप हृतं दुःखम्) अपनेकर्म्मसे संचय किया दुःख (उपात्तमुपात्तं त्यजति) भुक्त होकर त्याग देता है (त्यक्तम्) छुटाहुआ दुःख (उपादानम्) पुनः आजाता है (अनादि वासना विचित्रया) अनादि वासना से विचित्र (चित्तवृत्त्या) चित्तकी वृत्तिसे (समन्ततः) चारो ओर से (अनुविद्धमिव) विन्धे हुएके समान (अविद्यया) अविद्यासे (हातव्यः) तयागा हुआ (अहंकारः) अभिमान (ममकारानुपातिनम्) ममत्व को धारण करनेवाला (जातम् जातम्) वारम्वार

कि भोग के अभ्यास से इन्द्रियां कभी शान्त नहीं हो सक्तीं क्यों कि अभ्यास से राग की वृद्धि होतीहै और इन्द्रियां अपने विषयों में चतुर होती जाती है इस लिये सुख प्राप्तिका उपाय भोगाभ्यास नहीं हैं, और जो ऐसे उपाय करता है उसका वही हाल होता है कि जैसे कोई मनुष्य बीछीसे डर कर भागा परन्तु उसे सर्पने काट लिया, ऐसे जो मनुष्य इन्द्रियों की शान्ति के वास्ते विषय भोग करता है उससे वह और भी फंस कर दुःखका भागी होता जाता है।

यह परिणाम दुःखता सुखावस्था में भी, योगी को दुःख देती है अब यह प्रश्न है कि परिणान दुःखता कि से कहते हैं। सब लोग ताप का जो अनुभव होता है चाहे वह चेतन से हो वा जड़ से हो वह ताप द्वेष से ही होता है इस्से सिद्ध होता है कि बहुत से कर्म्म द्वेषज हैं, सुखसाधन प्राप्ति की कामनासे जो मनुष्य शरीर, मन और वाक्य से यत्न करता, है उस यत्न में जो उसके सहायक होते हैं उन पर नुग्रह अकरता है और जो विघ्नकारक होते हैं उनको मारता भी है तो यह कर्म्म लोभ और मोह से उत्पन्न होतेहैं इस्से मनुष्य धर्म्म वा अधर्म्म का संग्रह करता है इसे परिणाम दुःखता वा ताप दुःखता कहते हैं अब पुनः प्रश्न है कि संस्कार दुःखता किसे किसे कहते हैं उ० सुखके अनुभव से सुखके संस्कारों की अधिकता होती है और दुःखके अनुभवसे दुःखके संस्कारों की और उन संस्कारोंसे पुनर्वार दुःख सुखका मनुष्य संग्रह करता है ऐसे यह अनादि दुःखस्रोत बहता हैं किन्तु यह स्रोत योगीयों को अधिक दुःख देता है जैसे नेत्र में जाला लगाने से दुःख होता है ऐसे ही योगियों को यह संस्कार दुःख देते हैं।

जिस प्रकास से आयुर्वेद चतुर्व्यूह कहलाता है, अर्थात् रोग, रोगहेतु आरोग्य, और चिकित्सा ऐसे ही यह योग शास्त्र भी चतुर्व्यूह है अर्थात् संसार, संसार हेतु, मोक्ष और मोक्षोपाय संसार उसे कहते हैं जिसमें

दुःखकी अधिकता रहती है, योगाभ्यास द्वारा ईश्वरको न विचारना अर्थात् विषयासक्ति संसारका हेतु है—योगाभ्यास से संसार के बन्धन को काटना मोक्ष है और मोक्षका उपाय यथार्थ ज्ञान है ॥ १५ ॥

हेयंदुःखमनागतम् ॥ १६ ॥

सू० का प० । (हेयम्) त्यागने योग्य (दुःखम्) दुःख (अनागतम्) अप्राप्त ॥ १६ ॥

सू० का भा० । दुःख अप्राप्तही त्यागने योग्य है ॥ १६ ॥

दुःखमतीतमुपभोगेनातिवाहितम् नहेयपक्षेवर्त्ततेवर्त्तमा-नञ्चस्वक्षणेभोगारूढ़मिति नतत्क्षणांतरेहेयतामापद्यते । त-स्माद्यदेवानागतं दुःखं तदेवाक्षिपात्रकल्पंयोगिनं क्लिश्नाति-नेतरंप्रतिपत्तारम् तदेवहेयतामापद्यते । तस्मात्तदेवहेयमित्यु-च्यतेतस्यैवकारणम्प्रतिनिर्दिश्यते ॥ १६ ॥

भा० का प० । दुःखम् (दुःख) अतीतम् (व्यतीत) उपभोगेन (भोगसे) अतिवाहितम् (अतिप्रापित) न (नहीं) हेयपक्षे (त्याग करने योग्य पक्ष में) वर्त्तते (वर्त्तित है) वर्त्तमानम् (वर्त्तमान) च (और) स्वक्षणे (अपने क्षणसे) भोगा रूढ़मिति (भोगारूढ़है) न (नहीं) तत्-क्षणांतरे (उसक्षण में) हेयताम् (त्यागयोग्यताको) आपद्यते (प्राप्त होताहै) तस्मात् (तिससे, यद्यत् (जो जो) अनागतम् (अप्राप्त) दुःखम् (दुःख है) तदेव (वोही २) अक्षिपात्र कल्पम् (आंखकी अंधेरी के समान) योगिनम् (योगिको) क्लिश्नाति (क्लेशदेता है) नेतरम् (और को नहीं) प्रतिपत्तारम् (प्रवृत्ति वाले को) तदेव (वोही) हेयताम् (त्याज्यभाव को) आपद्यते (प्राप्त होता है) तस्मात् (तिससे) (ही) हेयम् (तयाज्यहै) इति (ये) उच्यते (कहा जाता है)

तस्यैव (तिसही का) कारणं प्रति (कारण के प्रति) निर्दिश्यते (दिख-लाया जाता है ॥ १६ ॥

भा० का भा०। जो दुःख व्यतीत है अर्थात् पूर्वका है तिसका फल भोगा गया है सो तो त्यागने योग्य नहीं है और जो वर्त्तमान है सो भी स्वक्षण अर्थात् इसही समय में भोगमें स्थित हैं वो क्षणान्तर में त्याज्य नहीं होगा तिससे जो जो दुःख अप्राप्त है वो ही अंधेरीके समान योगि को दुःख देते हैं दूसरे पुरुषों को नहीं वो ही त्यागने योग्य है इसही से उसे त्याज्य कहते हैं उसही का कारण दिखलाया जाता हैं ॥ १६ ॥

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ १७ ॥

सू० का प०। द्रष्टृ दृश्ययोः (देखनेवाले दीखती वस्तुका) संयोगः (संयोग) हेयहेतुः (त्यागमूल है) ॥ १७ ॥

सू० का भा०। देखनेवाला और जिस वस्तु को देखे इनका जो संयोग है वह त्यागकामूलक है ॥ १७ ॥

द्रष्टाबुद्धेः प्रतिसंवेदीपुरुषः दृश्याबुद्धिसत्त्वोपारूढाः सर्वे-धर्माः तदेतद्दृश्यमयस्कांतमणिकल्पं सन्निधिमात्रोपकारिदृश्य-त्वं भवतिपुरुषस्यस्वं दृशिरूपस्यस्वामिनः अनुभवकर्मविषयता-मापन्नमन्यस्वरूपेणप्रतिलब्धात्मकंस्वतन्त्रमपिपरार्थत्वात्परतन्त्रम् तयोर्दृग्दर्शनशक्त्योरनादिरर्थकृतः संयोगोहेयहेतुर्दुःखस्यका-रणमित्यर्थः। तथाचोक्तम् तत्संयोगहेतुविवर्जनात्स्यादयमात्य-न्तिकोदुःखप्रतिकारः कस्मात् दुःखहेतोः परिहार्यस्यप्रतीकार दर्शनात् तद्यथा पादतलस्यभेद्यताकण्टकस्यभेत्तृत्वम्परिहारः

कण्टकक्षणादानधिष्ठानस्मादलाण व्यवहिते नवाधिष्ठानमेत दयंयोवेदलोकेसतत्प्रतीकारस्मारभमाणोभेदजं दुःखन्नाप्नोतिक-स्मात् बिल्वोपलब्धिसामर्थ्यादितिअलापितापकस्यरजसः सत्त्व-मेवतप्यंकस्मात् तपिक्रियायाः कर्मस्थत्वात्सत्वे कर्मणितपिक्रि-यानापरिणामिनि निष्क्रियेचेतन्नेदर्शित विषयत्वात् सत्वे तु-तप्यमाने तदाकारानुरोधोपुरुषोनुतप्यत इति दृश्यते दृश्य-स्वरूपमुच्यते ॥ १७ ॥

भा० का प० । द्रष्टा (द्रष्टा का अर्थ करते हैं) बुद्धेः संवेदी पुरुषः) वुद्धि का जाननेवाला पुरुष) दृश्या (इस का अर्थ करते हैं) बुद्धिसत्वोप-रूढ़ाः (बुद्धिमें स्थिर) सर्वेधर्म्माः (सबधर्म्म) तदेतत् (वोही) दृश्यम् (दृश्यहै) अयस्कान्तमणि कल्पम् (स्फटिकके समान) संनिधि मात्रो-पकारित्वे) समीपस्थ मात्रके उपकारि) दृश्यत्वे न (दृश्यभावसे) भवति (होता है) पुरुषस्य (पुरुष को) स्व (अपने) दृशि (दृशिमें) रूपस्य (रूपका) स्वामिनः (स्वामीका) अनुभव कर्म्म विषयताम् (अनुभवकर्म्म विषयता को) आपन्नम् (प्राप्त) अन्यस्वरूपेण (और स्वरूपसे) प्रतिल-ब्धात्मकम् (प्रतिप्राप्तात्मा) स्वतन्त्रम् (स्वतन्त्र) अपि (भी) परार्थत्वात् (परार्थता से) पर तन्त्रम् (परतन्त्र) तयोः (उन दोनो को) दृग्दर्शनशक्त्योः (द्रष्टा और दृश्य शक्ति की) अनादिः (अनादि) अर्थकृतः अर्थसे करीहुई) संयोगः (संयोग) हेय हेतुः (त्याज्यमूलक) दुःखस्य (दुःखका) कारणमित्यर्थः (कारणहै) तथाचोक्तम् (तैसाही अन्यत्रभी कहाहै)तत्संयोगहेतु विवर्जनात् (उसके संयोगवर्ज्जनसे) स्यादयम् (होय यह) आत्यन्तिक (अत्यन्त दुःखप्रतीकारः (दुःखनाशक) कस्मात् (क्यों) दुःखहेतोः (दुःखहेतुका) परिहार्य्यस्य (नाश करने योग्यका) प्रतीकार दर्शनात् (प्रतिकार देखने

से) तत् (सो) यथा (जैसे) पादतलस्य (पैरके तलवेकी) भेद्यता (भेदने योग्यता) कण्टकस्य (कांटेकी) भेतृत्वम् (भेद करने योग्यता) परिहारः (परिहार) कण्टकस्य (कांटेकी) पादानधिष्ठानम् (पैरकी अनवस्थिति) पादत्राण व्यवहितेन (पादत्राणसे रक्षित) वा (या) अधिष्ठानम् (अवस्थित) एतत्त्रयम् (इन तीनोंको) यो (जो) वेद (जानता है) लोके (संसारमें) सः (वो) तत्र (तिनमें) प्रतीकारम् (नाशकउपायको) आरम्भमाणः (आरम्भ करता हुवा) भेदजम् (भेदोत्पन्न) दुःखं नाप्नोति (नहीं प्राप्त होताहै) कस्मात् (क्यों) चित्तोपलब्धिसामर्थ्यात् (ज्ञानप्राप्तिकी समर्थसे) अत्रापि (यहांभी) तापस्य (दुःखका रजसः (रजोगुण) सत्वम् (प्रधान) तप्यम् (तप्यहै) कस्मात् (काहेसे तपिक्रियायाः कर्म्मस्थत्वात् (तपि क्रियाके कर्म्मस्थहोनेसे) सत्वेकर्म्मणे) तपिक्रिया (तपिक्रिया) ना परिणामिनि (अनन्ता नहीं है) निष्कृये क्षेत्रज्ञे (क्रिया रहित क्षेत्रज्ञमें) दर्शित विषयत्वात् (दर्शित विषय होनेसे) सत्वतुतप्यमाने (सत्वके तपित होनेसे) तदानुकारानुरोधी पुरुषो (उसके सदृश्यका अनुसरणकरनेवाला जीव) अनुतप्यते (तापित होताहै) इति (ये) दृश्यते (दीखताहै) दृश्यस्य (दृश्यका) स्वरूपम् (स्वरूप) उच्यते (कहते हैं) ॥ १७ ॥

भा० भा० । बुद्धिके साक्षी जीवको द्रष्टा कहते हैं और दृश्य बुद्धिस्थ समस्त धर्म्मोको कहते हैं वोही दृश्य स्फटिकके समान पार्श्वस्थ मात्रका उपकारि दृश्य होनेके कारण होताहै पुरुष अर्थात् जीवको अपने दृश्य विषयमें अनुभव विषयताको प्राप्त होनेसे स्वरूपान्तरसे प्राप्त होने योग्य स्वतन्त्रता भी परार्थहोनेसे परतन्त्राके समान हो जाती है उन दृक् और द्रष्टा की शक्तिका जो अनादि सम्बन्ध है सो अर्थ कृत दुःखका कारण है ऐसाही अन्यत्र भी लिखा है उनका संयोग अर्थात् दृष्टि और दृश्यका सम्बन्ध छोड़नेसे बहुत दुःख प्रतीकार होताहै जो दुःखके परिहार्य्य अर्थात्

त्यागका हेतुहैं उनका प्रतीकार दीखता है दृष्टान्त है कि चरणका तलवा भेद्य अर्थात् छेदन योग्य और कण्टक छेदन करने योग्य होताहै तिसका परिहार कण्टककाचरणमें नरहनाही है अथवा पादत्राण (जुता) से रचित चरणका अधिष्ठान इन तीनो अर्थात् दृक् दृश्य और प्रतीकरण को जो संसारमें जानता है सो दुःख नाशमें उपाय करता हुवा भेदोत्पन्न दुःखको नहीं प्राप्त होताहै ज्ञान प्राप्तिकी समर्थसे। इसमें भी तापकर जो गुण प्रधान है निष्कृयचैतन्नमें विषयदर्षि होनेसे ॥ १७ ॥

प्रकाशक्रियास्थितिशीलम्भूतेन्द्रियया त्मकम्भोगापवर्गार्थं दृश्यम ॥ १८ ॥

सू० प०। प्रकाश (सतोगुण) स्थिति (रजोगुण) स्थिति (तमोगुण) शीलम् (युक्त) भूतेन्द्रियात्मकम् (जिह्वा नासिका कर्ण नेत्रत्वमूलक) (भोगापवर्गार्थम्) (भोग मोक्षार्थके) दृश्यम् (दृश्य कहाताहै) ॥ १८ ॥

सू० भा०। सत रजः तम गुणात्मक जिह्वादिका मूल कारण और भोग मोक्षका हेतु जो है उसे दृश्य कहते हैं ॥ १८ ॥

प्रकाशशीलंसत्वं क्रियाशीलं रजःस्थितिशीलन्तमइतिएते-गुणाः परस्परोपरक्तप्रविभागाः परिणामिनः संयोगविभाग धर्माणइतरे तरोपाश्रयेणोपार्जितमूर्तयः परस्पराङ्गाङ्गित्वे प्य-सम्भिन्नशक्तिप्रविभागास्तुल्य जातीयातुल्य जातियशक्तिभेदा-नुपातिनः प्रधानवेलाया मुपदर्शित सन्निधानागुणत्वेपिच व्यापारमात्रे णप्रधानान्तर्नीतानुमितास्तिताः पुरुषार्थं कर्तव्य

तया प्रयुक्तसामर्थ्यासन्निधिमात्रोपकारिणोऽयस्कान्तमणिकल्पाः प्रत्ययमन्तरेणैकतमस्यवृत्तिमनुवर्तं मानाः प्रधानशब्दवाच्या भवन्तिएतत्दृश्यमित्युच्यतेतदेतद्भूतेन्द्रियात्मकम्भूतभावेनपृथिव्यादिनासूक्ष्मस्थूलेन परिणमतेतथेन्द्रियभावेन श्रोत्रादिना सूक्ष्मस्थूलेनपरिणमतइति तत्तुनाप्रयोजनं अपितुप्रयोजन मुररीकृत्य प्रवर्त इति भोगापवर्गार्थं हितत्दृश्यं पुरुषस्येतितदे ष्टानिष्टगुणस्वरूपावधारणमविभागापन्नम्भोगोभोक्तुः स्वरूपावधारणमपवर्गइतिद्वयोरतिरिक्तमन्यद्दर्शनन्नास्तितथाचोक्तम् अयन्तु खलुत्रिषुगुणेषुकर्तृष्वकर्तरिचयुरुषेतुल्याऽतुल्य जातीये चतुर्थेतत्क्रियासाक्षिण्युपनीयमानान् सर्वभावानुपपन्नाननुपश्यन्नदर्शनमन्यच्छङ्कत इति तावेतौभोगापवर्गौबुद्धिकृतौबुद्धावेवप्रवर्तमानौकथंपुरुषेऽपदिश्येतेइति यथा विजयः पराजयो वायोद्धृषुवर्तमानः स्वामिन्यपदिश्यतेसहितस्यफलस्यभोक्तेति एवम्बन्ध मोक्षौबुद्धावेववर्तमानौपुरुषेऽपदिश्येते सहितत्फलस्य भोक्तेति। बुद्धेरेवपुरुषार्थापरि समाप्तिर्बन्धस्तदर्थावसायो मोक्ष इति। एतेनग्रहणधारणोहापोह तत्वज्ञानाभिनिवेशाबुद्धौवर्तमानापुरुषेऽध्यारोपितसद्भावासहितत्फलस्यभोक्तेति दृश्यानांतुगुणानांस्वरूपभेदावधारणार्थमिदमारभ्य ॥ १८ ॥

भा० का प०। (प्रकाशशीलम् सत्वम्) सतो गुण प्रकाश स्वभाववाला है (क्रियाशीलं रजः) रजोगुण का स्वभाव क्रिया कारित्व है (एतेगुणाः) यह

सत्वगुण (परस्परोपरक्त प्रविभागाः) एक दूसरेके आश्रयीभूत और भिन्न २ है (परिणामिनः) अवस्थान्तरको धारण करनेवाले हैं संयोग विभागधर्म्मणः संयोग विभाग धर्म्म वालेहैं (इतरेतरोपाश्रयेणोपार्जितमूर्तयः) एक दूसरे की सहायता से रूपको धारण करने वाले है (परस्पराङ्गाङ्गित्वेऽप्यसम्भिन्न शक्ति प्रविभागाः) परस्पर अङ्गाङ्गिभावमें भी जिनकी शक्ति और विभाग दूर नहीं होते (तुल्यजातीयातुल्यजातीयशक्तिभेदानुपातिनः) तुल्य जातीय और अतुल्य जातीय शक्ति को धारण करनेवाले (प्रधान वेलायाम्) प्रधान अर्थात् समाधि समय में (उपदर्शित सन्निधानाः) जिनकी समीपता अर्थात् भाग दीखते हैं (गुणत्वेऽपि च) और गुण भाव होनेपर भी (व्यापारमात्रेण) व्यापारमात्रसे (प्रधानान्तर्नीताः) प्रधान के अन्तर्भूत होते है (अनुमितास्तिता) अनुमान की गई है विद्यमानता जिनकी (पुरुषार्थ कर्तव्यतया) पुरुषार्थ और कर्तव्यता से (प्रयुक्तसामर्थ्याः) युक्त होती है समर्थ जिनकी (सन्निधिमात्रोपकारिणः) सन्निधि मात्रसे दूसरे का अनुकरण करनेवाले (अयस्कान्तमणिकल्पाः) स्फटिक मणिके समान (प्रत्ययमन्तरेण) निश्चय वा ज्ञान के विना (एकतमस्य) किसी एकको (वृत्तिमनुवर्तमानाः) वृत्तिके अनुसार चलनेवाले (प्रधान शब्द वाच्या भवन्ति) प्रधान कहलाते हैं (एतद्दृश्यमित्युच्यते) उस समय यह कहा जाता है कि अमुक गुण दृश्य अर्थात् प्रधान हैं (तदेतत्) इससे यह (भूतेन्द्रियात्मकम्) पंच तत्वात्मक इन्द्रियों में (पृथिव्यादिना) पृथिवी आदि तत्वोंसे (सूक्ष्मस्थूलेन) सूक्ष्मभाव अथवा स्थूलभाव से परिणाम को प्राप्त होता है (तत्तु) वह तो (नाप्रयोजनम्) निष्प्रयोजनक नहीं है (अपितु) वरन (प्रयोजन मुररीकृत्य) प्रयोजन को हृदय में धारण करके (प्रवर्तते) वर्तित होतेहैं (भोगापवर्गार्थं) भोग और मोक्षकेवास्ते (हितदृश्यम्पुरुषस्येति) हितकारी पुरुषको है (तत्र) उनमें से (इष्टानिष्टगुणस्वरूपावधारणम्) इष्ट अर्थात् इच्छानुकूल अनिष्ट इच्छाके प्रतिकूल गुणोंके स्वरूप

को विचारना (अविभागापन्नं भोगः) किसी गुणके भागको न समझना भोग कहाता है (भोक्तृस्वरूपावधारणमपवर्गः) भोग करने भोक्ताके स्वरूपके निश्चय हो जानेको मोक्ष कहतेहैं (द्वयोरतिरिक्तम्) भोग और भोक्तासे भिन्न (अन्यद्दर्शनन्नास्ति) और विचार कुछ नहीं है (तथाचोक्तम्) ऐसा ही अन्यत्र भी कहाहै (अपन्तु) यह तो (खलुत्रिषु गुणेषु कर्त्तृषु) जगत्के कार्य्य कर्ता तीनो गुणोंमें (अकर्तरि च पुरुषे) और अकर्त्ता पुरुषमें (तुल्यातुल्यजातीये) ईश्वरमें (चतुर्थे तत्क्रियासाक्षिणि उनके साक्षिमें (उपनियमानान्) आरोपित किये हुए (सर्वे भावानुपपन्नान्) सब भावों को (अनुपन्नान्) जो उसमें नहीं हैं (अदर्शनमन्यच्छङ्कते) अज्ञान से बिना जाने अन्यथा शंका करना है (तावेतौ भोगापवर्गौ) यह दोनो भोग और मोक्ष (बुद्धावेव प्रवर्तमानौ) बुद्धि में रहने वालों का (कथं पुरुषेऽपदिश्यते) किस प्रकारसे पुरुषमें आरोपित किये जाते हैं ? (यथा विजयः पराजयो वा) जैसे जय अथवा पराजय (योद्धृषुवर्तमानः) योद्धाओं में रहती है (स्वामिन्युपदिश्यते) परन्तु राजामें आरोपित किया जाती हैं (हि) क्योंकि (सः) वह स्वामी (तस्य फल भोक्तेति) जय वा पराजय के फल का भोक्ता है (एवम्) इसही प्रकार से (बन्ध मोक्षौ) बन्ध और मोक्ष (बुद्धाविववर्तमानौ) बुद्धि में होते हैं (पुरुषे पदिश्यते) परन्तु पुरुष में आरोपित होते हैं (सहितस्य फल भोक्तेति) वही उनके फलका भोक्ताहै (बुद्धेरेव) बुद्धिकी ही (पुरुषार्था परिसमाप्तिर्बन्धः) पुरुषार्थ समाप्ति न होना बन्ध है (तदर्थावसायो मोक्षः) और बुद्धि के परिश्रम की समाप्ति को मोक्ष कहते हैं (एतेन) इससे सिद्ध हुआ (ग्रहण धारणो हापोह तत्व ज्ञानाभिनिवेशा बुद्धौ वर्तमानाः) ग्रहण धारण तर्क और समाधान, तत्वों का ज्ञान और अभिनिवेश बुद्धिमें रहते हैं (पुरुषेध्यारोपित सद्भावास्स हि तत्फलस्य भोक्तेति) परन्तु पुरुष में अध्यारोपित होते हैं क्योंकि वही उनके फलका भोक्ता हैं ॥ १८ ॥

भा० का भा० । सतोगुण प्रकाश स्वभाव वाला है, रजोगुण क्रिया

स्वभाव वाला है, और तमोगुण आलस्यस्वभाव युक्त है, यह सब एकाकी नहीं रहते किन्तु एक दूसरे के आश्रय से रहते हैं, जब एक प्रधान होता है तब अन्य उसमें लय हो जातेहैं किन्तु अनुमानसे दूसरों की बिद्यमानता जानी जाती है यदि सब कार्य्य गुणोंके आश्रय से होते हैं और वह गुण बुद्धि में रहते हैं तथापि उन बन्ध और मोक्ष के फलको भोगनेवाला जीव है इस लिये जीव को ही कार्यकर्त्ता कहा जाताहै जैसे जय और पराजय योद्धाओं में रहती है तथापि राजामें आरोपित होती है क्योंकि वही उनके फलका भोगनेवाला है इससे यह सिद्ध हुआ कि जिसमें बुद्धिके पुरुषार्थ की समाप्ति न हो वह बन्ध है और जिसमें बुद्धिके पुरुषार्थों का अन्त हो जाय वह मोक्ष है ॥ १८ ॥

बिशेषाबिशेष लिंगमात्रालिंगानि गुण पर्वाणि ॥ १९ ॥

सू० का प० । (बिशेषाबिशेष लिंगमात्रालिङ्गानि) बिशेष, अबिशेष, अबिशेष, लिङ्ग और अलिंग (गुणपर्वाणि, गुण की अवस्था हैं ॥ १९ ॥

सू० का० भा० । गुणों की चार अवस्था हैं १ बिशेषावस्था, २ अबिशेषावस्था, लिंगावस्था और अलिंगावस्था ॥ १९ ॥

तत्राकाशवाय्वग्न्युदक भूमयोभूतानिशब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्राणाम बिशेषाणां बिशेषाः तथा श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानि बुद्धीन्द्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाण्येकादशम्मनः सर्वार्थसिध्ये तान्यस्मितालक्षणस्याबिशेषस्यबिशेषागुणानामेषषोऽड्शकोबिशेष परिणामः षड्बिशेषाः तद्यथाशब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्र

चेत्येकद्विविचतुःपञ्चलक्षणाः। शब्दादयः पञ्चाविशेषाः षष्ट श्चाविशेषोऽस्मितामात्र इति एतेसत्तामात्रस्यात्मनोमहतोषड्विशेष परिणामाः यत्तत्परमविशेषेभ्योलिंगमात्रम्महततत्त्वं तस्मिन्ने तेसत्तामात्रे महत्य त्मन्यवस्थाय विवृद्धिकाष्ठामनुभवन्ति प्रति संसृज्यमानाश्च तस्मिन्नेवसत्तामात्रे महत्यात्मन्यवस्थायय- त्तन्निःसत्तासत्तं निःसदसद्व्यक्तमलिङ्गम् प्रधानन्तत्प्रतियन्तीतिएष तेषांलिङ्गमात्रः परिणामोनिःसत्तासत्तञ्चालिंगपरिणाम इति अलिंगावस्थायां न पुरुषार्थं हेतुर्नालिंगावस्थायामादौ पुरुषार्थं ताकारणम्भवतीति न तस्याः पुरुषार्थताकारणं भवतीति नासौपुरुषार्थकृतेति नित्याख्यायते त्रयाणांत्ववस्थाविशेषाणा मादौ पुरुषार्थताकारणम्भवति स चार्थोहेतुर्निमित्तङ्कारणम्भवतीत्य नित्याख्यायते गुणास्तुसर्वधर्मानुपातिनो न प्रत्यस्त- मयन्ते नोपजायन्ते व्यक्तिभिरेवातीतानागतव्ययागमवती निर्गुणा न्वयिनीभिरुपजनापाय धर्मका इव प्रत्यवभासन्ते यथादेव- दत्तोदरिद्रातिकस्मात् यतोस्यम्रियन्ते गावइतिगवामेव मरणा- त्तस्यदरिद्राणंनस्वरूपहानादितिसमःसमाधिः लिङ्गमात्रमलिंग- स्यप्रत्यासन्नन्तत्रतत्संसृष्टं विविच्यतेक्रमानतिवृत्तेः तथाषड्वि- शेषालिंगमात्रे संसृष्टाविविच्यन्ते परिणामक्रमनियमात् तथा- तेष्वविशेषेषुभूतेन्द्रियाणिसंसृष्टानिविविच्यन्ते तथाचोक्तम्

पुरस्तान्नविशेषेभ्यः परन्तत्त्वान्तरमस्तीतिविशेषाणां नास्ति तत्त्वान्तरपरिणामस्तेषांतुधर्मलक्षणावस्था परिणामाव्याख्यापि- ष्यन्ते व्याख्यातं द्दश्य अथद्रष्टुःस्वरूपावधारणार्थमिदमारभ्यते ॥ १९ ॥

भा० का० प०। (तत्र) उन अवस्थाओंमें (आकाश वाय्वग्न्युदक भूमयो भूतानि) आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी यह पञ्चभूत (शब्दस्पर्श रूपरस गन्ध तन्मात्राणामविशेषाणां विशेषाः) शब्दस्पर्श, रूप, रस, गंध जो पञ्चभूतों की सामान्य तन्मात्रा हैं॰ उनके विशेष (श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वाघ्राणानि बुद्धीन्द्रीयाणि) श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, और बुद्धि यह इन्द्रियां (वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाणि) वचन, हाथ, चरण, गुदा और लिंग यह पांच कर्मेन्द्रिय (एकादशमनः) और ११ वां मन (इत्येतानि) यह सब (अस्मिता लक्षणस्याविशेषस्य) जो अस्मिता के सामान्य लक्षण हैं (विशेष गुणानामेषषोडश को विशेषपरिणामः) सत्वादि विशेष गुणों की उक्त १६ विशेष अवस्था हैं (षडविशेषाः) अविशेष ६ अवस्था हैं (यथा) जैसे (शब्द तन्मात्रम्) स्पर्श तन्मात्र (रूप तन्मात्रम्) रूप तन्मात्र (गन्धतन्मात्रञ्च) और गन्ध तन्मात्र (इत्येक द्वित्रि-चतुः पंच लक्षणाः) इस प्रकारसे एक दो, तीन चार और पांच लक्षण है जिनके (शब्दादयः पञ्चाविशेषाः) शब्दादिक पांच अविशेष अवस्था हैं (षष्ठश्च) और छठी अवस्था (अस्तिता मात्र) विद्यमानता मात्र है (एते सत्तामात्रस्यात्मनो महतो षडविशेष परिणामाः) यह छै सत्तामात्र आत्माके अविशेषावस्था हैं (यत्तत्परमविशेषेभ्यो लिंगमात्रम्महत्तत्वम्) जो परम अविशेष चिह्नमात्र महत्तत्व है (तस्मिन्) उस महत्तत्वमें (एते) उक्त गु (सत्तासत्तेमहत्यात्मनि) सत्तामात्र आत्मामें (अवस्थाय) स्थिर होकर (विवृद्धिकाष्ठामनु भवन्ति) बढ़ी हुई अवस्था को प्राप्त होते हैं

(प्रतिसंसृज्यमानास्व) और जब इनका पुनः लय होता है तब (तस्मिन्नेव सत्तामात्रे महत्यात्मनि) उस ही सत्तामात्र आत्मामें (अवस्थाय) स्थिर होके (यत्तन्निःसत्तासत्वम्) निसत्तासत्व अर्थात् शृङ्गके समान (निस्सद्-सदस्) जिसको सत् और असत् कुछ भी नहीं कह सकते हैं (अलिंगम्-प्रधानन्तस् प्रतीयन्ति) इस कारणसे गुणों की वह अवस्था अलिंगावस्था वा प्रधान अवस्था कहलाती है (तत्प्रतीयन्ति) वह प्रतीत होते हैं (एतेषाम्परिणामः) इनका परिणाम लिङ्गावस्था है (निःसत्ता सत्वंचा-लिङ्ग परिणामः) लय होना अलिंगावस्था है (अलिंगावस्थायाम्) अलिंगावस्थामें (न पुरुषार्थो हेतुः) पुरुषार्थ हेतु नहीं है (नालिंगाव-स्थायाम्) और न अलिंगा वस्थामें (आदौ पुरुषार्थताकारणाभ्भवतीति) प्रथम पुरुषार्थता हेतु होता है (नासौ पुरुषार्थ कृता इति) यह अवस्था पुरुषार्थ से नहीं होती (नित्याख्यायाते) इससे यह अवस्था नित्या नित्या कही जाती हैं (त्रयाणाम्) अन्यतीन (अवस्थानाम्) अवस्थाओं (आदौ पुरुषार्थता कारणभावति) आरम्भ में पुरुषार्थता कारण होती है (सचार्थोहेतुः) वह हेतु) निमित्तं कारणम्भवति) अवस्थाओं का निमित्त कारण है (इत्यनित्याख्यायते) इस्से वह अवस्था अनित्या कहा तीहैं। (गुणास्तु) गुणतो (सर्वधर्मानुपातिनः) सर्व धर्मों को धारण करनेवाले हैं (न प्रतयस्तमयन्ते) अस्तको प्राप्त नहीं होते (नोपजायंते) न उत्पन्न होतेहैं (व्यक्तिभिरेव) व्यक्तियोंहीसे (अतीतानागतव्यया गमव-तीभिः) भूतभविष्यत आवागमनवाली (गुणान्वयीनिभिः) गुणोंके अनु-सार स्वभाववाली (उपजनापाय धर्मकाइव) उत्पत्ति विनाश स्वभाववालों के स्वभावके समान स्वभाववाले (अवभासंते) प्रतीत होतेहैं (यथा) जैसे (देवदत्तः) देवदत्त (दरिद्राति कस्मात्) दरिद्रके समान क्यों आचरण करता हैं (यतो) जिस्से (अस्यम्रियंतेगावः) इसकी गाय मरजाती हैं (इति गवामेवमरणात्) यह गौओंके मरनसे (तस्य) देवदत्तका

(दरिद्राणम्) दरिद्रताहै (न) नहीं (स्वरूपहानात्) स्वरूपहानिसे(इति) ये (समः) सम (समाधिः) उत्तरहै (लिङ्गमात्रम्) चिह्न मात्र (अलिङ्गस्य) चिह्न रहितोंके (प्रत्यासन्नम्) समीपस्थ (तत्र) तहां (तत्) सो (संसृष्ट) सम्मित (विविच्यते) विवेक किया जाता है (क्रमानतिवृत्तेः) क्रमकी अनति-वृत्ति से (तथा) तथा (षड्विशेषालिंग मात्रे) छे अविशेष लिङ्गमात्र में (संसृष्टाः) सम्मित (विविच्यते) विवेक किये जाते हैं (परिणाम क्रम नियमात्) परिणाम क्रमके नियमसे (तथा) तैसे (तेष्व विवेकेषु) उन अविवेकों में (भूतेन्द्रियाणि) भूतेन्द्रिय (संसृष्टानि) सम्मित हुवे (विविच्यते) विवेक किई जातीहैं (तथाचोक्तम्) तैसाही अन्यत्र भी कहा है (पुरस्तान्नविशेषेभ्यः) प्रथम न हो अविशेषोंसे (परं तत्वान्तरम्) पर तत्वान्तर (अस्ति) है (विशेषाणाम्) विशेषों को (न) नहीं (अस्ति) है (तत्वान्तर परिणामः) तत्वान्तर का अन्तिम (तेषान्तु) उनकी (धर्मलक्षणावस्था) धर्म लक्षण की अवस्था (परिणामा व्याख्यायिष्यन्ते) परिणामका व्याख्यान करेंगे (व्याख्यातं दृश्यम्) दृश्यका व्याख्यान किया (अथ) अब (द्रष्टु स्स्वरूपावधारणार्थम्) द्रष्टाके स्वरूपके निश्चय निमित्त (इद मारभ्यते) इसको आरम्भ करते हैं ॥ १९ ॥

भा० का भा० । तहां वायु, अग्नि, जल, आकाश, भूमि ये पांच भूत हैं रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द इन अविशेष तन्मात्राओं के अर्थात् रूप रहितोंके पञ्चभूत विशेष हैं अर्थात् पञ्च तन्मात्रासे उत्पन्न भये हैं, तथा कान, नाक, त्वचा, नेत्र, जिह्वाये पांचो ज्ञानेन्द्रिय है वाक्, हाथ, पैर, गुदालिङ्ग ये पांच कर्मेन्द्रिय है ये दश और ग्यारवांमन उभयात्मक हैं ये सब अविशेष अस्मिता लक्षणके अगुणोंका सोलह विशेष अर्थात् रूपवान का परिणाम है छे अविशेष है वो ये हैं शब्दतन्मात्र, स्पर्श तन्मात्र, गन्ध तन्मात्र, रस तन्मात्र, ये पांचों क्रम से १।२।३।४।५। लक्षणयुक्त पांच अवि-शेष हैं और छठा अविशेष अस्मिता है, ये सत्तामात्र महान् आत्माके

क्ष अविशेष अर्थात् रूप रहित परिणाम है जो इन सबसे उत्कृष्ट अविशेषसे भी पर लिङ्गमात्र महत्तत्त्वहै उस ही महत्तत्त्व सत्वमात्र महान् आत्माके आश्रय होकर बढ़ते हैं और लय होनेके समय प्रकाशित हुवे उसहीसे सद सदात्मकमें प्रतीत होतेहैं ये उनका चिह्नमात्र ही परिणाम है और निस्सत्तासत्त लिंग रहितका परिणाम है चिह्न रहित अवस्था को पुरुषार्थ हेतु नहीं है और न चिह्न रहित अवस्थासे प्रथम पुरुषार्थ कारण हैं एवं न उस अवस्था की पुरुषार्थ तत्कारण है और न वो अवस्था पुरुषार्थ से अई है वह नित्या हैं, तीनो अवस्थाओं का प्रथम पुरुषार्थता कारणहै, बोहितनिमित्त कारणा होताहै वो अवस्था अनित्या कही जाती है सब गुणधर्मानुयायि होते हैं न अस्त होते हैं न उत्पन्न होते हैं अतीत अनागत लाभ व्ययशुक्त गुणरहित व्यक्तियोंसे वेष्टित उत्पन्न भये ऐसे मालूम होतेहैं जैसे देवदत्त दरिद्रोंके समान रहता है क्योंकि इसकी गाय मरती जातीहैं तो गावोंके मरनेहीसे वे दरिद्रहै ये उत्तर भवा चिह्नमात्र लिंगरहितके समीपस्थका बिवेक क्रम रहित होता है इसही प्रकार से अविशेषों का लिङ्गमात्रके समीपस्थ होनेसे विवेक होताहै क्रमसे ऐसेही भूतेन्द्रियोंका भी अविशेषोंमें विवेक होताहै तैसाही अन्यत्र भी कहाहै अविशेषोंसे प्रथम परतत्व नहीं है विशेषोंका तत्वान्तर परिणाम नहीं है उनके धर्म लक्षण के अवस्थानें परिणाम है सदृश्य स्वरूप कहाहै ये द्रष्टाके स्वरूप निश्चयार्थ ये लिखा है ॥ १९ ॥

द्रष्टादृशिमात्रः शुद्धोपि प्रत्ययानु पश्यः ॥ २० ॥

सू० प० । (द्रष्टा दृशिमात्रः) दर्शन शक्ति और दृश्य शक्ति मात्रही

(शुद्धोपि) शुद्ध भी (प्रत्ययानुपश्यः) ज्ञानसे अन्य रूप भान होता है ॥ २० ॥

सू० का भा०। द्रष्टा यद्यपि साक्षीमात्र है तथापि अन्य प्रत्यय से दृश्यरूप भान होता है ॥ २० ॥

दृशिमात्र इति दृक्शक्तिरेवविशेषणापरामृष्टेत्यर्थः सपुरुषो बुद्धेः प्रतिसंवेदी स बुद्धेर्नसरूपो नात्यन्त विरूप इति न तावत्सरूपः कस्मात् ज्ञाताज्ञात विषयत्वात् परिणामिनी हि बुद्धिस्तस्याश्च विषयो गवादिर्घटादिर्वाज्ञातश्चाज्ञातश्चेति परिणामित्वं दर्शयति सदाज्ञातविषयत्वन्तुपुरुषस्यापरिणामित्वम्परिदीपयति। कस्मान्नहि बुद्धिश्च नाम पुरुष विषयश्चस्याद्गृहीतागृहीताचेति सिद्धम्। पुरुषस्य सदाज्ञात विषयत्वन्ततश्चापरिणामित्वमिति किञ्च परार्थाबुद्धिः संहत्यकारित्वात् स्वार्थः पुरुष इति तथा सर्वार्थाध्यवसायकत्वात्त्रिगुणाबुद्धिस्त्रिगुणत्वादचेतन न त्रिगुणानान्तूपद्रष्टा पुरुष इत्यतो न सरूपः अस्तुतर्हि विरूप इति नात्यन्त विरूपः कस्मात् शुद्धोप्यसौ प्रत्ययानुपश्यो यतः प्रत्ययं बौद्धमनुपश्यतितमनुपश्यन्न तदात्मापितदात्मक इव प्रत्यवभासते तथाचोक्तम् अपरिणामिनी हि भोक्तृत्व शक्तिरप्रतिसंक्रमाच परिणामिन्यर्थे प्रतिसंक्रान्तेवतद्वृत्ति मनुपतति तस्याश्च प्राप्तचैतन्योपग्रहरूपायाबुद्धिवृत्तेरनुकारमात्र तया बुद्धिवृत्त्याविशिष्टाहि ज्ञानवृत्तिरित्याख्यायते ॥ २० ॥

भा का० प०। (दृशिमात्र इति) दृशि मात्रका अर्थ यह है कि

(दृक्शक्तिरिव) दृक् शक्ति (विशेषेण अर्थात् उसकी लक्षणोंके अविचारसे (सपुरुषः) वह आत्मा (बुद्धेः प्रतिसंवेदि) बुद्धिसे जानने योग्य अथवा जो बुद्धिका साक्षी है (सः) वह आत्मा (बुद्धेर्नसरूपः) बुद्धिके समानरूप वाला नहीं है (नात्यंत विरूपः) न अत्यंत विरुद्ध लक्षणवाला है (न तावत्सरूपः) समान रूपवाला नहीं है (कस्मात्) क्योंकि (ज्ञाता ज्ञात विषयत्वात्) आत्मा ज्ञात विषय और अज्ञात विषय दोनोहै (परिणामिनि बुद्धिः) बुद्धिअवस्थान्तर को कारण कर लेती है (तस्याश्च) उस बुद्धिका विषय (गवादि घटादि विषयः) गौ आदि और घट पटादि ज्ञातही है (ज्ञातश्चाज्ञाताश्च) ज्ञात और अज्ञात (परिणामित्वन्दर्शयति) परिणामित्व दिखाते है (सदाज्ञातविषयत्वन्तु) सदैवही अज्ञात विषयतो (पुरुषस्य) आत्माका (अपरिणामित्वन्दीपयति) परिणाम रहित भावको प्रकाशित करता है (कस्मात्) क्योंकि (तर्हि) तो (बुद्धिश्च) बुद्धिभी (नाम पुरुष विषयश्च) प्रसिद्ध पुरुष विषय (अग्रहीताच स्यात्) अग्राह्य होगी (इति) यह सिद्ध हुआ (पुरुषस्य) ईश्वरका (सदा ज्ञातविषयत्वम्) सदैव अज्ञातता है (ततश्चापरिणामित्वम्) इस्से ईश्वरमें अपरिणामिता (किञ्च) वरन (परार्थाबुद्धिः) बुद्धिपराधीन है (संहत्य कारित्वात्) औरों की सहायसे यह कार्य्य करती है (स्वार्थः पुरुषः) ईश्वर स्वतन्त्र है (तथा) तैसेही (सर्वार्थाध्यवसायकत्वात् त्रिगुणाबुद्धिः) सर्व-अर्थोंके व्यवहार युक्त होनेसे बुद्धित्रिगुणात्मिका है (त्रिगुणात्वादचेतनेति) त्रिगुणा होनेसे जड़ है (गुणानान्तुद्रष्टा पुरुष इत्यतो न स्वरूपः) और पुरुष गुणोंका द्रष्टा है इससे पुरुष बुद्धिके समान नहीं है (अस्तुतर्हि विरूप इति) तो बुद्धिसे विलक्षण रूपवाला होगा (नात्यंतविरूपः) अत्यंत विरूपभी नहीं है (कस्मात्) क्योंकि (शुद्धोप्यसौ) पुरुष शुद्धहोने पर भी (प्रत्ययानुपश्यः) ज्ञानसे देखा जाताहै (प्रतत्ययंबौद्धमनुपश्यति) ज्ञान बुद्धिके द्वारा होताहै (तमनुपश्यन्) बुद्धि द्वारा देखनेसे (तदा)

तब (आत्मापि) आत्मा भी (तदात्मक इव) उसके रूपके समान (प्रत्य-वभासते) मालूम होताहै (तथा चोक्तम्) ऐसाही अन्यत्र भी कहा है (अपरिणामिनीहि भोक्तृत्वशक्तिः) भोक्तृत्वशक्तिका कभी परिणाम नहीं होता (अप्रतिसंक्रमाच) और संक्रमण से रहित है अर्थात् उल्लङ्घन करने योग्य नहीं है (परिणामिन्यर्थे) परिणामी पदार्थोंमें (प्रतिसंक्रांतेव) संक्रांत अर्थात् अवस्थांतर को धारण करनेवाली के समान (तदृत्तिमनु-पतति) उसकी वृत्ति भान होने लगती हैं (तस्याश्च) और उस वृत्तिके (प्राप्तचैतन्योपग्रहरूपाया) प्राप्त हुवा चैतन्यका ग्रहण उपराग जिसको (बुद्धिवृत्तेरनुकार मात्रतया) बुद्धिकी वृत्तियोंके अनुकरण मात्रसे (बुद्धि वृत्तयविशिष्टाहि) बुद्धि वृत्तियोंसे भिन्न (ज्ञान वृत्तिः) ज्ञानकी वृत्ति है (इत्याख्यायते) ऐसा कहा जाता है ॥ २० ॥

भा० का भा० । द्रष्टा अर्थात् बुद्धिकी वृत्तियोंका साक्षी है परन्तु इसमें शंका यह है कि वह द्रष्टा बुद्धिसे सरूप है या विरूप है इसका उत्तर यह है न अतंयत विरूप है और न अतंयत सरूप है सरूपतो इस कारणसे नहीं कि आत्मा दृश्य और अदृश्य दोनो प्रकारके पदार्थोंका अधि-कारी है और बुद्धि केवल ज्ञात घटादि पदार्थोंके ज्ञानको धारण कर सक्ती है और बुद्धिमें अनेक प्रकार के परिणाम रहित हैं, एवम् बुद्धि परतन्त्र है क्योंकि वह बिना दूसरेका सहायके ज्ञान प्राप्तिमें असमर्थ है और आत्मा स्वतन्त्र है, तथा बुद्धि चांचल्य रहित होती है तब मनुष्यको प्रतीत होता है कि इस समय मेरी बुद्धि सद्गुणयुक्तहै इन कारणोंसे आत्मा बुद्धिके सरूप नहीं है, विरूप इस कारणसे नहीं कि शुद्ध होने पर भी ज्ञान द्वारा पदार्थोंको समझता है और ज्ञान बुद्धि के बिना होना अस-म्भव है इससे अज्ञानी लोग जानते हैं कि आत्म बुद्धिरूप है और ऋषि-ओंने भी कहा है कि आत्माकी शक्ति परिणाम रहित हैं तथापि परि-णामनीबुद्धि की वृत्तियों के संयोग से परिणामिनी प्रतीत होती हैं,

इससे यह सिद्ध हुआ कि आत्मा की जो चैतन्य वृत्तियाँ हैं उनसे बुद्धिकी वृत्तिबुद्धिसे भिन्न हैं इससे आत्मा बुद्धिसे सरूप नहीं है ॥ २० ॥

तदर्थ एवदृश्यस्यात्मा ॥ २१ ॥

सू० का० प० । (तदर्थ एव) पूर्व सूत्र में कहे हुए हेतु से (दृश्यस्य) दृश्य पदार्थ के (आत्मा है ॥ २१ ॥

सू० का भा० । पूर्व सूत्रमें कहे हुवे से आत्मा दृश्यमात्रसे भान होताहै ॥ २१ ॥

दृशिरूपस्य पुरुषस्य कर्मविषयतामापन्नं दृश्यमिति तदर्थ एव दृश्यस्यात्माभवति स्वरूपम्भवतीत्यर्थः । तत्स्वरूपन्तु पररूपेण प्रतिलब्धात्मकम्भोगापवर्गार्थं तायां कृतायां पुरुषेण न दृश्यत इति स्वरूपहानाद्दृश्यनाशः प्राप्तो न तु विनश्यति कस्मात् ॥ २१ ॥

भा० का प० । (दृशिरूपस्य पुरुषस्य) द्रष्टारूप आत्माके (कर्मविषयतामापन्नम्) कर्म्म विषयताको प्राप्त हुआ पदार्थ (दृश्यम्) दृश्य कहाता है (तदर्थ एव) उसही वास्ते (दृश्यस्य) दृश्यका (आत्मा भवति) आत्मा होताहै (स्वरूपम्भवतीत्यर्थः) अर्थात् स्वरूप होताहै (तत्स्वरूपन्तु) आत्माका स्वरूपतो (पररूपेण प्रतिलब्धात्मकम् कृतायाम्) भोग और मोक्ष की प्रयोजनता वा लोलुपता करनेमें (पुरुषेण न दृश्यते) पुरुषका नही दीखता है (इति स्वरूप हानात्) इस प्रकार की स्वरूप हानि से (दृश्यनाशः) दृश्यका नाश हो जाता है (प्राप्तस्सन्) प्राप्त हो जानेसे (नविनश्यति) नाश नहीं होता ॥ २१ ॥

भा० का भा० । द्रष्टाको जो कर्म अर्थात् दर्शन उसकी विषयता को

जो प्राप्त हों वह सब पदार्थ दृश्य कहाते हैं और इस ही कारण दृश्यका स्वरूप होता है उस दृश्यका स्वरूप पुरुषके त्यके द्वारा भोग और मोक्ष की लालसा में फंसे हुवे मनुष्य को प्रतीत नहीं होता इससे दृश्य की रूप हानि होती है किन्तु नाश नहीं होता ॥ २१ ॥

कृतार्थम्प्रतिनष्टमप्यनष्टन्तदन्य साधारणत्वात् ॥ २२ ॥

सू० का प० । (कृतार्थम् प्रति) एक पुरुषके प्रति (नष्टम्) दृश्यका रूप नष्ट है (अनष्टम्) परन्तु वस्तुतः वह नष्ट नहीं हैं (तदन्य साधारणत्वात्) क्यों कि दूसरे मनुष्य को भान होता हैं ॥ २२ ॥

सू० का भा० । एक पुरुष के प्रति दृश्यका रूप नष्ट हुवा हैं परन्तु दूसरे के प्रति वही अनिष्ट है इसवे उसे नष्ट नहीं कह सकते ॥ २२ ॥

कृतार्थमेकं पुरुषं प्रतिदृश्यन्नष्टमपिनाशं प्राप्तमप्यनष्टन्तदन्य पुरुषसाधारणत्वात् कुशलं पुरुषं प्रतिनाशं प्राप्तमप्य कुशलान् पुरुषान्प्रत्यकृतार्थमिति तेषां दृशेः कर्मविषयतामापन्नं लभते एवं पररूपेणात्म रूपमिति अतश्च दृग्दर्शन शक्त्योर्नित्यत्वादनादिः संयोग व्याख्यात इति तथाचोक्तम् धर्मिणामनादि संयोगाद्धर्ममात्राणामप्यनादिः संयोग इति ॥ २२ ॥

भा० का प० । (कृतार्थम्) कृतार्थ अर्थात् (एकम्पुरुषम्प्रति) एक पुरुष के प्रति दृश्यन्नष्टमपि) दृश्यरूप नष्ट (नाशं प्राप्तमपि) अर्थात् नाश को प्राप्त हो भी गया है (अनष्टन्तत्) नहीं नष्ट हुआ है (अन्यपुरुष साधारणत्वात्) अन्य पुरुष के प्रति (कुशलं पुरुषं प्रतिनाशं प्राप्तम्)

चतुर पुरुषके प्रति दृश्यनाश की प्राप्त होगया है (अकुशलान् पुरुषान् प्रति) मूर्ख पुरुषोंके प्रति (अतार्थम्) अकृतार्थ अर्थात् अनष्ट (तेषां-दृशेः) उनकी दृष्टि की (कर्म विषयतासापन्नम्) कर्म विषयताको प्राप्त होता है (लभते) प्राप्त करता है (एवम्) इस प्रकार से (पर रूपेणात्म-रूपम्) पर रूपसे अपने रूपको (अनश) और इस कारण से (दृगदर्शन शक्त्योर्नित्यत्वात्) दृष्टा और दर्शन शक्तियों के नित्य होनेसे (अनादि संयोगो व्याख्यातः) दोनोंका अनादि संयोग कहा गया (तथाचोक्तम्) अन्यत्र भी कहाहै (धर्मिण मनादि संयोगाद्धर्ममात्राणामप्यनादि संयोगः) धर्मी अर्थात् गुणों का अनादि संयोग होनेसे धर्म अर्थात् गुणोंका भी अनादि संयोग होताहै ॥ २२ ॥

भा० का भा० । दृश्य का रूप जो ज्ञानी पुरुष की दृष्टि में नष्ट हो-गया वही दूसरे पुरुषों की दृष्टि में विद्यमान है इससे उसे नष्ट हुआ नहीं कह सकते किन्तु यही प्रतीत होता है कि दृक्शक्ति और दर्शन का संयोग अनादि है ॥ २२ ॥

स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ॥ २३ ॥

सू० का प० । (स्व स्वामि शक्त्योः) स्व अर्थात् दृश्य शक्तियों के (स्वरूपोपलब्धि हेतुः) स्वरूप की प्राप्ति का जो कारण हो (संयोगः) उसे संयोग कहाता है ।

सू० का भा० । दृक् और दृष्ट शक्तिओं का स्वरूप देखने या निश्चय करने का जो हेतु है उसे संयोग कहते हैं ॥ २३ ॥

संयोगस्वरूपाभिधित्सयेदं सूत्रम् प्रवहते ।

पुरुषः स्वामीदृश्येन स्वेन दर्शनार्थं संयुक्तस्तस्मात् संयोगाद् दृश्यस्योपलब्धिर्यासभोगः यातुद्रष्टः स्वरूपोपलब्धिः सोपवर्गः दर्शनकार्यावसानः संयोग इति दर्शनं वियोगस्य कारणमुक्तम् दर्शनमदर्शनस्य प्रतिद्वन्द्वीति अदर्शनं संयोग निमित्तमुक्तम् नातदर्शनं मोक्षकारणमदर्शनाभावादेवबन्धाभावःस मोक्ष इति दर्शनस्यभावेबन्धकारणस्यादर्शनस्य नाश इत्यतो दर्शनज्ञानङ्कै-वल्यकारणमुक्तम् किञ्चेदमदर्शनं नाम किं गुणानामधिकार आहोस्विद्दृशिरूपस्य स्वामिनो दर्शित विषयस्य प्रधानचित्त-स्यानुत्पादः स्वस्मिन् दृश्येविद्यमाने यो दर्शनाभावः किमर्थव-त्तागुणानामथाविद्या स्वचित्तेन सहनिरुद्धा स्वचित्तस्योत्पत्ति बीजं किं स्थितिसंस्कारक्षयेगति संस्काराभिव्यक्तिः यत्रेदमुक्तम् प्रधानं स्थित्यैववर्तमानंविकाराकरणांप्रधानंस्यात् तथास्थित्यैव बर्तमानं विकारनितयत्वादप्रधानं स्यात् उभयथाचास्यवृत्तिः प्रधान व्यवहारं लभतेनान्यथाकारणान्तरेष्वपि कल्पितेष्वेष-समानश्चर्चः दर्शनशक्तिरेवादर्शनमित्येकेप्रधानस्यात्मख्यापना-र्थाप्रवृत्ति रितिश्रुतेः सर्ववोध्यवोधसमर्थः प्राक्प्रवृत्तेः पुरुषोनप-श्यति सर्वकार्यकारण समर्थं दृश्यन्तदानदृश्यत इति उभयस्या-प्यदर्शनन्धर्मं इत्येके तत्रेदं दृश्यस्यात्मभूतमपि पुरुषप्रतययम-पेक्ष्यदर्शनं दृश्यधर्मत्वेन भवति तथा पुरुषस्यानात्मभूतमपि

दृश्यप्रत्ययापेक्षं पुरुषधर्मत्वं न भवति तथा पुरुषस्यानात्मभूत अपि दृश्यप्रतययापेक्षं पुरुषधर्मत्वं नेवा दर्शनमवभासते दर्शनं ज्ञानमेवादर्शनमिति केचिदभिदधति इत्येतेशास्त्रगताविकल्पा स्तत्रविकल्पवहुत्वमेतत्सर्वपुरुषाणां गुणसंयोगे साधारण विषयं यस्तुप्रतत्क् चेतनस्यस्वबुद्धिसंयोग: ॥ २३ ॥

भा० का प०। (पुरुष:) आत्मा (स्वामी दृशे न स्वेन) अपने दृश्यसे (दर्शनार्थम्) देखनेके लिये (संयुक्त:) पदार्थों से संयुक्त होता है (तस्मात् संयोगात्) उस संयोग से (दृश्यस्योपलब्धिर्या) जो दृश्य पदार्थों को प्राप्ति होती है (स भोग:) उसे भोग कहते हैं (यातु) और जो (दृष्टस्वरूपोपलब्धि:) दृष्टा अर्थात् आत्माके स्वरूप की प्राप्ति होती है (सोपवर्ग:) उसे मोक्ष कहते हैं (दर्शन कार्यावसान संयोग:) जहां दर्शन के कार्यका अन्त होजाता है उसे संयोग कहते हैं (दर्शनम्) दर्शन को (वियोगस्य कारणमुक्तम्) वियोग का कारण कहते हैं (दर्षनमदर्शनस्य) दर्शन अदर्शन का (प्रतिद्वन्द्वी) विपक्षी है (अदर्शनं संयोगनिमित्त मुक्तम्) अदर्शन को संयोग का कारण कहा है (नातदर्शनम् मोक्ष कारणम्) यहां पर दर्शनको मोक्षका कारण नहीं कहा है, (अदर्शनाभावादेव) अदर्शनके अभाव ही से (वन्धाभाव:) बन्धन का जो अभाव होता है (स मोक्ष:) उसे मोक्ष कहते हैं (दर्शनस्य भावे) दर्शन की विद्यमानतामें (बन्धकारणस्यादर्शनस्य नाश:) वन्धका कारण जो अदर्शन है उसका नाश होजाता है (इत्यत:) इस लिये (दर्शनज्ञानं कैवल्य कारण मुक्तम्) दर्शन ज्ञान को कैवल्यका कारण कहा है (किञ्चेदमदर्शनम्) क्या यह अदर्शन (गुणनामधिकार:) गुणोंका अधिकार है (अहोस्वित्) अथवा (दृशिरूपस्य स्वामिनो दर्शित बिषयस्य प्रधान चित्तस्यानुत्पाद:) दृष्टारूप आत्माके जिस चित्तने उस बिषय को देखा है उस प्रधान चित्त अर्थात्

ज्ञान की उत्पत्ति ही नहीं होती (स्वस्मिन् दृश्ये विद्यमाने) अपने में दृश्य विद्यमान रहते भी (यो दर्शनाभावः) दर्शन का अभाव होता है किमर्थवत्तागुणानाम्) क्या वह गुणों की अर्थवत्तासे होता है (अथावि-द्यास्वचित्ते न सह निरुद्धा) अथवा अविद्या अपने चित्तके संग निरुद्ध हो गई है (स्वचित्तस्योत्पत्ति बीजम्) अपने चित्त की उत्पत्ति का कारण (किम्) क्या (स्थितिके संस्कार क्षय हो जाने पर (गति संस्काराभि-व्यक्तिः) गतिके संस्कार प्रकट होते हैं (यत्रेदमुक्तम्) जिसमें यह कहा जाता है (प्रधानम् स्थित्यैव) प्रधान स्थिति ही से (वर्तमानम्) वर्त-मान रहता है (विकारा करणात) क्योंकि वह विकार करनेवाला नहीं है (अप्रधानम्) अप्रधान (स्यात्) हो (तथा) तैसेही (गत्यैव) गमन से ही (वर्तमानम्) विद्यमान (विकार नित्यत्वात्) नित्य विकारी होनेसे (अप्रधानं स्यात्) अप्रधान हुआ (उभयथाच) उक्त दोनों प्रकार से (अस्य प्रवृत्तिः) इसकी वृत्तिः (प्रधानव्यवहारं लभते) प्रधानता को प्राप्त होतीहै (अन्यथा) यदि ऐसा न होतो (कारणान्तरेष्वपि कल्पितेषु) और २ कारणोंकी कल्पना करने पर भी (एषः) यह (समानश्चर्चः) समान विचारणीय होगा (दर्शन शक्तिरेवा दर्शनम्) दर्शन शक्तिही अद-र्शन है (इत्येके) ऐसा भी कोई कहते हैं (प्रधानस्यात्मख्यापनार्थाप्रवृत्तिः) प्रधानका रूप प्रकट करनेमें जो अप्रवृत्ति है उसे अदर्शन कहते हैं (इति श्रुतिः) ऐसा भी सुन्ते हैं। (सर्वबोध्यबोध समर्थः) जानने योग्य जितने पदार्थ है (प्राक् प्रवृतेः) पूर्वही होनेसे (पुरुषो न पश्यति) पुरुष नही देखता (सर्व कार्य्य कारण समर्थन्द्रश्यन्तदान दृश्यते) सब कार्य्य कारण की उस समय नहीं दीखती (उभयस्याप्यदर्शनंधर्म्म इत्येके) इस लिये दोनो का ही दर्शन धर्म नहीं है यह किसी किसीका मत है (तत्रेदं) वहां यह (दृश्यस्य) दृश्यका (आत्मभूतमपि) तादात्म्य होने पर भी (पुरुष प्रत्ययमपेक्ष्य दर्शनम्) दर्शन पुरुष ज्ञानकी अपेक्षा से (दृश्यधर्म्म-

त्वेन भवति) दृश्यभावको प्राप्त होताहै (तथा) तैसेही (पुरुषस्यानात्म-भूतमपि) पुरुषके अनात्म होनेपर भीं (दृश्य प्रत्ययापेक्षं) दृश्य ज्ञानकी अपेक्षा (पुरुष धर्म्मत्वेनेव) पुरुष धर्म्मके समान (अदर्शन मवभासते) दर्शनका अभाव भान होता है (अदर्शनं ज्ञानमेवा दर्शन मितेरके भिधी-येते) कोई ज्ञानकोही अदर्शन कहते हैं (इतेरते शास्त्र विकल्पाः) यह सब शास्त्रकी तर्क बितर्क (तत्र विकल्प वहत्वम्) शास्त्रके तर्कों का बहुत्व (पुरुषाणां गुणसंयोगे साधारण विषयम्) पुरुषोंको गुणोंके संयोगमें साधा-रण विषय है (यस्तु) और जो (प्रतरक्चेतनस्य) परम चैतन्य ईश्वर का (स्वबुद्धि संयोगः) अपनी बुद्धिका संयोग है ॥ २२ ॥

भा० का भा० । आत्मा जो अपने रूपके देखने को प्रवृत्त होता हैं परन्तु मध्यमें जो पदार्थान्तरोका संयोग होजाता है और उसकी वृत्तियां आगे नहीं बढ़ सक्ती हैं उसको भोग कहते हैं और जो पुरुषको परमात्मा के स्वरूपकी प्राप्ति है उसे मोक्ष कहते हैं और जहां दर्शन रूप क्रिया का अन्त होजाय उसे संयोग कहते हैं किन्तु दर्शन ही वियोगका कारण है क्योंकि जब किसीका संयोग होताहै उसका बियोग भी अवश्य होताहै ऐसेही अदर्शन संयोगका हेतु कहाता है, इस शास्त्रमें दर्शन को मोक्षका कारण नहीं कहाहै अभिप्राय यह कि जो २० और २१ सूत्रमें संयोग कहाथा वह दृश्य पदार्थों के संयोगके समान नही हैं किन्तु वह एक बिलक्षणही संयोग है ॥ २३ ॥

तस्यहेतुरविद्या ॥ २४ ॥

सू० प० । (तस्य) तिसका (हेतुः) मूल (अबिद्या) अविद्या है ॥ २४ ॥

सू० भा० । तिसका अर्थात् संयोगका हेतु अबिद्या है ॥ २४ ॥

विपर्य्यय ज्ञानवासनेत्यर्थः विपर्य्यय ज्ञानवासनावासिता न कार्यं निष्ठां पुरुषख्यान्तिं बुद्धिः प्राप्नोति साधिकारापुनरावर्तते सा तु पुरुषाख्यातिपर्यवसानाकार्यनिष्ठां प्राप्नोति चरिताधिकारानिवृत्तिदर्शनावन्धकारणाभावात् न पुनरावर्त्तते अत्र कश्चित् षण्डकोपाख्यानेनोद्घाटयति मुग्धयाभार्ययाभिधीयते षण्डक आर्यपुत्रापत्यवती मे भगिनी किमर्थन् नाह मिति सतामाहस्तस्ते ऽहमपत्यमुत्पादयिष्यामीति तथेदं विद्यमानं ज्ञानं चित्तनिवृत्तिं न करोति विनष्टं करिष्यतीतिका प्रत्याशातत्राचार्य देशीयोवक्ति ननु बुद्धिनिवृत्तिरेवमोक्षोऽदर्शनकारणाभावात् बुद्धिनिवृत्तिस्तच्चादर्शनन्बन्धकारणन्दर्शनान्निवर्तते तत्र चित्तनिवृत्तिरेवमोक्षः किमर्थमस्थान एवास्यमतिविभ्रमः ॥ २४ ॥

भा० प० । (विपर्ययज्ञानवासेनतत्रर्थः) अविद्या अर्थात् मिथ्या ज्ञान वासना (विपर्यय ज्ञान वासनावासिता) मिथ्या ज्ञानवासनासे वासित (न) नहीं (पुरुषख्यातिं) पुरुष ज्ञानको (बुद्धिः) बुद्धि (प्राप्नोति) प्राप्त होती (साधिकारा पुनरावर्त्तते) अधिकार सहित पुनः आवर्त्तित होतीहै (सातु) वोबुद्धि (पुरुषख्यातिपर्यवसाना) पुरुषज्ञानमें स्थिर होती है (कार्य्यनिष्ठाम्) कार्य्यसिद्धिको (प्राप्नोति) प्राप्त होतीहै (चरिताधिकारा) सिद्धाधिकारा बुद्धि (निवृत्ता दर्शना) निवृत्त हो गया है अदर्शन जिससे (बन्धकारण भावात्) बन्ध कारणभावसे (न) नहीं (पुनः) पुनः (आवर्त्तते) आवृत्त होती (अत्र) यहां (कश्चित्) किसी

(षण्डकोपाख्यानेन) नपुंसकके उपाख्यानसे (उद्घाटयति) उद्घाटित करताहै (मुग्धयाभार्यया) मुग्धभार्य्यासे (अभिधीयते) अभिधान करते हैं (षण्डक) हे नपुंसक (आर्य्यपुत्र) पते (अपत्यवतीमेभगनी) मेरी बहन पुत्रवती है (किमर्थंनाहमिति) मैं क्यों नहीं (सः) वह (ताम्) उससे (आह) बोला (मृतस्तेहमपत्यमुत्पादयिष्यामीति) मैमर करतेरेपुत्र उत्पादन करूंगा (तथा) तैसेही (इदम्) ये (विद्यमानम्) विद्यमान ज्ञान (चित्तनिवृत्तिं न करोति) चित्तकी निवृत्ति नहीं करता (विनष्टं करिष्यतीति) नष्ट हुवा करैगा (का) क्या (प्रत्याशा) आशा है (तत्र) तहां (आचार्य्यदेशीयः) आचार्य्यका उपदेश दिया शिष्य (वक्ति) कहताहै (बुद्धिनिवृत्तरेव मोक्षः) बुद्धिकी निवृत्ति से मोक्ष होतीहै (अदर्शन कारणाभावात्) क्योंकि अदर्शन मोक्षका कारण नही है (बुद्धिनिवृत्तिः) बुद्धिकी निवृत्ति (तच्चा दर्शनम्) वही अदर्शन है (बन्धकारणम्) बन्धका कारण है (दर्शनान्निवर्तते) वही दर्शन से निवृत्त हो जाता है (तत्र) इसमें (चित्तनिवृत्तिरेवमोक्षः) चित्तकी निवृत्ति मोक्ष है (किमर्थ मस्थान एवास्यमति विभ्रमः) तब क्यों मतिका भ्रम होता है ॥ २४ ॥

भा का भा० । विपरीत ज्ञानको अविद्या कहते हैं विपरीत ज्ञान की वासना से भरी हुई बुद्धि कार्य्य निष्ठा वा आत्मज्ञानको प्राप्त नहीं कर सक्ती अधिकारयुक्त होनेके कारण पुनः पतित हो जाती है इस कारण से बुद्धिकी वासना को निवृत्त करना योग्य है इस स्थलपर कोई २,१ नपुंसक की कथा के अनुसार शंका करते हैं अर्थात् किसीसे पूंछा कि आर्य्यपुत्र ! मेरी भगिनी के तो सन्तान है मेरे सन्तान तुम क्यों नहीं करते तब नपुंसकने उत्तर दिया कि मैं मरकर तुम्हारे सन्तान उत्पन्न करूंगा, विचारनेका स्थल है कि जब वह जीतेही सन्तान उत्पन्न न कर सकातो मर कर क्या करैगा ऐसेही यह वर्तमान ज्ञान तो चित्तकी निवृत्ति न

कर सका किन्तु सरकार करेगा यह केवल दुराशामात्र है, किन्तु इस विषयमें एक आचार्य्य कहताहै कि बुद्धिकी निवृत्तिही मोक्ष नहीं है क्योंकि उसमें अदर्शन के कारणों का अभाव नहीं होता और बुद्धिकी निवृत्ति अदर्शन है किन्तु बन्धकारण दर्शनसे निवृत्त होताहै इससे चित्तकी निवृत्ति मोक्ष है ॥ २४ ॥

तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ॥ २५ ॥

सू० का प० । (तदभावात्) उस दर्शनके अभाव से (संयोगाभावोहानम्) संयोगका अभाव होताहै (तद्दृशेः) उस दृष्टिसे (कैवल्यम्) मोक्ष होतीहै ॥ २५ ॥

सू० का भा० । दर्शनके अभावसे संयोग का नाश जिसे हान कहते हैं होता है और उससे मोक्ष होती है ॥ २५ ॥

तस्यादर्शनस्याभावात् बुद्धिपुरुषसंयोगाभावः आत्यन्तिकोबन्धनोपरम इत्यर्थः एतद्धानन्तद्दृशेः कैवल्यं पुरुषस्यामिश्रीभावः पुनरसंयोगो गुणैरित्यर्थः दुःखकारणनिवृत्तौ दुःखोपरमहानन्तदास्वरूप प्रतिष्ठः पुरुष इत्युक्तम् ॥ २५ ॥

भा० का प० । (तस्य) उस (अदर्शनस्य) अदर्शन के (अभावात्) अभाव से (बुद्धि पुरुषसंयोगाभावः) बुद्धि और आत्माके संयोगके अभाव होता है (आत्यन्तिको बन्धनोपरमः) बन्धनका उपराम होजाता है (एतद्धानम्) उस दृष्टि से (कैवल्यम्) कैवल्य होता है (पुरुषस्यामिश्रीभावः) पुरुष केवल अर्थात् शुद्ध रहता है (पुनरसंयोगः) फिर संयोग

रहित होजाताहै (गुणी) गुणोंसे (दुःख कारण निवृत्ती) दुःखोंके कारण निवृत्त हो जानेसे (दुःखी परमोहानम्) दुःखके नाश को हान कहते हैं (तदा स्वरूप प्रतिष्ठः) तब समाधिस्थ (पुरुष इत्युक्ता) पुरुष कहा जाता है ॥ २५ ॥

भा० का भा०। जब दर्शन का अभाव हो जाता है तब बुद्धि और आत्मा के संयोग का भी अभाव हो जाता है और बन्धन का अवसान हो जाता है तथा पुरुष को कैवल्य अर्थात् गुणादि का बिरह होता है, अभिप्राय यह है कि दुःख की निवृत्ति को हान कहते हैं उसके होणेसे पुरुष समाधिस्थ वा कैवल्य प्राप्तहता है ॥ २५ ॥

बिवेकख्याति रविप्लवाहानोपाय: ॥२६॥

सू० का प०। (बिवेकख्यातिः) विवेक ज्ञान (अविप्लवा) स्थिर (हानोपाय:) हानका उपाय है ॥ २६ ॥

सू० का भा०। जिस ज्ञानका कभी नाश न हो वह ज्ञान प्राप्ति हानका उपाय है ॥ २६ ॥

सतत्रपुरुषान्यताप्रत्ययो बिवेकख्यातिः सात्वनिवृत्तमिथ्याज्ञानाप्लवते यदासिथ्याज्ञानन्दग्धबीजभावं बन्ध्यप्रसवं सम्पद्यते तदा बिधूतक्लेशरजसः सत्वस्यपरेवैशारद्येऽपरस्यां वशीकार संज्ञायां वर्तमानस्य बिवेक प्रत्ययप्रवाहो निर्मलो भवति सा बिवेकख्यातिरविप्लवाहानस्योपायः ततो मिथ्या ज्ञानस्य दग्धबीजभावोपगमः पुनश्चाप्रसव इत्येषमोक्षस्यमार्गो हानस्योपाय इति ॥ २६ ॥

भा० का प० । (सत्व पुरुषन्यता प्रत्ययः) दृश्य पदार्थों से आत्मा भिन्न है यह ज्ञान (विवेकख्यातिः) विवेकख्याति कहलाता है (सातु) और वह विवेक ख्याति (निवृत्तमिथ्याज्ञाना) नाश होनेवाले मिथ्या ज्ञान वाली (भवति) हुब जाती है (यदा) जब (मिथ्या ज्ञानम्) मिथ्या ज्ञान (दग्ध वीजभावम्) भस्म होगया है वीज अर्थात् उत्पन्न होनेका गुण जिसका (वन्ध्य प्रसवम्) बन्द होगया है प्रसव उत्पन्न होनेका गुण (विधूत क्लेश रजसः) तब रजोगुण के क्लेश नष्ट हो जाते हैं (सत्वस्य) सतगुणके (परे वैशारद्ये) परम प्रकाश में (अपरस्याम् वशीकार संज्ञायाम्) दूसरी वशीकार संज्ञा में (वर्तमानस्य) वर्तमान जो योगी (विवेक प्रत्ययप्रवाहः) विवेक ज्ञान का प्रवाह (निर्मलो भवति) निर्मल हो जाता है (साविवेक ख्यातिः) वह विवेकख्याति (हानस्योपायः) हानका उपाय है (ततः) तब (मिथ्या ज्ञानस्य) मिथ्या ज्ञानका (वीजभावोपगमः) वीजभाव का नाश होता है (पुनश्चाप्रसवः) फिर उत्पन्न नहीं होता (इत्येष मोक्षमार्गः) यह मोक्षका मार्ग (हानोपायः) हानका उपाय है ॥ २६ ॥

भा० का भा० । दृश्य पदार्थों से आत्मा भिन्न है ऐसा विचार हो जिसमें वह ज्ञान विवेक ख्याति कहलाता है और वही विवेकख्याति नाश होनेवाली होती है और डूब जाती है जब मिथ्या ज्ञान नष्ट हो जाताहै अर्थात् उसकी उत्पत्ति नाश हो जाती है तब रजोगुणका क्लेश नाश हो जाता है और सतो गुणके प्रकाशसे ज्ञानके प्रवाहमें निर्मल हो जाताहै वही विवेक ख्याति हानका उपाय है तब मिथ्या ज्ञानके वीजका नाशहो जाता है वो पुनः उत्पन्न नही होता यही मोक्ष का मार्ग और हानोपायहै ॥ २६ ॥

तस्य सप्तधाप्रान्तभूमिः प्रज्ञा ॥ २७ ॥

सू० का प० । (तस्य) पूर्वोक्त हानोपायकी (सप्तधा) सात प्रकार की

(प्रान्त भूमिः) प्राप्त योगी की समीपस्थ भूमि (प्रज्ञा) बुद्धि है ॥ २७ ॥

सू० का भा० । पूर्व सूत्रमें कहे हुए हानोपाय प्राप्त हुए योगी की सात प्रकार की बुद्धि है ॥ २७ ॥

तस्येतिप्रत्युदितख्यातेः प्रत्याम्नायः सप्तधेतिअशुद्ध्यावरणमलापगमाच्चित्तस्यप्रतययान्तरानुत्पादेसति सप्तप्रकारैवप्रज्ञाविवेकिनोभवतितद्यथापरिज्ञातं हेयन्नास्यपुनः परिज्ञेयमस्तिक्षीणाहेयहेतवोनपुनरेतेषां क्षेतव्यमस्ति साक्षात्कृतं निरोधसमाधिनाहानम्भावितोविवेकख्यातिरूपोहानोपाय इत्येषाचतुष्टयोकार्याविमुक्तिः प्रज्ञायाः चित्तविमुक्तिस्तुत्रयीचरिताधिकाराबुद्धिर्गुणागिरिशिखरतटच्युताइवग्रावाणोनिरवस्थानाःस्वकारणेप्रलयाभिमुखाः सह तेनास्तङ्गच्छन्ति नचैषांविप्रलीनानांतु अस्त्यु,त्पादः प्रयोजनाभावादिति एतस्यामवस्थायां गुणसंबंधातीतः स्वरूपमात्रज्योतिरमलः केवलीपुरुषइत्यता सप्तविधां प्रान्तभूमिप्रज्ञामनुपश्यन्पुरुषः कुशलइत्याख्यायतेप्रतिप्रसवेपि चित्तस्यमुक्तःकुशलइत्येवभवतिगुणातीतत्वादितिसिद्धाभवतिविवेकख्यातिर्हानोपायइति ॥ २७ ॥ नचसिद्धिरन्तरेणसाधनमित्येतदारभ्यते ॥

भा०का पा० (तस्य) उस (प्रत्युदितख्यातेः) प्राप्त हुईहै ख्याति अर्थात् ज्ञान जिस योगी को (प्रत्याम्नायः) बुद्धि (सप्तधा) सात प्रकार की है

(अशुद्धयावरणमलापगमात्) अशुद्धि और मलरूप आवरणके दूर हो जाने से (चित्तस्य) चित्तकी (प्रत्ययान्तरानुत्पादे सति) ज्ञानान्तर की उत्पत्ति न होनेसे (सप्त प्रकारैव) सातही प्रकार की (प्रज्ञा) बुद्धि (विवेकिनः) योगी की (भवति) होती है (तद्यथा) जैसे (परिज्ञातं हेयं नास्य) परिज्ञात शून्य और हेय शून्य (पुनः) फिर (परि ज्ञेयमस्ति) ज्ञेय कोई पदार्थ नहीं रहता है (क्षीणा हेय हे तवः) हेयके हेतु क्षीण हो जातेहैं (न पुनरेतेषांक्षेतव्यमस्ति) पुनः विवेकी को क्षीण करने योग्य कुछ नहीं रहता है (साक्षात्कृतं निरोध समाधिना हानम्) समाधिने किया है साक्षात् निरोध जिसका उस हान (भावितः) भावना किया गया (विवेकख्याति रूपः) विवेकज्ञान रूप (हानोपायः) हानोपाय (इत्येषा) यह (चतुष्टया) चार प्रकार की (कार्य्याविमुक्तिः) कार्य्य विमुक्ति प्रज्ञा है (प्रज्ञायाः) प्रज्ञाकी (चित्तविमुक्तिः) चित्तविमुक्ति नामक अवस्था (त्रयी) तीन हैं जिनमें से (चरिताधिकारा) चरित है अधिकार जिसके (बुद्धिः) बुद्धि (गुण) समस्त गुण (गिरिशिखरतटच्युता इव) पर्वत के शिखर की किनारे से गिरे हुए के समान (ग्रावाणो निरवस्थानाः) पत्थर जैसे स्थिर नहीं हो सक्ते (स्वकारणे प्रलयाभिमुखाः) अपने कारण में लय होनेको प्रस्तुत होते हैं (सहतेनास्तं गच्छन्ति) अपने गिरने के हेतु सहित नष्ट हो जाते हैं (नचैषांविलीनानाम्) और जब यह लीन हो जाते हैं (पुनरस्त्युत्पादः) फिर उत्पन्न नहीं होते (प्रयोजनाभावात्) क्योंकि उन की उत्पत्ति का प्रयोजन ही नहीं (एतस्यामवस्थायाम्) इस अवस्था में (गुणसम्बन्धातीतः) गुणोंके सम्बन्ध से रहित) (स्वरूपमात्र ज्योतिरमलः) प्रकाशरूप वाला निर्मल (केवली पुरुषः) शुद्ध आत्मा (तांसप्तविधां प्रान्तभूमिम्) पूर्वोक्त सात प्रकार की अवस्थाओंमें (प्रज्ञामनुपश्यन्) बुद्धि को देखता (पुरुषः कुशल इत्याख्यायते) पुरुषज्ञानी कहाता है (प्रतिप्रसवेपि चित्तस्य) चित्तकी पुनः उत्पत्ति होने पर भी (मुक्तः कुशल इत्येव भवति) मुक्त जीवज्ञानी ही होता है (गुणातीतत्वात्) क्योंकि उस में

ज्ञानस्य प्राप्तिकाकारणं योगाङ्गानुष्ठान विवेकख्यातेः वियोग-
कारणं तदेवाशुद्धेः अन्यत्वकारणं यथासुवर्णस्य सुवर्णकारः
एवमेकस्य स्त्री प्रत्ययस्याविद्यामूढत्वेद्वेषो दुःखत्वेरागः सुखत्व
तत्त्वज्ञानं माध्यस्थे धृतिःकारणं शरीरमिन्द्रियाणान्तानि च
तस्य महाभूतानि शरीराणान्तानि च परस्परं सर्वेषां तैर्यग्यौ
न मानुष दैवतानि च परस्परार्थत्वादित्येवं नवकारणानि च
यथासम्भवम्पदार्थान्तरेष्वपि योज्यानियोगाङ्गानुष्ठानं तु द्विधैव
कारणत्वं लभते इति ॥ २८ ॥ तत्र योगांगान्यवधार्यन्ते ॥

भा० का प० । (योगाङ्गानि) यमादि (अष्टौ) आठ (अभिधास्य-
माणानि) जिनका आगे वर्णन किया जायगा (तेषामनुष्ठानात्) उनका
अनुष्ठान करने से (पञ्चपर्वाणः) अविद्याके पांच भाग (विपर्य्ययस्याशुद्धि-
रूपस्य) अशुद्धिरूप विपर्य्यय ज्ञानका (नाशः) नाश हो जाता है (तत्-
क्षये) उसके नाश हो जानेसे (सम्यक् ज्ञानस्याभिव्यक्तिः) यथार्थ ज्ञान
की प्राप्ति होती है (यथायथा च) और जैसे २ (साधनान्यनुष्ठीयन्ते)
साधन किये जाते हैं (तथा तथा) तैसे २ (अशुद्धिःतनुत्वमापद्यते) मल
न्यून होता जाताहै (यथा यथा च) और जैसे २ (क्षीयते) अपवित्रता
नाश होती जाती है (तथा तथा) तैसेही २ (क्षयक्रमानुरोधिनी) क्षय
क्रम के अनुसार (ज्ञानस्यापिदीप्तिर्वर्द्धते) ज्ञानका भी प्रकाश बढ़ता
जाता है (साखल्वषाविवृद्धिः) यह ज्ञानकी वृद्धि (प्रकर्षमनुभवति)
उत्कृष्टता को प्राप्त होती जाति है (विवेकख्यातेः) विवेकसे (आगुणपु-
रुषस्वरूप विज्ञानात्) समस्त गुण और आत्माके पूर्णज्ञान होनेसे (योगां-
गानुष्ठानम्) योगांगके करने से (अशुद्धिवियोगका कारणम्) अपवित्र
ताके नाश का कारण है (यथापरशु छेद्यस्य) जैसे परशु के काटने से

(विवेकख्यातिस्तु) विवेकख्याति तो (प्राप्तिकारणम्) ज्ञान प्राप्तिका कारण है (तथा धर्मःसुखस्यनान्यथा कारणम्) जैसे धर्म के अतिरिक्त सुख का कारण अन्य कोई नहीं है। (कतिचैतानि कारणानि) यह कारण कितने (शास्त्रेभवन्ति) शास्त्रमें होती हैं (नवैव) नौ होते हैं (उत्पत्ति स्थित्यभिव्यक्ति विकार प्रत्ययाप्तयः वियोगान्यत्व धृतयः कारणन्नवधास्मृत मिति) १ उत्पत्ति, २ स्थिति, ३ अभिव्यक्ति, ४ विकार, ५ प्रत्यय, ६ प्राप्ति, ७ वियोग, ८ अन्यत्व, ९ धृति यह नव प्रकारका कारण शास्त्रमें कहाहै (तत्रोत्पत्तिकारणम्मनोभवति) उनमें से उत्पत्ति कारण मनहै (ज्ञानस्य-स्थिति कारणम्) ज्ञान स्थिति कारणहै (मनसः) मनकी (पुरुषार्थता (शरीरस्ये वाहारइति) जैसे शरीरका कारण आहार है (अभिव्यक्ति जैसे (रूपस्यालोकः) रूपका कारण प्रकाश है (तथा) तैसेही (रूपज्ञानम्) रूप ज्ञान (विकार कारणम्) विकार कारण है (मनसोविषयान्तरम्) मनका विषयान्तर (यथाग्निः) जैसे अग्नि (पाकस्य) पाकका (प्रत्यय-कारणम्) प्रत्यय कारण है (धूमज्ञानम्) धुएंका ज्ञान (अग्निज्ञानस्य) अग्निज्ञानका (प्राप्ति कारणम्) प्राप्ति कारण है (योगाङ्गानुष्ठान विविख्यातिः) विवेक ख्यातिसे योगके अङ्गोंका अनुष्ठान करना (वियोग कारणम्) वियोग कारणहै (तदेवाशुद्धः) जब वही अनुष्ठान मलिन होता है तो (अन्यत्वकारणम्) अन्यत्व कारण कहाता है (यथा) जैसे (सुवर्णस्य) सुवर्णका (सुवर्णकारः) सुनार (एवम्) इसही प्रकारसे (एवम्) ऐसेही (एकस्येस्त्री प्रतप्रयस्य) एक स्त्रीज्ञानका (अविद्या मूढत्वे) अविद्याद्वारा मोहित होनेसे (द्वेषः) शत्रुता होतीहै) दुःखत्वे रागः) दुःख भावमें राग होताहै (सुखत्वे तत्वज्ञानम्) सुखमें तत्वज्ञान होताहै (माध्यस्थे) समान भावमें (धृतिः कारणम्) धृतिकारण है (शरीर मिन्द्रियाणाम्) शरीर और इन्द्रियोंका (तानिच) और यह (तस्य) उसके (महाभूतानि) महाभूत (तानिच) और वह (परस्परम्) आपसमें (तैर्यग्यो)

उनसे (मानुषदैवतानि) मानुष्योंका और दैवतोंका (परस्परार्थत्वात्) परस्पर सहायतासे (इत्येवं नव कारणानि) यह नव कारण हैं (यथा सम्भव-पदार्थान्तरेष्वपि) जहां जहां सम्भव हों अन्य पदार्थोंमें भी (योज्यानि) लगाने चाहिये (योगाङ्गानुष्ठानन्तु) योगांगके अनुष्ठानतो (द्विधैव) दोही प्रकारके (कारणत्वं लभते) कारणभावको प्राप्त करता है ॥ २८ ॥

योगके ८ अङ्ग जिनका आगे वर्णन किया जायगा उनका अनुष्ठान करने से पञ्चपर्वा अविद्या नष्ट होती है उससे अपवित्रता का क्षय होता है और अपवित्रता नाश होनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है, योगी जैसे २ यमादि का अनुष्टान करता है वैसे ही वैसे मलिनता क्षय होती है और मलिनता क्षयके क्रमसे ही ज्ञानोदय होता जाता है वह ज्ञान क्रमसे उत्कृष्ट होता जाता है जिस प्रकारसे सुखका कारण केवल धर्म है ऐसेही मोक्षप्राप्तिके यह ९ योगाङ्गकारण हैं ॥ २८ ॥

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारध्यान धारणासमाधयोऽष्टावंगानि ॥ २९ ॥

सू० का प० । यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान, और समाधि योगके यह आठ अंग है ॥ २९ ॥

सू० का भा० । ८ योग के अंग हैं ॥ २९ ॥

यथाक्रममेतेषामनुष्ठानं स्वरूपञ्चवक्ष्यामः ॥ २९ ॥

भा० का प० । (यथाक्रमम्) क्रमसे (एतेषाम्) इनका (अनुष्ठा-नम्) अनुष्ठान (स्वरूपञ्च) और लक्षण (वक्ष्यामः) आगे कहेंगे ॥ २९ ॥

भा० का भा० । यमादि योग के आठो अंगों के लक्षण आगे कहेंगे ॥ २९ ॥

तत्राहिंसासत्यास्तेय ब्रम्हचर्य्या परि परिग्रहायमाः ॥ ३० ॥

सू० का प० । (तत्र) उक्त आठ अङ्गोंमें से (अहिंसा०) अहिंसा, सत्य, अस्तेय अर्थात् चोरीका न करना, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह अर्थात् विषयों का संग्रहन करना, यम हैं ॥ ३० ॥

सू० का० भा० । यम ५ हैं एक अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ॥ ३० ॥

तत्रा हिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः उत्तरेच यमनियमास्तन्मूलास्तत्सिद्धिपरतया तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते तदवदात रूपकारणायैवोपादीयन्ते तथाचोक्तं सखल्वयं ब्राह्मणो यथायथाव्रतानि वहूनि समादित्सते तयातथाप्रमादकृतेभ्यो हिंसानिदानेभ्यो निवर्तमानास्तामेवावदातरूपामहिंसां करोति सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे यथा दृष्टं यथानुमितं यथा श्रुतं तथा वाङ्मनश्चे ति परत्र स्वबोधसङ्क्रांतये वागुक्तासायदिन वञ्चिताभ्रान्ता वा प्रतिपत्तिवन्ध्या वा भवेत् इत्येषा सर्वभूतोपघातपरैवस्यान्न सत्यंभवेत् पापमेवभवेत्तेन पुण्याभासेन पुण्य प्रतिरूपकेन कष्टन्तमः प्राप्नुयात् तस्मात्परीक्ष्य सर्वभूतहितं सत्यं ब्रूयात्स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणाम्परतः स्वीकरणन्तत्प्रति षेधः पुनरस्पृहारूपस्तेयमिति ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य

संयमः विषयाणामर्जन रक्षणक्षयसङ्गहिंसा दोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रहइत्येतेयमाः तेतु ॥ ३० ॥

भा० का प०। (तत्र) उक्त यमोंमेंसे (अहिंसा सर्वथा सर्वदा) अहिंसा उसे कहतेहैं जो सब प्रकार से सब कालमें (भूतानामनभिद्रोहः) प्राणीमात्र का अनिष्ट चिन्तन न करना (उत्तरे च) और अगले (यमनियमास्तन्मूलाः) यम और नियम इस्से ही होते हैं (तत्सिद्धि परतया) उस की सिद्धि होनेसे (तत्प्रतिपादनाय) अहिंसाके सिद्ध करनेको (प्रतिपाद्यन्ते) और यमादि सिद्ध किये जातेहैं (तदवदातकरणायवै) उसको निश्चल और निर्मल करने के लिये (उपादीयन्ते) ग्रहण किये जाते हैं (तथाचोक्तम्) ऐसा ही अन्यत्र कहा है (सखल्वयं ब्राह्मणः) यह ब्रह्म को जाननेवाला योगी (यथायथा) जैसे २ (व्रतानि बहूनि समादित्सते) बहुत से व्रतों को धारण करने की इच्छा करता है (तथातथा) तैसे ही तैसे (प्रमादकृतेभ्यो हिंसानिदानेभ्यो निवर्त्तमानः) प्रमाद से किये हुए हिंसाके कारण रूपपापों से निवृत्त होकर (तामेवावदातरूपाम्) उसही निर्मल रूपवाली अहिंसा को (सत्यम्) अब सत्यका अर्थ करते हैं (यथार्थेवाङ्मनसे) जिसमें मन और वाणी यथार्थ है (यथादृष्टम्) जैसा देखा हो (यथानुमितम्) जैसा अनुमान किया हो (यथाश्रुतम्) जैसा सुना हो (तथा वाङ्मनश्चेति) वैसा ही अपने मन और वाणी को रखना (परत्र) दूसरे मनुष्य में (स्वबोध संक्रान्तये) अपने ज्ञानकी प्रेरणा करनेको (वागुक्ता) जो वचन कहा (सा) वह वाक्य (यदि) नवंचिता भ्रान्ता प्रतिपत्ति वन्ध्या वा ववेत्) न छल कपट भरा, न भ्रम देनेवाला और न निरर्थक हो (इत्येषा सर्वभूतोपकारार्थम् प्रवृत्ता न भूतोपघाताय) सब प्राणियों के उपकारके वास्ते कही गई हो किन्तु प्राणिओं के नाश के वास्ते न कही गई हो (ताप यदि चैवमप्यभिधीयमाना) यदि वह कहा हुआ वाक्य (भूतोपघातपरैवस्यात्) प्राणिओं का नाशक हो (नसत्यभवेत्)

वह सत्य नहीं होगा (पापमेवभक्त न) उसवाक्य वा उसके अनुसार आचरण करने से पाप ही होता है (पुण्याभासेन पुण्यप्रतिरूपकेन) पुण्याभास अर्थात् जो पुण्यके नाम से स्वार्थसाधन किया जाता है और पुण्यके नृत्य से (कष्टन्तमः प्राप्नुयात्) अत्यन्त कष्ट पाता है (तस्मात्) इस लिये (परीच्य) परिच्चा करके (सर्वभूत हितम्) जिसमें सब प्राणियों का हित हो (सत्यम्ब्रूयात्) सत्य बोले (स्तेयम्) चोरी उसके कहते हैं (अशास्त्र पूर्वकन्द्रव्याणाम्परतः स्वीकरणम) निषिद्ध रीतिसे दूसर काद्रव्य लेना तत्प्रतिपेधः) उसके निषेध को अस्तेय कहते हैं (पुनरस्पृहारूपस्तेयम्) इच्छासे भी चोरी होती है (ब्रह्मचर्य्यम्) ब्रह्मचर्य्य का अर्थ यह है कि (गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य) लिंगेन्द्रियका (संयमः) निरोध करना अर्थात् वीर्य्य रच्चा (विपयाणामर्जन रच्चणच्चय संग हिंसादोष दर्शनात्) विषयोंका संग्रह करने फिर उनकी रच्चा करने में और उनके नाश में सर्वत्र हिंसा रूप दोष को देखकर (अस्वीकरणमपरिग्रहः) जो विषयों का त्यागहैं उसे अपरिग्रह कहते हैं॥ ३० ॥

भा० का भा० । अहिंसा उसे कहते हैं जो किसी प्रकारसे किसी काल में भी किसी प्राणिकी शत्रुता न करना यह अहिंसा अन्य चार यमों की मूल है क्योंकि अहिंसाके सिद्ध करने को ही अन्ययमादि किये जाते हैं सत्य उसे कहते हैं कि जैसा अपना दृष्टश्रुत और अनुमित विषय हो वैसा ही प्रकाशित करना और जिसे उपदेश करना उसे निष्कपट निभ्रान्त ऐसे शब्दों में करना जिनसे उसे बोध हो जाय, तिसमें प्राणियों का द्वेष हो वह सत्य नही है और जो पुण्याभास है उससे धर्म्म नहीं होता किन्तु पाप ही होता है इस लिये सावधानी से सत्यकी परीच्चा करके वचन बोलना उचित है, अस्तेयका अर्थ है कि शास्त्रविरुद्ध रीतिसे किसी के धनको ग्रहण न करना उपस्थ इन्द्रियों का निरोध किया जाताहै उसे ब्रह्मचर्य्य कहते है, विषयों को जो दोषदृष्टि से त्यागना है उसे अपरिग्रह कहते हैं यह ५ यम हैं ॥ ३० ॥

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमामहाव्रतम् ॥३१॥

सू० का प० । (जाति देशकाल समयानवच्छिन्नाः) जाति देश, काल, और समयसे भिन्न (सार्वभौमाः) सर्व पृथ्वी, और सब विषयों में पालन करना (महाव्रतम्) महाव्रत है ॥ ३१ ॥

सू० का भा० । जाति देश काल और समय से भिन्न इन यमों का सर्वथा परिपालन करना महाव्रत कहाता है ॥ ३१ ॥

तत्राहिंसाजात्यवच्छिन्नामत्स्यबन्धकस्यमत्स्येष्वेवनान्यत्र हिंसासैवदेशावच्छिन्नानतीर्थेहनिष्यामीति सैवकालावच्छिन्ना न चतुर्दश्यान्नपुण्ये अहनिहनिष्यामीति सैवत्रिभिरुपरतस्यसमया-वच्छिन्नादेव ब्राह्मणार्थेनान्यथाहनिष्यामीति यथा च क्षत्रि-याणां युद्ध एव हिंसानान्यत्रेति एभिर्जाति देशकाल समयैर-नवच्छिन्ना अहिंसादयः सर्वथैव परिपालनीयाः सर्व भूमिषु सर्वविषयेषु सर्वथैवाविदितव्यभिचाराः सार्वभौमामहाव्रतमि-त्युच्यन्ते ॥ ३१ ॥

भा० का प० । (तत्राहिंसाजात्यवच्छिन्नाः) उनमें से जातिके अनु-सार अहिंसा यह है कि (मत्स्यबन्ध कस्य मत्स्ये ष्वे वनान्यत्रहिंसा) मछरी पकड़नेवालेकी हिंसा केवल मछरीओंके मारनेमें है उसेत्यागना (सैव देशा वच्छिन्ना) वही हिंसा देश सम्बन्धिनी होती है (न तीर्थेहनिष्यामीति) तीर्थ स्थान में हिंसा न करूंगा (सैवकालावच्छिन्ना) वहीकाल सम्ब-

न्धिनी होती है (न चतुर्दश्यान्नपुण्ये हनि हनिष्यामीति) न चतुर्दशी को और न किसी पवित्र दिनमें हतया करूंगा (सैवत्रिभिरपरतस्य) जो इन तीनोंसे विरक्त है उसे (समयावच्छिन्ना) समय सम्बन्धिनी (देवब्राह्मणार्थे वान्ययाहनिष्यामीति) देवता वा ब्राह्मणके वास्ते हिंसा करूंगा (तथाच) और ऐसे ही (क्षत्रियाणाम्) क्षत्रियों को (युद्ध एव हिंसा) युद्धहीमें हिंसा होती है (नान्यत्रेति) अन्यत्र नहीं (एभिर्जातिदेशकाला नवच्छिन्ना:) इन जाति देश काल और समयों से असम्बन्धित (अहिंसादय:) अहिंसादि यम (सर्वथैवपरिपालनीया:) सवप्रकारसे पालन करने योग्य हैं (सर्वभूमिषु) सब अवस्थाओंमें (सर्व विषयेषु) सब विषयोंमें (सर्वथैव) सब प्रकार से ग्रहण करना (सार्वभौमा महाव्रतम्) सार्वभौम महाव्रत कहाता है ॥ ३१ ॥

भा० का भा० । जात्यवच्छिन्नहिंसा वह कहाती है जो जाति से सम्बन्ध रखती हो जैसे मछुआ जातिमें मछरी मारना, देशसम्बन्धिनी हिंसा वह है जो किसी देशके उद्देश्य से की जाय, ऐसे ही काल और समय सम्बन्धिनी भी हैं इन से सर्वथा निवृत्त होने को सार्वभौम महाव्रत कहते हैं ॥ ३१ ॥

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानिनियमाः ॥ ३२ ॥

सू० का प० । (शौच) शुद्धि (संतोष) सन्तुष्ट रहना (तप:) स्वकर्मानुष्ठान (स्वाध्याय) वेदादिका पठन (ईश्वर प्रणिधानानि) भक्ति विशेष (नियमा:) ये नियम कहाते हैं ॥ ३२ ॥

सू० का भा० । शौच आदि नियम कहाते हैं ॥ ३२ ॥

तत्रशौचं मृज्जलादिजनितं मेध्याभ्यवहरणादिच बाह्यमा-

भ्यन्तरश्चितमलानामाचालनं सन्तोषः सन्निहितसाधनादधिक स्यानुपादित्सातपो द्वंद्वसजिघत्सापिपासेशीतोष्णे स्थानासने- काष्ठमौनाकार मौनेचव्रतानिचैव यथायोगं कृच्छ्रचान्द्रायण- सान्तपनादीनिस्वाध्यायो मोक्षशास्त्राणामध्ययनम्प्रणवजपोवा ईश्वरप्रणिधानन्तस्मिन्परमगुरौ सर्वकर्मार्पणं शय्यासनस्थोथ- पथिव्रजन्वास्वस्थः परिक्षीणवितर्कजालः संसारबीजक्षयमीक्ष- माणःस्यान्नित्यमुक्तोऽमृतभोगभागीयर्ले दसुतान्ततः प्रत्यक्चेत- नाधिगमोप्यन्तराया भावश्चेति ॥ ३२ ॥

भा॰ का प॰। (तत्र शौचम्) तहां शौचका अर्थ करते हैं (मृज्ज- लादिजनितमेध्याभ्यवहरणादि च बाह्यमाभ्यन्तरञ्च मलानामाचालनम्) मृत जलादिजनित बाह्य मेध्य अर्थात् पवित्र योग्य पदार्थजनित आभ्यन्तर मलोंका प्रचालन (संतोषः) इसका अर्थ करते (सन्निहित साधनस्य) सन्निहित साधनकी (अनुपादित्सा) अनिच्छा (तपः) तपका अर्थ करते हैं (द्वंद्वसहनम्) द्वंद्वका सहना (द्वंद्वञ्च) द्वंद्व कहते हैं (जिघित्सा- पिपासे शीतोष्णेस्थानासने काष्ट मौनाकार मौनमेव, तानिचैव) भूख प्यास शर्दी गर्मी स्थान आस काष्टके समान मौनसे (यथायोगम्) यथा- योग (कृच्छ्रचांद्रायण सांतपना दीनि) कृच्छ्र चांद्रायण सान्तपन आदि व्रत (स्वाध्यायः) इसका अर्थ करते हैं (मोक्ष शास्त्राणामध्ययनम्) मोक्ष शास्त्रोंका पढ़ना (प्रणवजपोवा) अथवा प्रणवका जप (ईश्वर प्रणिधानम्) ईसका अर्थ करते है (तस्मिन्परमगुरौ सर्व कर्मार्पणम्) ईश्वरमें सब कर्मोंका अर्पण (शय्यासनस्थः) शय्याया आसन पर बैठा (अथापिव्रजन्) या चलता (वा) या (स्वस्थः) स्वस्थ (परिक्षीण बितर्क जालः) गत बितर्क जाल गत बितर्क (संसार बीजक्षय मीक्षमाणः) संसारके

बीज को नष्ट देखताहुवा (स्यान्नित्यमुक्तः) नित्यमुक्त होताहै (अमृत भोगभागी) मोक्षभागी (यत्र) जहां (इदमुक्तम्) यह कहा जाता है (ततः) तिस्से (प्रत्यक् चेतनाधिगमः) परमात्म ज्ञानकी प्राप्ति होती है (अन्तरायाभावश्च) और विघ्नोंका नाश होता हैं ॥ ३२ ॥

भा० का भा० । मट्टी और जलादिसे स्नानादि करण वाह्य और भक्ष्य भोजनादिसे अन्तरप्रक्षालन करना अन्तस्शौच कहता है सन्निहित साधन की अनिच्छा संतोष कहाती है सर्दी गर्मी भूख प्यासका सहना मौन क्षच्छ्रचान्द्रायण आदिका करना तप कहाता हैं मोक्ष निरूपक शास्त्रोंका पढ़ना स्वाध्याय कहते हैं अथवा प्रणवका जप, जो कर्म करे उसको ईश्वरमें अर्पण करदे इसको ईश्वर प्रणिधान कहगे हैं सोता बैठा चलता स्वस्थ निवृत्त वितर्क संसार बीजको नकर जो पुरुष रताहै वह मोक्षपदको प्राप्त होताहै ॥ ३२ ॥

एतेषांयमनियमानांवितर्कबाधनेप्रतिपक्षभावनम् ॥ ३३ ॥

सू० का प० । (एतेषाम्) इन (यमनियमानाम्) अहिंसा सत्य वचन ब्रम्हचर्य्य अकलुषता अस्तेय ये पांच यमकहाते हैं इनके नियमोंके (वितर्क बाधने) तर्कोंसे बाधनमें (पतिपक्ष भावनम्) प्रतिकूल भावना करे ॥ ३३ ॥

सू० का भा० । पूर्वोक्त यमके इन (शौचादि) नियमोंके बाधमें अर्थात जब ये नरहैं तब प्रतिकूल भावना अर्थात् इनकी पुनः प्राप्ति जिस से हो ऐसी भावना करे ॥ ३३ ॥

यदास्यब्राह्मणस्य हिंसादयोवितर्काजायेरन्हनिष्याम्यह-

मौंसैभविष्यतीति लोभक्रोधमहा: पुनस्त्रिविधास्मृदुमध्याधिमा-
त्राइत्येवं सप्तविंशतिर्भेदाभवन्तिहिंसाया: मृदुमध्याधिमात्रा:
पुनस्त्रेधामृदुमृदुर्मध्यमृदुस्तीव्रमृदुरितितथा मृदुमध्योमध्यमध्य-
स्तीव्रमध्यइति तथामृदुतीव्रोमध्यतीव्रोधिमात्रतीव्रइति एव-
मेकविंशति भेदाहिंसाभवति सा पुनर्नियमविकल्प समुच्चय
भेदादसंख्येयां प्राणभृद्भेदस्या परिसंख्येयत्वादिति एवमनृता
दिष्वपि योज्यन्ते खल्वमी वितर्कादुःखाज्ञानानन्तफला इति
प्रतिपक्षभावनं दुःखमज्ञानञ्चानन्तफल येषा मिति प्रति
पक्ष भावनम् तथा च हिंसक: प्रथमन्तावद्वध्यस्य वीर्य
माक्षिपति ततः शस्त्रादि निपातेन दुःखयति ततो जीवि-
तादपि मोचयति ततः वीर्याक्षेपादस्य चेतनाचेतनमुप-
करणं क्षीणवीर्यं भवति दुःखोत्पादान्नरकतिर्यक् प्रेतादिषु
दुःखमनु भवति जीवितव्यपरोपणात्प्रतिक्षणञ्च जीवितात्यये
वर्तमानो मरणमिच्छन्नपि दुःखविपाकस्य नियतवेदनीयत्वात्
कथञ्चिदेवोच्छ्वसिति यदि च कथञ्चित्पुण्यावापगताहिंसाभ-
वेत् तत्र सुखप्राप्तौ भवेदल्पायुरिति एवमनृतादिष्वपि योज्यं
यथासम्भवं एषां वितर्काणाञ्चामुमेवानुगतं विपाकमनिष्टं भाव-
यन्नवितर्केषु मनः प्रणिदधीत ॥ ३४ ॥

भा० का प० । (तत्र) तहां (हिंसा) हिंसा (तावत्कृताकारिता-

अनुमोदितेति) १ कृता २ कारिता ३ अनुमोदिता (त्रिधा) तीन प्रकार की है (एकैकापुनस्त्रिधा) फिर एक एक तीन प्रकारकी है (लोभेन) लोभसे (मांस चर्मार्थे) मांस और चमड़े के निमित्त (क्रोधेन) क्रोधसे (अपकृतमनेनेति) इसने अपकार किया है (मोहेन) मोहसे (धर्मोमे-भविष्यतीति) मुझको धर्म होगा (लोभ क्रोध मोहाः) लोभ क्रोध और मोह (पुनस्त्रिधा) पुनः तीन प्रकारकी हैं (मृदुमध्याधिमात्राः) मृदु मध्य और अधिमात्रा (इत्येवं सप्तविंशति भेदाभवंति हिंसायाः) ऐसे २१ भेद होतेहैं हिंसाके (मृदुमध्याधिमात्राः) मृदु, मध्य, और अधिमात्र अर्थात् तीव्र (पुनस्त्रिधा) फिर तीन प्रकारका है (मृदु मृदुः) एक मृदु मृदु (मध्य-मृदुः)मध्यमृदु (तीव्रमृदुरिति) तीसरा तीव्र मृदु (मृदुमध्यो मध्यमध्यस्तीव्र-मध्य इति) १ मृदुमध्य २ मध्यमध्य ३ तीव्रमध्य (तथा) ऐसेही (मृदुतीव्रो-मध्यतीव्रोधिमात्र तीव्र इति) १ मृदु तीव्र २ मध्यतीव्र ३ तीव्र तीव्र (एवम्) इस रीतिसे (एक विंशति भेदाहिंसा भवति) २१ भेदवाली हिंसा होती है (सा पुनः) फिर वही हिंसा (नियम विकल्पसमुच्चय भेदात्) निय, विकल्प, और संग्रह की भेदसे (असंख्यया) असंख्य भेद वाली है (प्राणभृद्भेद-स्यासंख्येय त्वात्) क्योंकि प्राणिओं के असंख्य भेद हैं (एवमनृतादिष्वपि योज्यन्ते) ऐसेही सत्यादिके भी भेद समझने चाहिये (खल्वमीवितर्का दुःखज्ञानानन्तफलाः) यह वितर्क दुःख और अज्ञान आदि अनन्तफलों को देनेवाले हैं (प्रतिपक्ष भावनम् दुःखमज्ञानञ्चानन्तफलम्) प्रति पक्ष भावना, दुःख और अज्ञान इत्यादि अनन्त हिंसादिके फल हैं (तथाच) ऐसेही (हिंसकः) हिंसा करनेवाला (प्रथमन्तावत्) प्रथमतो (वध्यस्य) जिसका वध करने की इच्छा है (वीर्यमाक्षिपति) उसके बल की निन्दा वा तिरस्कार करता है (ततः) उसके पश्चात् (शस्त्रादि निपातेन दुःख-यति) शस्त्रादिसे मार कर दुःख देताहै (ततः) उसके अनन्तर (जीविता-दपि मोचयति) जीवन से छुड़ा देता है (ततः) इस कारण से वीर्य-

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥३६

सू० का प० । (सत्य प्रतिष्ठायाम्) सत्यकी प्रतिष्ठामे (क्रिया फला-श्रयत्वम्) क्रियाफलका आश्रय होताहै ॥ ३६ ॥

सू० का भा० । सत्य प्रतिष्ठामें क्रियाके फलका आश्रयभाव होताहै ॥ ३६ ॥

धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः स्वर्गंप्राप्नुहीति स्वर्गं प्राप्नोति अमोघास्यवाग्भवति ॥ ३६ ॥

भा० का प० । (धार्म्मिको भूयाइति) तू धार्म्मिक होजा (धार्म्मि-कोभवति) धार्म्मिक होजाताहै (स्वर्गं प्राप्नुहीति) स्वर्गको प्राप्तहो (स्वर्गं प्राप्नोति) स्वर्गको प्राप्त होताहै (अमोघास्य वाग्भवति) इसकी वाणी अमोघ होती है ॥ ३६ ॥

भा० का भा० । सत्यवाक् जिसको कहै कि तू धार्म्मिक होया स्वर्गको प्राप्तहो उसे वैसाही होताहै ॥ ३६ ॥

अस्तेयप्रतिष्ठायांसर्वरत्नोपस्थानम् ॥३७

सू० का प० । (अस्तेय प्रतिष्ठायाम्) चोरी न करनेसे (सर्व रत्नोप-स्थानम्) सब रत्नोका उपस्थान होता है ॥ ३७ ॥

सू० का भा० । चोरी न करनेसे सब रत्नोकी प्राप्ति होतीहै ॥ ३७ ॥

भा० सर्वदिक्स्थान्यस्योपतिष्ठन्ते रत्नानि ॥ ३७ ॥

भा० का प० (सर्वदिक्स्थानि) सबदिशाओंके (अस्योपतिष्ठन्ते र-त्नानि) इसको रत्न प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥

भा० का भा० । सब दिशाओंके रत्न इसको मिलते हैं ॥ ३७ ॥

ब्रह्मचर्य्यप्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः ॥ ३८

सू० का प० । (ब्रह्मचर्य्य प्रतिष्ठायाम्) ब्रह्मचर्य्यकी स्थिरतामें (वीर्य्य-लाभः) बीर्य्यका लाभ होताहै ॥ ३८ ॥

सू० का भा० । ब्रह्मचर्य्य स्थिर करनेसे बीर्य्यलाभ होताहै ॥ ३८ ॥

यस्यलाभादप्रतिघान्गुणानुत्कर्षयति सिद्धश्चबिनेयेषु ज्ञानमाधातुं समर्थो भवतीति ॥ ३८ ॥

भा० का प० । (यस्य लाभात्) जिसकी लाभसे अप्रतिम (गुणान्) गुणोंको (उत्कर्षयति) उत्कर्षित करताहै (सिद्धः) सिद्ध (च) और (बिनेयेषु) शिक्षा करने योगयोंमें (ज्ञानमाधातुम्) ज्ञान देनेमे (समर्थोभवतीति) समर्थ होताहै ॥ ३८ ॥

भा० का भा० । जिस बीर्य्यकी लाभसे पुरुष अप्रतिम गुणकों प्राप्त कर सकता है और सिद्ध होने पर बिनेय अर्थात् शिक्षा करने योगय शिषयोंको ज्ञान देनेमे समर्थ होताहै ॥ ३८ ॥

अपरिग्रहस्थैर्य्ये जन्मकथन्तासंबोधः ॥ ३९

सू० का प० । (अपरिग्रहस्थैर्य्ये) अपरि ग्रहकी स्थिर करनेमे (जन्म-कथंन्ता संबोधः) जन्म क्यों हुवा इसका बोध होताहै ॥ ३९ ॥

सू० का भा० । अपरि ग्रहमे स्थिर रहनेसे जन्म क्यों भया इसका बोध होताहै ॥ ३९ ॥

अस्य भवति कोहमासङ्कथमहमासङ्किं स्विदिदङ्कथं स्विदिदंकि वा भविष्यामः कथंवा भविष्याम इत्येवमस्यपूर्वान्तपरान्तमध्येष्वात्मभाव जिज्ञासा स्वरूपेणोपावर्तते एतायमस्थैर्य्येसिद्धयः नियमेषुबक्ष्यामः ॥ ३९ ॥

भा० का प० । (अस्य भवतिकोऽहमासं) मै कौनथा (कथमहमासं) कैसेमै था (किंस्विदिदम्) क्यायेहै (कथंस्विदिदम्) कैसे य है (केवा-भविष्यामः) या क्या होंगे (कथं वा भविष्यामः) या कैसे होंगे (इतेर-वम्) इस प्रकारसे (अस्य) इस पुरुषके (पूर्वांत परान्त मध्येषु) पूर्वान्त परान्त और मध्यमें (आत्मभाव जिज्ञासा) आत्म भावके जाननेकी इच्छा (स्वरूपेणोपावर्त्तते) स्वरूपसे उपावर्तित होतीहै (एतायमस्थैर्यसिद्धयः) ये स्थिरताकी सिद्धी हैं (नियमेषु वक्ष्यामः) नियमोंमे कहेंगे ॥ ३९ ॥

भा० का भा० । इसकी अर्थात् जिसको अपरिग्रह स्थिरहैं ये जिज्ञासा होती हैं कि मै कौन हू कैसे था ये सब क्या है वे कैसे है । क्या होंगे कैसे होंगे पूर्व पर और मध्यमें आत्मभाव जनने की इच्छा अपने रूपसे उपावर्तित होतेहैं ये सब स्थिर सिद्धियां नियमोंमे कहेंगे तात्पर्य यह है कि तयागीको अनेका जन्मोंका ज्ञान होता है ॥ ३९ ॥

शौचात्स्वांगजुगुप्सापरैरसंसर्गः ॥४०

सू० का प० । (शौचात्) शौचसे (स्वांग जुगुप्सा) अपने अंगोंकी निन्दा (परैरसंसर्गः) औरोंसे असंसर्ग ॥ ४० ॥

सू० का भा० । अंतः शौचसे अपने शरीर अशुद्धि देखकर निन्दा और दूसरे अशुद्धोंसे असंसर्ग होता हैं ॥ ४० ॥

स्वाङ्गेजुगुप्सायां शौचमारभमाणः कायावद्यदर्शीकायान-भिष्वङ्गीमतिर्भवति किञ्च परैरसंसर्गः कायस्वभावलोकीस्वमपि-कायञ्जिहासुर्म्ज्जलादिभि राचालयन्नपिकायशुद्धिमपश्यन्कथं परकायैरत्यन्तमेवाप्रयतैः संसृज्येत ॥ ४० ॥

भा० का प० । (स्वांगेजुगुप्सायाम्) स्वांग निन्दामे (शौचमारभ-माणः) शौचका आरम्भ करता है (कायावद्यदर्शी) कायामे अवरदर्शी

(कायानभिव्यंगी) कायासे अभिव्यंगयुक्त (यतिर्भवति) यति होताहै (किंचपरैरसंसर्गः) किन्तु परसे असंसर्ग (कायस्य भावावलोकी) कायाके भावोंको देखनेवाला (स्वमपिकायं जिहासुः) अपने शरीरको भी त्यागनेवाला (मृज्जलादिभिराचालयन्) मट्टी जलादिसे चाल्लित करता है (अपि) भी (कायशुद्धि मपश्यन्) कायाकी शुद्धिको न देखता हुवा (कथं) कैसे (परकीयैः) पर कायोंसे (अत्यन्त मेवाप्रयतैः) अत्यन्तही मलीनोंसे (संसृज्यते) संसर्ग करता है ॥ ४० ॥

भा० का भा० । स्वांग अर्थात् वच्यमाणयति निन्दासे अपने शरीरसें शौचको आरम्भ करता हुवा कायाको नश्वर जानता और कायांसें अभिव्यंग माननेवाला होताहै कायाके स्वभावको देखनेवाला जो अपने अशुद्ध शरीरको भी तयागने की इच्छा करताहै वो कैसे दूसरे अशुद्धसे संसर्ग करैगा ॥ ४० ॥

किंचसत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ॥ ४१

सू० का प० । (किंच) वरन् (सत्वशुद्धि सौम नस्यै काग्रेन्द्रिय जयात्मदर्शनयोग्यत्वानिच) सत्वशुद्धि सुमनसत्व इन्द्रियजय और आत्मदर्शन योग्यता ॥ ४१ ॥

सू० का भा० । यतिको सत्वशुद्धि शुद्धमनता एकाग्रता इन्द्रियजय और आत्म दर्शन योग्यता है ॥ ४१ ॥

भवन्तीति वाक्यशेषः शुचेः सत्त्वशुद्धिस्ततः सौमनस्यं तत ऐकाग्र्यन्तत इन्द्रियजयस्ततश्चात्मदर्शनयोग्यत्वम् बुद्धिसत्वस्य भवतीति एतच्छौचस्थैर्य्यादधि गम्यत इति ॥ ४१ ॥

भा० का प०। (भवन्तीति वाक्यशेषः) पूर्वोक्त होतेहैं (शुचेः) शुचि को (शुद्धिः) शुद्धि (ततः) फिर (सौमनस्यम्) सुमनसता (तत एकाग्रस) तव एकाग्रता (तत इन्द्रियजयः) तव इन्द्रियजय (ततश्चात्मदर्शन योग्यत्वम्) तव आत्मदर्शन योग्यता (बुद्धिसत्वस्यभवति) बुद्धि सत्वको होतेहैं (इति) ये एतच्छौचस्थैर्यादधिगम्यते) शौच का स्थिरतासे होते हैं ॥४१॥

भा० का भा०। शुद्ध की क्रमसे शौच की स्थिरतासे शुद्धि शुद्ध मानसता एकाग्रता इन्द्रिय जय और आत्म दर्शन योग्यता होते हैं ॥४१॥

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ४२

सू० का प०। (संतोषात्) सन्तोषसे (अनुत्तमसुखलाभः) श्रेष्ठगुणों का लाभ होता है ॥ ४२ ॥

सू० का भा०। संतोष से श्रेष्टसुख मिलते हैं ॥ ४२ ॥

तथाचोक्तं यच्चकामसुखं लोके यच्चदिव्यमहत्सुखं तृष्णाक्षयसुखस्यैतेनार्हतः षोड़शीं कलामिति ॥ ४२ ॥

भा० का प०। (तथाचोक्तम्) तैसाही अन्यत्र कहाहै (यच्च काम सुखं लोके) जो काम सुख है लोकमे (यच्चदिव्यमहत्सुखम्) जो और दिव्य महा सुख है (तृष्णाक्षयसुख) तृष्णाक्षयसुखकी (कलांनार्हति षोड़शीम्) कलाको नहीं प्राप्त होते सोलह वींको ॥ ४२ ॥

भा० का भा०। सूत्रके अनुसारही अन्यत्र भी लिखा कि जो लोकमें काम सुख हैं तथा महत् दिव्य सुखे है वेस तृष्णाक्षय सुखकी षोड़शी कलाके समान भी नहीं है ॥ ४२ ॥

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ४३

सू० का प०। (कायेन्द्रियसिद्धिः) काय सिद्धि इन्द्रियसिद्धि (अशुद्धिक्षयात्) अशुद्धि क्षयसे (तपसः) तपसे ॥ ४३ ॥

सू० का भा० । जपसे अशुद्धि क्षय होनेसे कायेंद्रिय सिद्धि होती है ॥ ४३ ॥

निर्वर्त्यमानमेवतपो हिनस्त्य शुद्ध्यावरणमलं तदावरणमलापगमात्कायसिद्धिरणिमाद्यातथेन्द्रियसिद्धिर्दूराच्छ्रवणदर्शनाद्येति ॥ ४३ ॥

भा० का प० । (निर्वर्त्यमानमेवतपः) अनुष्ठित तप (हिनस्ति) नाश करताहै (अशुध्यावरणंमलम्) अशुद्धिसे आच्छादनवाला मलका (तदावरणमलापगमात्) अशुद्धिसे आवृतमलनाश होनेसे (कार्य्यसिद्धिः) अर्थात् (अणिमाद्या) आणीमादिक (तथा) तैसेही (इन्द्रियसिद्धिः) अर्थात् दूराच्छ्रवण दर्शनाद्या) दुरसे दर्शनादि ॥ ४३ ॥

भा० का भा० । अनुष्ठित तप दुर्मलोका नाश करता है उसके नाश होनेसे अणिमादिक और दूरसे श्रवण आदि सिद्धि होतीहैं ॥ ४३ ॥

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः ॥ ४४

सू० का प० । (स्वाध्यायात्) पढ़नेसे (इष्टदेवता संप्रयोगः) ईश्वरोपासना होतीहै ॥ ४४ ॥

सू० का भा० । स्वाध्यायसे ईश्वरोपासना होती है ॥ ४४ ॥

देवाऋषयः सिद्धाश्चस्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति कार्येचास्यवर्तन्त इति ॥ ४४ ॥

भा० का प० । (देवाऋषयः) देवऋषि (सिद्धाश्च) और सिद्ध (स्वाध्यायशीलस्य) पढ़नेवालेके (दर्शनं गच्छंती) दर्शनमें आतेहैं (कार्येचास्यवर्तंते) और इसके कार्य्यमें प्रवृत्त होतेहै ॥ ४४ ॥

भा० का भा०। स्वाध्यायशीलको देवता ऋषि दीखते हैं और इसकी कार्यमें प्रवृत्त होते हैं ॥ ४४ ॥

समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात् ॥४५॥

सू० का प०। (समाधि सिद्धिः) समाधिकी सिद्धि (ईश्वर प्रणिधानात्) ईश्वर प्रणिधानसे ॥ ४५ ॥

सू० का भा०। ईश्वर प्रणिधानसे समाधि सिद्धि होतीहै ॥ ४५ ॥

ईश्वरार्पित सर्वभावस्य समाधिसिद्धिर्यया सर्वमीप्सितमवितथं जानाति देशान्तरेदेहान्तरे कालान्तरे च ततोस्यप्रज्ञायथाभूतं प्रजानातीति ॥ ४५ ॥ उक्ताः सहसिद्धिभिर्यमनियमाः आसनादीन्निवक्ष्यामः ॥

भा० का प०। ईश्वरार्पित सर्व भावस्य) ईश्वरमें अर्पित सर्व भावको (समाधिसिद्धिः) समाधि सिद्धि (यया) जिससे (सर्वमीप्सितम्) सब इच्छा (अवितथम्) यथोचित (जानाति) जानता है (देशान्तरे) देशान्तरमें (देहान्तरे) देहान्तरमें (कालान्तरेच) और कालान्तरमें (ततोस्य प्रज्ञा यथाभूतं प्रजानाति) तब इसकी बुद्धि सब जानतीहैं ॥ ४५

भा० का भा०। जो पुरुष सब कर्म को ईश्वर में अर्पित कर देता उसकी समाधि सिद्धि होती है उससे अन्यदेश देह कालको जानताहै॥४५

तत्र स्थिरसुखमासनम् ॥ ४६

सू० का प०। (तत्र) तहां (स्थिरसुखम्) स्थिर सुख (आसनम्) आसन कहाता है ॥ ४६ ॥

सू० का भा० । जिसमें स्थिर सुख हो वो आसन कहाताहै ॥४६ ॥

तद्यथापद्मासनं वीरासनं भद्रासनं स्वस्तिकं दण्डासनं सोपाश्रयं पर्य्यंकं क्रौञ्चनिषदनं हस्तिनिषदनमुष्ट्रनिषदनं समसंस्थानं स्थिरसुखं यथासुखं चेत्येवमादीनि ॥ ४६ ॥

भा० का प० । (तद्यथा) आसन भेद कहतेहैं (पद्मासनम्) पद्मासन (वीरासनम्) वीरासन (भद्रासनम्) भद्रासन (स्वस्तिक) स्वस्तिक (दण्डासनम्) दण्डासन इत्यादि ॥ ४६ ॥

भा० का भा । ये सब आसन हैं ॥ ४६ ॥

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥४७

सू का प० । (प्रयत्न शैथिल्यानन्त समापत्तिभ्याम्) प्रयत्न की शिथिलता और अनन्त ज्ञानसे ॥ ४७ ॥

सू का भा० । प्रयत्न शिथिलता और ज्ञान से आसन सिद्धि होती है ॥ ४७ ॥

भवतीतिवाक्यशेषःप्रयत्नोपरमात्सिद्ध्यत्यासनंयेननाङ्गमेजयोभवति अनंतेवासमापन्नं चित्तमासनं निवर्तयतीति ॥ ४७ ॥

भा का प० । (भवतीति वाक्यशेषः) होतेहैं (प्रयत्नो परमात्सिद्ध्यत्यासनं येन) प्रयत्नके उपरतसे सिद्ध होय आसन जिससे (न) नहीं (अङ्गमे जयो भवति) अङ्ग कम्पित नहि हों (अनन्ते व) अनन्तके समान आसनमापन्नम्) आसन किया (चित्तम्) चित्तको (आसन निवर्तयति) आसन निवर्त्तित करता है ॥ ४७ ॥

भा० का भा० । प्रयत्न के शिथिल होनेसे आसन सिद्ध होता है

और अङ्ग निश्चल होतेहैं एवं आसन से चित्तकी चञ्चलता क्षय हो जाती है ॥ ४७ ॥

तस्मिन्सतिश्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ ४८

सू० का प० । (तस्मिन्सति) स्थिर आसन हो जानेसे (श्वास प्रश्वासयोर्गति विच्छेदः) जो श्वास और प्रश्वास की गति अवरोध होता है (प्राणायामः) उसे प्राणायाम कहते हैं ॥ ४८ ॥

सू० का भा० । आसन स्थिर होनेसे जो प्राण की गतिका अवरोध होता है उसे प्रणायाम कहते हैं ॥ ४८ ॥

ततोद्वन्द्वानभिघातः शीष्णादिभिर्द्वन्द्वैरासनजयान्नाभिभूयते । सत्यासनजयेवाह्यस्य वायोराचमनं श्वासः कोष्ठस्य वायोर्निःसारणं प्रस्वासस्तयोर्गतिविच्छेद उभयाभावः प्रणायामः ॥ ४८

भा० का प० । (ततः) आसन स्थिर होनेके पश्चात् (द्वन्द्वानभिघातः) सुख दुःखका नाश होताहै (शीतउष्णादिभिर्द्वन्द्वैः) शीत और उष्णादि द्वन्द्वसे (आसनजयान्नभिभूयते) आसन की असिद्धि में यह दुःख देते हैं (सत्यासन जये) आसन सिद्ध होजानेपर (वायोराचमनम्) वायुका जो गृहण किया जाता है (श्वासः) उसे श्वास कहते हैं (कोष्ठस्य वा योनिस्सारणम् प्रश्वास) भींतर की वायुको बाहर निकालना है उसे प्रश्वास कहते हैं (तयोः उन दोनोंकी (गतिविच्छेदः) गतिका जो अवरोध है (उभयाभावः) दोनो का जो अभाव है (प्राणायामः) उसे प्राणाम कहते हैं ॥ ४८ ॥

भा० का भा० । जो मनुष्य आसन सिद्ध नहीं कर सकता उस को द्वन्द्व दुःख देते हैं और आसन सिद्ध होनेसे यह दुःख नहीं देतेहैं वायुका जो आचमन किया जाताहै उसे श्वास और जो कोष्ठकी वायुको बाहर निकाला जाता है उसे प्रश्वास कहते हैं और दोनों की गतिके अवरोध को प्राणायाम कहते हैं ॥ ४८ ॥

सतुबाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकाल संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥ ४९

सू० का प० । (सः) सो (तु) पुनः (बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिः) बाह्य और आभ्यन्त तथा वृत्तियों को स्तंभ करनेवाला (देशकाल संख्याभिः) देशकाल और ख्याभिओंसे (परिदृष्टः) सर्वतो दृष्ट (दीर्घसूक्ष्मः) दीर्घ सूक्ष्मः ॥ ४९ ॥

सू० का भा० । सो प्राणायाम तीन प्रकार का है १ बाह्य२ अभ्यन्तर ३ वृत्तिस्तम्भ कर ॥ ४९ ॥

यत्र प्रश्वासपूर्वको गत्यभावः स बाह्यः यत्रश्वासपूर्वको गत्यभावः स आभ्यन्तरः तृतीयस्तम्भवृत्तिर्यत्रो भयाभावः सकृत् प्रयत्नाद्भवति यथा तप्तन्यस्तमुपलेजलं सर्वतः सङ्कोचमापद्यते यथाद्वयोर्युगपद्गत्यभाव इति त्रयोप्येतेदेशेन परिदृष्टाः इयानस्य विषय देश इति कालेन परिदृष्टाः क्षणानामियत्तावधारणेना-वच्छिन्ना इत्यर्थः संख्याभिः परिदृष्टा एतावद्भिः श्वासप्रश्वासैः प्रथम उद्घातस्तद्वन्निगृहीतस्यै तावद्भिर्द्वितीय उद्घात एवं तृतीय

एवं मृदुरेवं मध्य एवं एतीव्र इति संख्यापरिदृष्टः सखल्वयमेव-
मभ्यस्तो दीर्घसूक्ष्मः ॥ ४९

भा० का प० । (यत्र) जहां (प्रश्वासपूर्वको गत्यभावः) प्रश्वासपूर्वक गतिका अभाव हो (सवाह्यः) सो वाह्य (यत्रश्वासपूर्वको गत्यभावः) जहां श्वास पूर्वक गतिका अभाव हो (स आभ्यन्तरः) सो आभ्यन्तर (तृतीयः) तीसरा (स्तम्भवृत्तिः) स्तम्भवृत्ति हैं (यत्रोभयाभावः) जहां दोनों का अभाव हो (सः) सो (सकृत्प्रयत्नात् भवति) सकृताभ्यास से होता है (यथा तप्तन्यस्तम्) जैसे डाला तप्त (जलम्) जल (उपले) उपलेये (सर्वतः सब तर्फसे (सङ्कोचमापद्यते) संकुचित हो जाता है (तथा) तैसे (तयोः) तिन मे (युगपद्गत्यभावः) सङ्गगतिका अभाव हो (इति) ऐसे (त्रयोप्येते) ये तीनो (देशेन परिदृष्टा) देशसे सर्वतो दृष्ट (इयानस्य विषयो देशः) येही इसका विषयहै इसे देश कहतेहैं (कालेन परिदृष्टाः) कालसे दृष्ट (क्षणानाम्) क्षणोंका (इयत्तावधारणेनावच्छिन्नामित्यर्थः) इतनाही धारणा काल है अर्थात् (संख्याभिः परिदृष्टः) इसका ये अर्थ है (एतावद्भिः) इतने (श्वास प्रश्वासैः) श्वास प्रश्वासोंसे (प्रथम उद्घातः) पहला उद्धत हैं (तावन्निगृहीतस्य) उतने ही ग्रहण किये हुवा (एतावद्भिः) इतने ही से (द्वितीय उद्घातः) दूसरा उद्घात हैं (एवं तृतीयः) ऐसे ही तृतीय (एवं मृदुः) ऐसे मृद (एवं मध्यः) ऐसेही मध्य (एवं तीव्र इति) ऐसे ही तीव्र ये (संख्यापरिदृष्टः) संख्या परिदृष्ट कहाता है (सः) सो (खलु) निश्चय से (मध्यस्तीव्रः) मध्यतीव्र (दीर्घ सूक्ष्मः) दीर्घ और सूक्ष्म ॥ ४९ ॥

भा० का भा० । जिसमे प्रश्वास वायुका गमन का अभाव हो सो वाह्य है जहां वायु के अन्तर्गमन का अभाव हो सो अभ्यन्तर है तीसरा वो प्राणायामहै जहां दोनो का स्तम्भ हो उसे स्तम्भवृत्ति कहैं तहां दृष्टांत हैं जैसे अग्नि में पड़े उपलेपर पानी डालने से संकुचित हो जाते हैं तैसे

ही इसमें दोनों का लक्ष्य हो जाता है सो अभ्यास किये हुए पुरुष से हो सकता है येही इसका विषय है इसे देश परिदृष्ट कहते हैं यही उसका लक्षण है इसको काल परिदृष्ट कहते हैं इतने श्वास प्रश्वास का प्रथम उ-तथा इतनेही का दूसरा इतने ही का तीसरा है ऐसेही मृदुमध्य तीव्रहै श्वास जहां ऐसा विचार हो उससे संख्या परिदृष्ट कहते हैं ॥ ४९ ॥

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपीचतुर्थः ॥ ५०

सू० का प० । (बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी) बाह्य विषय और आभ्यन्तर विषयोंका जिसमें परित्याग किया जाताहै,(चतुर्थः) वह चतुर्थः प्राणायाम है ॥ ५० ॥

सू० का भा० । जिससें बाह्य विषय और आभ्यंतर विषयोंका परित्याग हो वह चौथी प्राणायाम है ॥ ५० ॥

देशकाल संख्याभिर्बाह्यविषयः परिदृष्ट आक्षिप्तः तथाभ्यन्तर विषयः परिदृष्ट आक्षिप्त उभयथादीर्घं सूक्ष्मः तत्पूर्वको भूमिजयात्क्रमेणो भयोर्गत्य भावश्चतुर्थः प्राणायामस्तृतीयस्तु विषयानालोचितो गत्यभावः सकृदारब्ध एव देशकाल संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मश्चतुर्थस्तु श्वासप्रश्वासयोर्विषयावधारणात् क्रमेण भूमिजयादुभयाक्षेप पूर्वको गत्यभावश्चतुर्थः प्राणायाम इत्ययं विशेष इति ॥ ५०

भा० का प० । (देशकाल संख्याभिः) देश काल और संख्या के द्वारा (बाह्यविषयः) जो बाह्य विषय है (परिदृष्ट आक्षिप्तः) और

चारों ओर फैला है (तथा) ऐसेही (अभ्यन्तरविषयः) अभ्यन्तर विषय (परिदृष्ट आक्षिप्तः) अच्छे प्रकारसे देख कर त्यागा गया है (उभयथा) दोनो प्रकारसे (दीर्घसूक्ष्मः) दीर्घ और सूक्ष्म (तत्पूर्वकः) उसके युक्त (भूमिजयात्) भूमिकाओं को जीतकर (यत्क्रमेणोभयोर्गत्य भावः) जो क्रमसे दोनो की गतिका अभाव होता है वह चतुर्थ प्राणायामहै (प्राणायाम स्तृतीयस्तु) और प्राणयाम तीसरी तो (विषयानालोचितः) जिसका विषय विचारा नहीं गयाहै (गत्यभावः) उसका स्वरुप यह है कि जिसमें प्राणों की गति का अभाव होजाता है (सकृदारब्ध एव) एकवार आरम्भ करने ही से (देशकाल संख्याभिः) देश काल और संख्या के द्वारा (परिदृष्टः) देखा गया (दीर्घसूक्ष्मः) दीर्घसूक्ष्म है (चतुर्थस्तु) चौथा प्राणायाम वह है (श्वास प्रश्वासयोः) श्वास और प्रश्वास के (विषयावधारणात्) विषय को निर्धारित करनेसे (क्रमेण भूमिजयात्) क्रमसे भूमिकाके जयसे (उभयाक्षेप पूर्वकः) दोनोंके निरोध पूर्वक (गत्यभावश्चतुर्थः) जो गतिका निरोध किया जाता है वह चौथा प्रणायाम है ॥५०॥

भा० का भा० । चौथा प्राणायाम वहहै जो दीर्घ और सूक्ष्मसे भिन्न हो और जिसमें श्वास और प्रश्वास को गतिका अवरोध होजाय और क्रमसे जिसमें भूमिकाओंका जय हो जाय ॥ ५० ॥

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ ५१

सू० का प० । (ततः) प्राणायाम सिद्धिके अनन्तर (क्षीयते) नाश होताहै (प्रकाशावरणम्) ज्ञानका आच्छादन ॥ ५१ ॥

सू० का भा० । प्राणायाम सिद्धिके अनन्तर ज्ञानका आवरण मलक्षय हो जाता है ॥ ५१ ॥

प्राणायामानभ्यस्यतोस्य योगिनः क्षीयते विवेकज्ञानावरणीयं कर्मयत्तदाचक्षते महामोहमयेनेन्द्रजालेन प्रकाशशीलं

तत्त्वमावृत्य तदेवाकार्ये नियुङ्क्ते इति तदस्य प्रकाशावरणं कर्म संसारनिबन्धनं प्राणायामाभ्यासात् दुर्बलं भवति प्रतिक्षणञ्च क्षीयते तथाचोक्तं तपो न परं प्राणायामात्ततो विशुद्धिर्मलादीनां दीप्तिश्च ज्ञानस्येति ॥ ५१

भा० का प० । (प्राणायामानभ्यस्यतो योगिनः) प्राणायाम को अभ्यास करनेवाले योगिका (क्षीयते) नाश होता है (विवेकज्ञानावरणीयंकर्म) विवेक ज्ञानका आच्छादन अर्थात् जिससे ज्ञान ढका है वह कर्म (यत्तदाचक्षते) जो कहा जाताहैं (महामोहमयेन) महामोहमय (इन्द्रजालेन) इन्द्रजालके द्वारा (प्रकाशशीलम्) प्रकाश शील (सत्वम्) सत्वको (आवृत्य) आवरण करके (तदेव) वोही आवरण (अकार्य्ये प्रयुङ्क्ते) अकार्य में प्रयुक्त होता है (तत्) वोही (अस्य) योगिका (प्रकाशावरणं कर्म) प्रकाशका आवरण करनेवाला कर्म (संसार निबन्धनम्) संसारका निबन्धन (प्राणायामाभ्यासात्) प्राणायामोंके अभ्याससे (दुर्बलं भवति) दुर्बल होता है (प्रतिक्षणञ्च क्षीयते) और प्रतिक्षण क्षीण होताहै (तथाचोक्तम्) तैसाही अन्यत्र भी कहा है (तपः) तप (न) नहीं (परम्) पर प्राणायामात्) या प्राणायामसे (ततः) तिस से (विशुद्धिः) शुद्धि (मलादीनाम्) मलादिकी (दीप्तिः) दीप्ति (च) और (ज्ञानस्य) ज्ञानकी ॥ ५१ ॥

भा० का भा० । प्राणामायोंका अभ्यास करनेवाले योगिका विवेक ज्ञानको आच्छादन करनेवाला कर्म क्षीण होताहै जो कर्म महामोहमय इन्द्रजालिकसे प्रकाशयुक्त आच्छादित कहाता हैं सो इनको अकार्य्य में प्रयुक्त करता है प्रणायाम करनेसे वो ही कर्म क्षीण होताहैं तैसाही अन्यत्र भी कहाहै कि प्राणायामसे उत्कृष्ट तपनहीं है क्योंकि उससे मलादि की शुद्धि और ज्ञानका प्रकाश होताहै ॥ ५१ ॥

किञ्चधारणासुचयोग्यतामनसः ॥५२

सू० का प० । (किञ्चधारणासु) और धारणाओं में (योग्यता) योग्यता (मनसः) मनकी ॥ ५२ ॥

सू० का भा० । और प्राणायाम से धारणाओं में मनको योग्यता होती हैं ॥ ५२ ॥

प्राणायामाभ्यासादेव प्रच्छर्दनविधारणाभ्यांवा प्राणस्येति वचनात् ॥ ५२ ॥ अथकः प्रत्याहारः ॥

भा० का प० । (प्राणायामाभ्यासात्) प्राणायामके अभ्यास से (एव) ही (प्रच्छर्दनविधारणाभ्याम्) वहिर्गमन और धारणासे (प्राणस्येति वचनात्) प्राणके इस वचनसे ॥ ५२ ॥

भा० का भा० । श्वासका वहिर्गमन और धारण पर प्राणायाम से ऐसा लिखने से ॥ ५२ ॥

स्वविषयासंप्रयोगेचित्तस्यस्वरूपानुकारइवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५३

सू० का प० । (स्वविषयासम्प्रयोगः) अपने विषयका जो असम्प्रयोग अर्थात् अनुष्ठानकी नकरना (चित्तस्य स्वरूपानुकार इन्द्रियाणाम्) चित्तके स्वरूप को अनुकरणके समान इन्द्रियों का भाव जिस में होजाय (प्रत्याहारः) वह प्रत्याहार कहाता है ॥ १३ ॥

सू० का भा० । जिसमें जित्त इन्द्रियोंके सहित अपने विषय को त्याग कर केवल ध्यानावस्थित होजाय उसे प्रत्याहार कहते हैं ॥ ५३ ॥

स्वविषयसंप्रयोगाभावे चित्तस्वरूपानुकार इवेति चित्तनि-

रोधेचित्तवन्निरुद्धानीन्द्रियाणि न तथेन्द्रियजय वदुपायान्तरम-पेक्षन्ते यथा मधुकरराजं मक्षिका उत्पतन्तमनुतत्तन्तिनिवि-शमानमनुनिविशन्तितथेन्द्रियाणि चित्तनिरोधेनिरुद्धानीतेप्रष-पप्रतप्राहार: ॥ ५३

भा० का प० । (स्वविषय संप्रयोगाभावे) अपने विषय के अभाव में (चित्तस्वरूपानुकार इव) चित्तस्वरूपानुकार का निरोध हो जाय (चित्तवन्निरुद्धानीन्द्रियाणि) चित्तके समान जिसमें इन्द्रियों का निरोध हो जाय (न तथेन्द्रिय वहुपायान्तरमपेक्षते) इन्द्रियोंके जीतने में जब दूसरे उपायों की अपेक्षा न रहे (तथा) जैसे (मधुकरराजम्) राणी मक्खी के अनुसार (उत्पतन्तम्) जब वह उड़ती है तब सब मक्खी उड़ती हैं (निविशमान मनुविशंति) जब वह छातेमें प्रविष्ठ होती है तब सब मक्खियां भी वठ जाती हैं (तथेन्द्रियाणि) इसही प्रकारसे इन्द्रियां भी (चित्तनिरोधेनिरुद्धानि) चित्तके निरोध होनेसे निरुद्ध होजाती हैं (इतिप्रष प्रतप्राहार:) यह प्रतप्राहार है ॥ ५३ ॥

भा० का भा० । जब चित्त विषयकोंमे चिन्तनसे उपरत होकर स्वस्थ हो जाताहै तब इन्द्रिया भी चञ्चलता रहित होजाती हैं और उस शान्त अवस्थाको प्रतप्राहार कहते हैं ॥ ५३ ॥

तत:परमावश्यतेन्द्रियाणाम् ॥५४॥

सू० का प० । (तत:) उस प्रतप्राहारसे (परमावश्यता) अतयन्त वशमें होजाना (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियोंका ॥ ५४ ॥

सू० का भा० । प्रतप्राहारसे इन्द्रियां अतंयत वश होती हैं ॥ ५४ ॥

शब्दादिष्व व्यसनमिन्द्रिय जय इति केचित्शक्तिर्व्यसनं व्यस्यतेएनं श्रेयसइति अविरुद्धा प्रतिपत्तिन्र्यांय्याशब्दादि संप्रयोगः स्वेच्छयेतान्ये रागद्वेषाभावेसुखदुःखशून्यं शब्दादिज्ञानमिन्द्रिय जय इति केचित् चित्तैकाग्र्यादप्रतिपत्तिरेवेतिजैगीषव्यः ततश्च परमात्वियं वश्यता यच्चित्त निरोधेनिरुद्धानींद्रियाणि नेतरेन्द्रिय जयवत्प्रयत्नकृतमुपायान्तरमपेक्षन्ते योगिन इति ॥ ५४

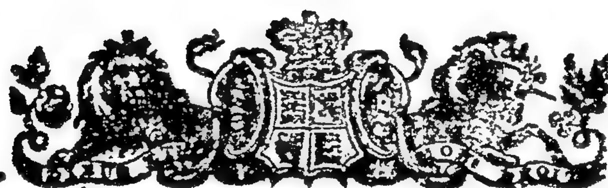
भा० का प० । (शब्दादिष्वव्यसनम्) शब्द स्पर्शादि विषयों में विरक्ति (इन्द्रियजयः) इन्द्रियोंका जीतना कहाता है (ईति केचित्) ऐसा कोई२ भाष्यकार कहते हैं (शक्तिर्व्यसनम्) कोई विषयवती इन्द्रिह शक्तिको व्यसन कहते हैं (व्यस्यतेएनं श्रेयसे) प्रतयाहार योगीको कल्याणसे युक्त करती है (अविरुद्धा प्रतिपत्तिन्र्यांय्या) समान ज्ञान युक्त है (शब्दादिं संप्रयोगस्वेच्छयेतान्ये) शब्दादि विषयोंका अनुष्ठान स्वाभाविकही होता है यह भी किसी२ का मन्तव्य है (रागद्वेषाभावे) राग द्वेषके अभावमें (सुख दुःखशून्यम्) सुख और दुःखसे शून्य (शब्दादि ज्ञातम्) शब्दादि ज्ञान (इन्द्रियः) इन्द्रिय जय (इति केचित्) ऐसा कोई २ कहते हैं (चित्तै काग्यात्) चित्तकी एकाग्रतासे (अप्रतिपत्तिः) अनिश्चय (इति जैगीषव्यः) ऐसा जैगीषव्य ऋषिका मत है (ततश्चपरमात्वियंवश्यता) तवये परमवश्यता (यच्चित्तनिरोधे) जो चित्तके निरोधमें (निरूद्धानीद्रियाणि) निरुद्ध होतीहैं इन्द्रिया (न) नही (इतरेन्द्रिय जयवत्) और इन्द्रिय जयके समान (प्रयत्नकृतम्) यत्नसे किया हुवा (उपायांतरम्) उपायांतर (अपेक्षते) अपेक्षा करते हैं (योगिनं) योगी को ॥ ५४ ॥

भा॰ का भा॰। शब्दादि विषयों में विरक्ति होनाही इन्द्रियोंका जीतना कहाताहै ऐसा कोई मुनि कहते हैं इन्द्रिय विषयवती शक्ति व्यसन कहाती है प्रत्याहार योगिको कल्याणमें नियुक्त करती है शब्दादि विषयों का अनुष्ठान स्वाभाविक होताहै ये किसीका मत हैं पूर्वोक्त राग द्वेषके अभावसे सुख दुःख शून्य होकर शब्दादिका मत है चित्तको एकाग्रतासे शब्दादि बाह्यविषयोंसे अंतर विषय होनेसे अनिश्चय होनाही इन्द्रिय जय है ये जैगीषव्य महर्षि कामत है तिज इन्द्रिय जयसे जो चित्तके निरोधमें इन्द्रिय निरोध होताहै उससे अन्य यत्न योगीलोग नहीं ढूंढते अथ। उसही से योगसिद्ध होजाती है॥ ५४॥

इति द्वितीयपादः समाप्तः।



Printed by B. K. Sarma at the "Arya-Varta Press"
52 Raja's Kattara, Burabazar Calcutta.



देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥१॥

सू० का प० (देशबन्धः) नाभि आदि स्थानोंमें स्थिर करना (चित्तस्य) चित्तका (धारणा) धारणा कहलाती है ॥ १

सू० का भा० चित्तको नाभि आदि स्थानोंमें स्थिर करनेको धारणा कहते हैं ॥ १

नाभिचक्रे हृदयपुण्डरीके मूर्ध्नि ज्योतिषि नासिकाग्रे जिह्वाग्रइत्येवमादिषु देशेषु बाह्येवाविषयेचित्तस्य वृत्तिमात्रेणबन्ध इति बन्धो धारणा ॥ १ ॥

भा० का प० (नाभिचक्रे) नाभिस्थान में (हृदय पुण्डरीके) हृदयकमल में (मूर्ध्नि) कपालमें (ज्योतिषि) भ्रू मध्यमें (नासिकाग्रे) नासिकाके अग्रभाग में (जिह्वाग्रे) जिह्वाके अग्रभागमें (इत्येवमादिषु देशेषु) इत्यादि स्थानों में (बाह्ये वा विषये) अथवा बाह्यविषयों में (चित्तस्य) चित्तका (वृत्तिमात्रेण बन्धः) वृत्तियोंके द्वारा स्थिर होना (इतिबन्धो धारणा) यह स्थिर होना धारणा कहलाती है ॥ १

भा० का भा० नाभि आदि अन्तर्देशोंमें वा बाह्यदेशोंमें वृत्तिके द्वारा जो चित्तका स्थिर होना धारणा कहलाती है ॥ १

तत्र प्रत्ययैकतानताध्यानम् ॥२॥

सू० का प० (तत्र) नाभि आदि स्थानोंमें (प्रत्ययैकतानता) ज्ञानकी स्थिरता जो अन्य उपायोंसे प्राप्त न होती हो (ध्यानम्) ध्यान कहाता है ॥ २

सू० का भा० नाभि आदि देशोंमें जो ध्येयका ज्ञान होता है उसे ध्यान कहते हैं ॥ २

तस्मिन् देशेध्येयालम्बनस्य प्रत्ययैकतानतासदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम् ॥ २ ॥

भा॰ का प॰ (तस्मिन् देशे) उन नाभि आदि स्थानोंमें (ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकता) ध्येयके अवलम्बके ज्ञानकी स्थिरता (न तादृश: प्रवाह:) वैसे ज्ञानका प्रवाह (प्रत्ययान्तरेणापरामृष्ट:) और ज्ञानोंसे जो सम्बन्ध नष्ट होता है (ध्यानम्) उसे ध्यान कहते हैं ॥ २

भा॰ का भा॰ नाभि आदि स्थानोंमें ध्येयके अवलम्बन ज्ञानकी जो स्थिरता और उसमें दूसरे ज्ञानका अभाव हो उसे ध्यान कहते हैं ॥ २

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिवस माधि: ॥३॥

सू॰ का प॰ (तदेव) वही ध्यान (अर्थमात्रनिर्भासम्) अर्थमात्र संस्कार मात्र रहजाय (स्वरूप शून्यमिव) स्वरूपशून्यसा प्रतीत हो (समाधि:) उसे समाधि कहते हैं ॥ ३

सू॰ का भा॰ जिसमें ध्यानका संस्कार मात्र रह जाय और स्वरूप शून्यके समान हो जाय उसे समाधि कहते हैं ॥ ३

इदमत्रवोध्यं ध्यातृध्येयध्यानकलनावत् ध्यानं तद्रहितं समाधिरिति ध्यानसमाध्योर्विभाग: अस्यच समाधिरूपस्यांगस्यांगियोगसंप्रज्ञातयोगादयं भेदोयदत्रचिन्तारूपतमा नि:शेषतोध्येयस्वरूपं न भासते अंगिनितुसं प्रज्ञाते साक्षात्कारोदये समाध्यविषया अपि विषयाभासन्तइति तथाच साक्षात्कारयुक्तैकाग्राकालेसम्प्रज्ञातयोग: अन्यदातु समाधिमात्रमिति विभाग: समाधि: ध्यानमेवध्येयाकारनिर्भासं प्रत्ययात्मकेन स्वरूपेणशून्यमिव यदा भवति ध्येयस्वभावावेशात्तदासमाधिरित्युच्यते ॥३

भा॰ का प॰ (इदमत्रबोध्यम्) एसा यहां जानना चाहिये (ध्यातृध्येयध्यानकलनावत् ध्यानम्) ध्यान करनेवाला और जिसका ध्यान किया

जाय तथा ध्यान इन तीनोंका प्रभेद जिसमें प्रतीतहो वह ध्यान कहाता है (तद्रहितं समाधिः) उस भेद रहितको समाधि कहते हैं (इति ध्यान समाध्योर्विभागः) यही ध्यान और समाधिमें भेद है (अस्य च समाधिरूप स्याङ्गियोग संप्रज्ञातयोगाद्यं भेदः) इस समाधिरूप योगका अंगांगी योग सम्बन्ध है, और संप्रात योगसे इसका यही भेद है (यदत्र चिन्तारूपतमा निःशेषतो ध्येयरूपं न भासते) अंगांगी योगमें अत्यन्त चिन्ता होनेसे ध्येय का स्वरूप प्रकाशित नहीं होता (संप्रज्ञाते) संप्रज्ञानमें (साक्षात्कारोदये समाध्यविषया अपि विषयाभासन्ते) साक्षात्कारके उदय होनेसे समाधिके अगम्य विषयभी प्रतीति होती हैं (तथाच साक्षात्कारयुतैकाग्रकाले संप्रज्ञातयोगः) साक्षात्कारसे युक्त एकाग्र अवस्थामें संप्रज्ञातयोग होता हैं (अन्यदातु) और समयमें तो (समाधिमात्रमितिविभागः) समाधियोग होता है यही विभाग है (समाधिध्यानमेव ध्येयाकारनिर्भासम्) समाधि ध्यानही ध्येयके आकारमें प्रतीत होने लगता हैं (प्रत्ययात्मकेन स्वरूपेच शून्यमेव यदा भवति) ज्ञान स्वरूपसे शून्यके समान हो जाता है (ध्येय स्वभावावेशात्तदा समाधिरित्युच्यते) ध्यातामें जब ध्येयके स्वभावका आवेश हो जाता है तब समाधि होती है ॥ ३

भा० का भा० पूर्वलिखे लक्षणोंमें संदेह होता है कि ध्यान और समाधिमें क्या भेद हैं इसका उत्तर यह है कि ध्यानमें ध्यातृ ध्येय ध्यानकी त्रिपुटि का ज्ञान बना रहता है किन्तु समाधिमें वह नहीं रहता अब यह संदेह हुआ कि पूर्वलिखित संप्रज्ञात योग और समाधिमें क्या प्रभेद हैं इसका उत्तर यह है कि समाधिमें योगी अधिक चिन्तायुक्त होता हैं इससे ध्येयका स्वरूपभाव नहीं होता किन्तु संप्रज्ञात योगमें साक्षात्कार के उदय होनेसे समाधि में जो विषय ज्ञात नहीं होते वह विषयभी प्रकाशित हो जाते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि साक्षात्कारयुक्त एकाग्र अवस्थामें संप्रज्ञात योग और अन्य समयमें समाधि योग होता हैं अर्थात् समाधिका लक्षण यही है कि ध्यानमें ध्येयके स्वभावका आवेश हो जाने को समाधि सिद्धि कहते हैं ॥ ३

त्रयमेकत्र संयमः ॥४॥

सू॰ का प॰ (त्रयम्) तीनों (एकत्र) एक जगहमें होना (संयमः) संयम कहाता है ॥ ४

सू॰ का भा॰ ध्यान धारणा समाधि इन तीनोंके एकत्र होनेको संयम कहते हैं ॥ ४

तदेतत् धारणाध्यानसमाधित्रयमेकत्रसंयमः एकविषयाणि त्रीणिसाधनानि संयमइत्युच्यते तदस्य त्रयस्य तान्त्रिकीपरिभाषासंयम इति ॥४॥

भा॰ का प॰ (तदेतत्) सो यह (ध्यानधारणा समाधित्रयम्) ध्यान धारणा समाधि तीनों (एकत्रसंयमः) एकत्र होनेसे संयम कहलाता है (एकविषयाणि त्रीणि साधनानि संयम इत्युच्यते) एकविषयवाले तीन साधनोंको संयम कहते हैं (तदस्य त्रयस्य तान्त्रिकी परिभाषा संयम इति) सो इस शास्त्रमें इन तीनोंकी संयम संज्ञा है ॥ ४

भा॰ का भा॰ स्पष्ट है ॥ ४

तज्जयात् प्रज्ञालोकः ॥५॥

सू॰ का प॰ (तज्जयात्) उस संयमके जयसे (प्रज्ञालोकः) बुद्धिका प्रकाश होता है ॥ ५

सू॰ का भा॰ संयमके जयसे बुद्धिका प्रकाश होता है ॥ ५

तस्य संयमस्य जयात्समाधिप्रज्ञायाभवत्यालोको यथायथा संयमः स्थिरपदोभवति तथातथा ईश्वरप्रसादात् समाधिप्रज्ञा विशारदीभवति ॥५॥

भा॰ का प॰ (तस्य संयमस्य जयात्) उस संयमके जीतनेसे (समाधि प्रज्ञायाभवत्यालोकः) समाधिविषयिणी बुद्धिका प्रकाश होता है (यथा यथा संयमः स्थिरपदो भवति) जैसे२ संयम स्थिर होता है (तथा तथा) तैसे२ (ईश्वरप्रसादात्) ईश्वरकी कृपासे (समाधि प्रज्ञाविशारदी भवति) समाधि विषयिणी बुद्धि निपुण होती जाती है ॥ ५

भा० का भा० जैसे२ संयम स्थिर होता जाता है वैसे समाधि विषयिणी बुद्धि निर्मल होती जाती है ॥ ५

तस्य भूमिषु विनियोगः ॥६॥

सू० का प० (तस्य) उस संयमका (भूमिषु विनियोगः) योगकी भूमिओंमें स्थिरताकी जाती है ॥ ६

सू० का भा० संयमकी स्थिरता योगकी भूमियोंमें क्रमसे करनी चाहिये ॥ ६

तस्य संयमस्य जितभूमेर्यानन्तराभूमिस्तत्र विनियोगः नह्यजिताधरभूमिरनन्तरभूमिं विलंघ्यप्रान्तभूमिषु संयमं लभतेतदभावाच्च कुतस्तस्य प्रज्ञालोकः ईश्वरप्रसादाज्जितोत्तरभूमिकस्य च नाधरभूमिषु परचित्तज्ञानादिषु संयमोयुक्तः कस्मात् तदर्थस्यान्यतएवावगतत्वात् भूमेरस्याइयमनन्तराभूमिरित्यत्र योग एवोपाध्यायः कथमेवमुक्तं योगेनयोगोज्ञातव्योयोगोयोगात्प्रवर्त्तते योऽप्रमत्तस्तु योगेनसयोगेरमतेचिरमिति ॥६॥

भा० का प० (तस्य संयमस्य) पूर्वोक्त संयमका (जितभूमेर्यानन्तराभूमिः) जीती हुई भूमिके अनन्तर जो भूमि है (तत्र विनियोगः) उसमें स्थापन किया जाता है (नह्यजिताधरभूमिरनन्तरभूमिं विलंघ्यप्रान्तभूमिषु संयमंलभते) जिस सिढीको नहीं जीता है उसकी दूसरी सिढ़ीको विना उल्लङ्घन किये प्रान्तभूमिमें संयम प्राप्त नहीं होता (तदभावाच्च कुतस्तस्य प्रज्ञालोकः) विना प्रान्तभूमिमें संयम किये बुद्धिका प्रकाश कहां (ईश्वर प्रसादाज्जितोत्तरभूमिकस्य च नाधरभूमिषु परचितज्ञानादिषु संयमोयुक्तः) और जिस योगीने ईश्वरकी कृपासे उत्तरभूमिको जीता है उसका नीच भूमि और परीचित ज्ञानमें संयम करना युक्त नहीं है (कस्मात्) क्योंकि (तदर्थस्यान्यत एवावगतत्वात्) उन विषयोंको योगी स्वयंही जानता है (भूमेरस्याइयमनन्तराभूमिः) पहिली भूमिके पश्चात् यह भूमि है (इत्यत्र योगएवोपाध्यायः) यहां योगही बतानेवाला है (कथमेवमुक्तं) तो यह कैसे कहा है (योगोयोगेन ज्ञातव्यो योगोयोगात्प्रवर्त्तते । योऽप्रमत्तस्तु योगेन

सयोगेरमते चिरम्) कि योगको योगसे जानना चाहिये योगसे योग प्राप्तहोता है जो योगसे असक्त है वही योगमें चिरकाल तक रमण करता है॥६

भा० का भा० संयमको योगकी सीढ़ियोंके द्वारा सिद्ध करे अर्थात् क्रमक्रमसे उसमें प्रकार बढ़ाता जाय उन सीढ़ियोंको योगभूमि कहते हैं विना प्रथम भूमिके सिद्ध किये द्वितीयमें कोई नहीं जासक्ता ईश्वरकी कृपासे जिसको उत्तर भूमियोंमें संयम प्राप्त हुआ है उन्हें अधो भूमिमें संयम करनेकी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि भूमियोंका परिज्ञानभी योगसे होता है इसीवास्ते अन्यत्रभी कहा गया है कि योगसे योग जाना जाता है योगसे योग प्रवृत्त होता है जो योगमें प्रमत्त रहता है वही योगमें चिरकाल तक आनन्दमें रहता है ॥ ६

त्रयमन्तरङ्गम्पूर्वेभ्यः ॥७॥

सू० का प० (त्रयम्) ध्यानधारणा समाधि (अन्तरंगं) अन्तरंग है (पूर्वेभ्यः) पहिले यमादिकों से ॥ ७

सू० का भा० यमादिकोंकी अपेक्षा ध्यान धारणा समाधिसे अन्तरंग है ॥ ७

तदेतद्धारणाध्यानसमाधित्रयमन्तरंगं सम्प्रज्ञातस्य समाधेः पूर्वेभ्योयमादिभ्यः पञ्चभ्यः साधनेभ्य इति ॥७॥

भा० का प० (तदेतद्धारणा ध्यानसमाधित्रयम्) सो यह ध्यान धारणा समाधि तीनों (अन्तरंगं) अन्तरंग हैं (संप्रज्ञातस्य समाधेः) संप्रज्ञात समाधिके साधन (पूर्वेभ्यो यमादिभ्यः पञ्चभ्यः साधनेभ्य इति) पूर्वोक्त यमादिक पांच साधनोंसे ॥ ७

भा० का भा० ध्यान धारण समाधि यह तीनो पूर्व कहे संप्रज्ञात योगके यमादि पांच साधनोंसे अन्तरंग हैं अर्थात् इनसे प्रत्यक्ष योगकी सिद्धि होती है ॥ ७

तदपि वहिरङ्गन्निर्बीजस्य ॥८॥

सू० का प० (तदपि) यह ध्यान धारणादिकभी (वहिरंगम्) वहिरंग साधन हैं (निर्बीजस्य) निर्बीज समाधिके ॥ ८

सू० का भा० निर्बीजं ध्यानादिकभी वहिरंग हैं ॥ ८

तदप्यन्तरङ्गसाधनत्रयन्निर्बीजस्य योगस्य वहिरंगम्भवति कस्मात्तदभावे भावादिति ॥८॥ अथ निरोधचित्तक्षणेषु चलंगुणवृत्तमिति कीदृशस्तदाचित् परिणामः ।

भा० का प० (तदप्यन्तरं साधनत्रयं) पूर्वोक्त तीनों अन्तरंग साधन (निर्बीजस्य योगस्य वहिरंगं भवति) निर्बीज योगके वहिरंग होते हैं (कस्मात्) क्योंकि (तदभावे भावात्) उनके विनाभी निर्बीज योग होता है ॥ ८

भा० का भा० स्पष्टम् ॥ ८

व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥९॥

सू० का प० (व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोः) चञ्चलता और एकाग्रताके संस्कारोंका (अभिभवप्रादुर्भावौ) जो प्रकट होना और गुप्त होना (निरोधक्षणचित्तान्वयी निरोधपरिणामः) निरोध एकक्षणमें जो चित्तका परिणाम उसे निरोध परिणाम कहते हैं ॥ ९

सू० का भा० क्षिप्तादिक जो चित्तकी चञ्चलता और निरोध वृत्तियोंके जो संस्कार उन संस्कारोंका जब प्रादुर्भाव और तिरो भाव होता है उस क्षणमें निरोधके अनुसार जो चित्तका परिणाम होता है उसे निरोध परिणाम कहते हैं ॥ ९

व्युत्थानसंस्काराश्चित्तधर्मा: नतेप्रत्ययात्मकाइति प्रत्ययनिरोधेन निरुद्धानिरोधसंस्कारा अपि चित्तधर्मास्तयोरभिभवप्रादुर्भावौ व्युत्थानसंस्काराहीयन्ते निरोधसंस्कारा आधीयन्ते निरोधक्षणं चित्तं मत्वेति तदेकस्य चित्तस्य प्रतिक्षणमिदं संस्कान्यथात्वं निरोधपरिणामस्तदासंस्कारशेषं चित्तमिति निरोधसमाधौ व्याख्यातव्यम् ॥९॥

भा० का प० (व्युत्थानसंस्काराश्चित्तधर्मा:) व्युत्थानादिसंस्कार जो चित्तके धर्म हैं (नते प्रत्ययात्मका:) वह ज्ञानात्मक नहीं होते (प्रत्ययनिरोधेन निरुद्धा) ज्ञानके निरोधसे रुक जाते हैं अर्थात् परिणामी हैं (निरोध संस्कारा अपि चित्तधर्मा) निरोधसंस्कारभी चित्तके धर्म हैं (तयोरभिभवप्रादुर्भावौ) वे जब गुप्त वा प्रकट होते है (व्युत्थान संस्काराहीयन्ते) तब व्युत्थान नष्ट हो जाते हैं (निरोध संस्कारा आधीयन्ते) और निरोध संस्कार धारण किये जाते हैं (निरोधक्षणं चित्तं मत्वेति) निरोधका अनुयायी चित्तको मानकर (तदेकस्य चित्तस्य प्रतिक्षणमिदं संस्कारान्यथात्वं निरोध परिणाम:) उस एकचित्तका प्रतिक्षण संस्कारका उलटा पलटा होना निरोधका परिणाम हैं (तदासंस्कारशेषं चित्तमिति निरोध समाधौ व्याख्यातम्) उस समय चित्तसंस्कार शेष है यह निरोध समाधिमें चित्तका व्याख्यान किया गया ॥ ९

भा० का भा० व्युत्थान संस्कार और निरोध संस्कारयह दोनों चित्तके धर्म हैं व्युत्थान संस्कार अज्ञानकृत होता है जिस समय निरोध संस्कारोंका उदय होता है उस समय व्युत्थानसंस्कार अस्त हो जाते हैं निरोध क्षणमें जो चित्तका परिणाम होता है उसी संस्कारशेष चित्तको निरोध संस्कृत चित्त कहते हैं ॥ ९

तस्यप्रशांतवाहितासंस्कारात् ॥ १० ॥

सू० का प० (संस्कारात्) उत्तम संस्कारोंसे (तस्य) चित्तकी (प्रशान्तवाहिता) शान्त प्रवाह होता है।

सू० का भा० उत्तम संस्कारोंसे चित्तका शांत प्रवाह होताहै।

निरोध संस्काराम्निरोध संस्काराभ्यास पाटवापेक्षा प्रशान्त वाहिता चित्तस्य भवति तत्संस्कारामाद्ये व्युत्थान धर्मिणा संस्कारेण निरोधधर्मः संस्कारोऽभिभूयत इति ॥ १० ॥

भा० का प० । (निरोध संस्कारात्) निरोध करनेवाले संस्कारसे (निरोध संस्काराभ्यास पाटवापेक्षा) निरोध करनेवाले संस्कारोंके अभ्यास पटुता अर्थात् चञ्चलताकी अपेक्षा (प्रशान्त वाहिताचित्तस्य भवति) चित्तकी प्रशान्त वाहिता होती है (तत्संस्कारा) प्रशान्त वाहिताके संस्कार (आद्ये) प्रथमावस्थामें (व्युत्थान धर्म्मिणा संस्कारेण) चञ्चलताके संस्कारोंके द्वारा (निरोध धर्म्मस्संस्कारोभि भूयते) निरोध धर्म्मवाला संस्कार तिरस्कृत अर्थात् दबा हुआ रहता है।

भा० का भा० । चित्तकी वृत्तिओंको निरोध करनेवाले संस्कारके अभ्याससे चित्तकी प्रशान्तवाहिता अर्थात् निर्म्मल स्थिरता होतीहै और उसकी पूर्व चित्तमें चञ्चलता रहती है।

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौचित्तस्यसमाधिपरिणामः ॥ ११ ॥

सू० का प० । (सर्वार्थतैकाग्रतयोः) सर्वार्थता अर्थात् अनेक विषयों

के विचारसे चञ्चल रहना और एकाग्रता का जो (क्षयोदयौ) क्षय और उदय (चित्तस्य समाधि परिणामः) वह चित्तकी समाधिका परिणाम अर्थात् अन्तदशा है।

सू० का भा०। चित्तकी सर्वार्थताका क्षय और एकाग्रताका जो उदय है वह चित्तकी समाधिका परिणाम है।

सर्वार्थता चित्तधर्मः एकाग्रताचित्तधर्मः सर्वार्थतायाः क्षयन्तिरोभाव इत्यर्थः एकाग्रताया उदय आविर्भाव इत्यर्थः तयोर्धर्मित्वे नानुगतं चित्तं तदिदं चित्तमपायोपजननयोः स्वात्मभूतयोर्द्धर्मयोरनुगतं समाधीयते सचित्तस्य समाधिपरिणामः॥ ११

भा० का प०। (सर्वार्थता चित्तधर्म्मः) सर्वार्थता भी चित्तका गुण है (एकाग्रता चित्तधर्म्मः) और एकाग्रता भी चित्तका धर्म्म है (सर्वार्थतायाः क्षयस्तिरोभाव इत्यर्थः) सर्वार्थताका क्षय अर्थात् गुप्त होजाना (एकाग्रताया उदय आविर्भाव इत्यर्थः) एकाग्रताका उदय अर्थात् प्रकट होना (तयोर्धर्म्मित्वे नानुगतं चित्तम्) इन धर्म्मोंसे युक्त चित्त है (तदिदं चित्तम्) पूर्वोक्त चित्त (अपायोपजनयोः स्वात्मभूतयोर्द्धर्म्मयोः) अपाय अर्थात् नष्ट और उपजन अर्थात् पुनः उत्पन्न होना तद्रूप दो धर्म्मों में (अनुगतम्) प्राप्त हुआ (समाधीयते) स्थिर होता है (सचित्तस्य समाधि परिणामः) वह चित्तकी समाधिका परिणाम है॥ ११॥

भा० का भा०। सर्वार्थता और एकाग्रता वा चित्त की समाधिका परिणाम है। ११।

शांतोदितौतुल्यप्रत्ययौचित्तस्यैकाग्रता

परिणामः ॥ १२ ॥

सू० का प० । (शान्तोदितौ) शान्त और उदित (तुल्य प्रत्ययौचित्तस्य) चित्तके समान ज्ञान हैं (एकाग्रता परिणामः) और एकाग्रता परिणाम है ॥ १२ ॥

सू० का भा० । शान्त प्रत्यय और उदित प्रत्यय चित्तके समान ज्ञान है किन्तु एकाग्रता परिणाम है ॥ १२ ॥

समाहितचित्तस्य पूर्वप्रत्ययः शांतउत्तरस्तत्सदृश उदितः समाधि चित्तमुभयोरनुगतं पुनस्तथैवाऽसमाधिभ्रंशादिति सखल्वयन्धर्मिणश्चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ॥ १२

भा० का प० । (समाहित चित्तस्य) जिस योगीका चित्त सावधान हो गया है (पूर्व प्रत्ययः) उसका जो प्रथम ज्ञान है (शान्तः) उसे शान्त प्रत्यय कहते है (उत्तरस्तत्सदृश उदितः) ऐसेही उत्तर ज्ञानको उदित प्रत्यय कहते हैं (समाधिचित्तमुभयोरनु गतम्) समाधिस्थ चित्त जब दोनो प्रत्ययोंके युक्त होता है (पुनस्तथैवा समाधि भ्रंशादिति) समाधि भ्रष्ट होनेसे फिर वैसाही हो जाताहैं (सखल्वयम् धर्म्मिणश्चितैस्यैकाग्रता) उस उक्त धर्म्मवाले चित्तकी जो एकाग्रता है (परिणामः) उसे परिणाम कहते हैं ॥ १२ ॥

भा० का भा० । चित्तके दो गुण हैं एक शान्त प्रत्यय और दूसरा उदित प्रत्यय जब मनुष्य इन दोनो गुणोंसे अनुगत होता है तब इसके चित्तकी एकाग्रता होती है और वही समाधिका परिणाम है ! १२ ।

एतेनभूतेन्द्रियेषुधर्मलक्षणावस्थापरिणा

भाव्याख्याता: ॥ १३ ॥

सू० का० प०। (एतेन) पूर्व सूत्रोक्त प्रकारसे (भूतेन्द्रियेषु) इन्द्रियों में (धर्मलक्षणावस्था परिणामा व्याख्याताः) धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम कहे। १३।

सू० का० भा०। पूर्वोक्त चित्त परिणामके कथनसे इन्द्रियों में जो धर्म परिणाण लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम होते हैं उनका कथन भी समझना योग्य है। १३।

एतेन पूर्वोक्तेन चित्तपरिणामेन धर्मलक्षणावस्था रूपेण भूतेन्द्रियेषुधर्मपरिणामो लक्षणपरिणामोवस्थापरिणामश्चोक्तो वेदितव्यः तत्र व्युत्थान निरोधयोर्धर्मयोरभिभव प्रादुर्भावौ धर्मिणि धर्म परिणामो लक्षण परिणामश्च निरोधस्त्रिलक्षण स्त्रिभिरध्वभिर्युक्तः सखल्वनागत लक्षणमध्वानं प्रथमं हित्वा धर्मत्वमनतिक्रांतोवर्तमानं लक्षणं प्रतिपन्नः यत्रास्य स्वरूपेणा भिव्यक्तिरेषोस्य द्वितीयोध्वा नचातीतानागताभ्यां लक्षणाभ्यां वियुक्तः तथाव्युत्थानं त्रिलक्षणं त्रिभिरध्वभिर्युक्तं वर्तमानं लक्षणं हित्वाधर्मत्वमनतिक्रांतमतीतलक्षणं प्रतिपन्नमेषोस्य-तृतीयोध्यानचानागतवर्तमानाभ्यां लक्षणाभ्यां वियुक्तं एवं पुन र्व्युत्थानमुपसंपद्यमानमनागत लक्षणं हित्वा धर्मत्वमनति-क्रान्तं वर्तमानं लक्षणं प्रतिपन्नं यत्रास्य स्वरूपाभिव्यक्तौ सत्यां

व्यापार एवास्य द्वितीयोध्वा नचातीतानागताभ्यां लक्षणाभ्यां विमुक्तमित्येवं पुनर्निरोध एवं पुनर्व्युत्थानमिति तथावस्था-परिणामस्तत्र निरोधक्षणेषु निरोधसंस्कारा बलवन्तो भवन्ति दुर्बलाव्युत्थानसंस्कारा इत्येषधर्माणामवस्थापरिणामः तत्रधर्मि धर्मैः परिणामधर्माणांत्र्यध्वानां लक्षणैः परिणामो लक्षणा-नामप्यवस्थाभिः परिणामः इति एवं धर्मलक्षणावस्थापरि-णामैः शून्यं न क्षणमपिगुणवृत्त मवतिष्ठतेचलञ्चगुणवृत्तं गुणस्वाभाव्यन्तुप्रवृत्तिकारणमुक्तं गुणानामिति एतेनभूतेन्द्रि-येषु धर्मधर्मिभेदात्त्रिविधः परिणामो वेदितव्यः परमार्थत-स्त्वेक एव परिणामो धर्मिस्वरूपमात्रो हि धर्मोधर्मि विक्रियै वैषाधर्मद्वाराप्रपंच्यते इति तत्रधर्मस्य धर्मिणो वर्तमानस्यैवा ध्वस्वतीतानागतवर्तमानेषु भावान्यथात्वं भवति न द्रव्यान्यथा त्वं यथा सुवर्णभाजनस्यभित्वान्यथाक्रियमाणस्य भावान्यथा त्वं भवति न सुवर्णान्यथात्व मिति। अपर आहधर्मानभ्य-धिकोधर्मी पूर्वतत्वानतिक्रमात् पूर्वापरावस्थाभेदमनुपतितः कौटस्थ्येनविपरिवर्तेत यद्यन्वयीस्यादित्ययमदोषः कस्मात् एकांतानभ्युपगमात् तदेतत्त्रैलोक्यं व्यक्तेरपैतिनित्यत्व प्रति-षेधात् अपेतमप्यस्ति विनाश प्रतिषेधात्संसर्गाच्चास्यसौक्ष्म्यं सौक्ष्म्याच्चानुपलब्धि रितिलक्षणपरिणामो धर्मोध्वसुवर्तमानोऽ

तीतातीत लक्षणयुक्तोनागतवर्त्तमानाभ्यां लक्षणाभ्यामवियुक्त स्तथानागतो नागतलक्षणयुक्तो वर्तमानातीताभ्यां लक्षणाभ्यामवियुक्त स्तथा वर्तमानो वर्तमानलक्षणयुक्तोतीतानागताभ्यां लक्षणाभ्याम वियुक्त इति यथापुरुष एकस्यांस्त्रियां रक्तो न शेषासुविरक्तो भवतीत्ति अत्र लक्षण परिणामे सर्वलक्षणयोगादध्वसङ्करः प्राप्नोतीतिपरैर्दोषश्चोद्यत इति तस्य परिहारो धर्माणान्धर्मत्वमसाध्यं सतिच धर्मत्वेलक्षण भेदोपिवाच्यो न वर्तमान समय एवास्य धर्मत्वं एवं हिन चित्तं रागधर्मकंस्यात् क्रोधकाले रागस्यासमुदाचारादिति किञ्च त्रयाणां लक्षणानां युगपदेकस्यां व्यक्तौ नास्ति सम्भवः क्रमेणतु स्वव्यञ्जकाञ्जनस्य भावो भवेदिति उक्तञ्च रूपातिशयावृत्यतिशयाश्च विरुध्यन्ते सामान्यानित्यातिशयैः सह प्रवर्तन्ते तस्मादसङ्करो यथाराग स्यैवक्वचित्समुदाचार इति नतदानीमन्यत्राभावः किन्तु केवलं सामान्ये न समन्वागत इत्यस्ति तदा तत्र तस्याभावः तथा लक्षणस्येति न धर्मीत्र्यध्वाधर्मास्तु अध्वानस्ते लक्षिता अलक्षितास्तत्तान्तामवस्था म्प्राप्नुवन्तोऽन्यत्वे न प्रतिनिर्दिश्यन्ते अवस्थान्तरतो न द्रव्यान्तरतः यथैकारेखाशतस्थाने शतन्दशस्थाने दशैकाचैकस्थाने यथाचैकत्वे पि स्त्रीमाताचोच्यते दुहिताच स्वसाचेति अवस्थापरिणामे कौटस्थ्यप्रसङ्ग दोषः कैश्चि-

दृत्तः कथं अध्वनो व्यापारेणाव्यवहितत्वात्यदाधर्मः स्वव्यापारं न करोति तदानागतो यदाकरोति तदा वर्तमानो यदाकृत्वा निवृत्त स्तदातीत इत्येवं धर्मधर्मिणोर्लक्षणानामवस्थानां च कौटसथ्यम्प्राप्नोतीतिपरैर्दोष उच्यतेनासौ दोषः कस्मात्गुणि नित्यत्वे पि गुणानां विमर्द वैचित्र्यात् यथा संस्थानमादिमद्धर्म मात्रं शब्दादीनां विनाश्यविनाशिनामेवं लिंगादिमद्धर्ममात्रं सत्वादीनां गुणानां विनाश्यविनाशिनां तस्मिन् विकार संज्ञेति तत्रेदमुदाहरणं मृद्धर्मीपिण्डाकाराद्धर्माद्धर्मान्तरमुप- संपद्यमानो धर्मतः परिणमतेघ टाकार इति घटाकारोना- गतं लक्षणं हित्वा वर्तमान लक्षणं प्रतिपद्यत इति लक्षणतः परिणमते घटो नव पुराणतां प्रतिक्षणमनुभवन् अवस्था परिणामं प्रतिपद्यत इति धर्मिणोपिधर्मांतरमवस्थाधर्मस्यापि लक्षणांतरमवस्थेति एक एव द्रव्य परिणामो भेदेनोपदर्शित एवं पदार्थान्तरेष्वपि योज्यमिति एते धर्मलक्षणावस्थापरि- णामामाधर्मिस्वरूपमनतिक्रांता इत्येक एव परिणामः सर्वान- मून्विशेषानभिप्लवते अथकोयं परिणामः अवस्थितस्य द्रव्यस्य पूर्व धर्म निवृत्तौधर्मांतरोत्पत्तिः परिणामः इति ॥ १३ ॥

भा० का० प० । (एतेन पूर्वोक्तेन चित्त परिणामेन) सूत्रमें लिखे "एतेन" शब्दका अर्थ करते है कि पूर्व कहे हुए चित्तके परिणामसे (धर्म-

लक्षणावस्था रूपेण) धर्म्म लक्षण और अवस्था रूपसे (भूतेन्द्रियेषु धर्म्म परिणामो लक्षण परिणामो वस्था परिणामश्च वेदितव्यः) भूतेन्द्रिय अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियोंमें धर्म्म परिणाम-लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम समझने योग्य हैं (तत्रव्युत्थान निरोधयो र्धर्म्मयोरभिभवप्रादुर्भावौ धर्म्मिणि धर्म्म परिणामः) इन तीनोंमें से धर्म्म परिणाम उसे कहते हैं जिसमें धर्म्मी अर्थात् इन्द्रिओंमें व्युत्थान अर्थात् चञ्चलता और निरोध अर्थात् स्थिरता रूप दो धर्म्मोंका तिरोभाव और प्रादुर्भाव होताहै (लक्षण परिणामश्च) और लक्षण परिणाम वह है (निरोधस्त्रिभिरध्वभिर्युक्तः) जिसमें इन्द्रियनिरोध तीनमार्गों से युक्त होता है (सखल्वनागत लक्षण मध्वानम्प्रथमंहित्वा) वह वह निरोधप्रथम अनागत लक्षणवाले मार्गको परित्याग कर (धर्म्मत्वमनतिक्रान्तः वर्तमानं लक्षणं प्रतिपन्नः) गुणताको ग्रहण किये हुए वर्तमान लक्षणको प्राप्त होताहै (यत्रास्य स्वरूपेणाभिव्यक्तिः) जिसमें अपने रूपका प्रकाश होताहै (एषोस्य) यह चित्तका (द्वितीयोध्वा) दूसरा मार्गहै (नचातीतानागताभ्यां लक्षणाभ्यां वियुक्तः) अतीत अर्थात् बीते हुवे और अनागत अर्थात् जो भविष्यतमें होगा लक्षणोंसे नहीं भिन्न है (तथा) ऐसेही (व्युत्थानं त्रिलक्षणम्) व्युत्थान चित्तकेभी तीन प्रकारके लक्षण (त्रिभिरध्वभिर्युक्तम्) तीन मार्गोंसे युक्त होता है (वर्तमानं लक्षणं हित्वा) वर्तमान लक्षणको त्याग कर (धर्म्मत्वमनतिक्रान्तम्) धर्म्म भावको ग्रहण किये हुए (अतीत लक्षणं प्रतिपन्नम्) अतीत अर्थात् भूत लक्षणको प्राप्त हुआ (एषोस्यतृतीयोध्वा) यह चित्तका तीसरा मार्ग है (नचातीतानागताभ्यां लक्षणाभ्यां वियुक्तम्) भूत और भविष्यत् लक्षणोंसे मुक्तनही (एवम्) इसही प्रकारसे (पुनर्व्युत्थानम्) फिर चञ्चल हुआ चित्त (अनागत लक्षणंहित्वा) भविष्यत् लक्षण को परित्याग करके (धर्म्मत्वमनतिक्रान्तम्) धर्म्म भावको ग्रहण किये हुए (वर्तमानं लक्षणं प्रतिपन्नम्) वर्तमान लक्षणको धारण किये हुवे (यत्रास्य) जिस लक्षणमें चित्तके

तस्यप्रशांतवाहितासंस्कारात् ॥ १० ॥

सू० का प० (संस्कारात्) उत्तम संस्कारोंसे (तस्य) चित्तकी (प्रशान्तवाहिता) शान्त प्रवाह होता है।

सू० का भा० उत्तम संस्कारोसे चित्तका शांत प्रवाह होताहै।

निरोध संस्काराभ्निरोध संस्काराभ्यास पाटवापेक्षा प्रशान्त वाहिता चित्तस्य भवति तत्संस्कारामान्द्ये व्युत्थान धर्मिणो संस्कारेण निरोधधर्मः संस्कारोऽभिभूयत इति ॥ १० ॥

भा० का प०। (निरोध संस्कारात्) निरोध करनेवाले संस्कारसे (निरोध संस्काराभ्यास पाटवापेक्षा) निरोध करनेवाले संस्कारोंके अभ्यास पटुता अर्थात् चञ्चलताकी अपेक्षा (प्रशान्त वाहिताचित्तस्य भवति) चित्तकी प्रशान्त वाहिता होती है (तत्संस्कारा) प्रशान्त वाहिताके संस्कार (आद्ये) प्रथमावस्थामें (व्युत्थान धर्म्मिणा संस्कारेण) चञ्चलताके संस्कारोंके द्वारा (निरोध धर्म्मसंस्कारोभि भूयते) निरोध धर्म्मवाला संस्कार तिरस्कृत अर्थात् दबा हुआ रहता है।

भा० का सा०। चित्तकी वृत्तिओंको निरोध करनेवाले संस्कारके अभ्याससे चित्तकी प्रशान्तवाहिता अर्थात् निर्म्मल स्थिरता होतीहै और उसके पूर्व चित्तमें चञ्चलता रहती है।

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौचित्तस्यसमाधिपरिणामः ॥ ११ ॥

सू० का प०। (सर्वार्थतैकाग्रतयोः) सर्वार्थता अर्थात् अनेक विषयों

के विचारसे चञ्चल रहना और एकाग्रता का जो (क्षयोदयौ) क्षय और उदय (चित्तस्य समाधि परिणामः) वह चित्तकी समाधिका परिणाम अर्थात् अन्तदशा है।

सू० का भा०। चित्तकी सर्वार्थताका क्षय और एकाग्रताका जो उदय है वह चित्तकी समाधिका परिणाम है।

सर्वार्थता चित्तधर्मः एकाग्रताचित्तधर्मः सर्वार्थतायाः क्षयन्तिरोभाव इत्यर्थः एकाग्रताया उदय आविर्भाव इत्यर्थः तयोर्धर्मित्वे नानुगतं चित्तं तदिदं चित्तमपायोपजननयोः स्वात्मभूतयोर्द्धर्मयोरनुगतं समाधीयते सचित्तस्य समाधिपरिणामः॥ ११

भा० का प०। (सर्वार्थता चित्तधर्म्मः) सर्वार्थता भी चित्तका गुण है (एकाग्रता चित्तधर्म्मः) और एकाग्रता भी चित्तका धर्म्म है (सर्वार्थतायाः क्षयस्तिरोभाव इत्यर्थः) सर्वार्थताका क्षय अर्थात् गुप्त होजाना (एकाग्रताया उदय आविर्भाव इत्यर्थः) एकाग्रताका उदय अर्थात् प्रकट होना (तयोर्धर्म्मित्वे नानुगतं चित्तम्) इन धर्म्मोंसे युक्त चित्त है (तदिदं चित्तम्) पूर्वोक्त चित्त (अपायोपजनयोः स्वात्मभूतयोर्द्धर्म्मयोः) अपाय अर्थात् नष्ट और उपजन अर्थात् पुनः उत्पन्न होना तद्रूप दो धर्म्मों में (अनुगतम्) प्राप्त हुआ (समाधीयते) स्थिर होता है (सचित्तस्य समाधि परिणामः) वह चित्तकी समाधिका परिणाम है॥ ११॥

भा० का भा०। सर्वार्थता और एकाग्रता वा चित्त की समाधिका परिणाम है। ११।

शांतोदितौतुल्यप्रत्ययौचित्तस्यैकाग्रता

परिणामः ॥ १२ ॥

सू० का प० । (शान्तोदितौ) शान्त और उदित (तुल्य प्रत्ययौचित्तस्य) चित्तके समान ज्ञान हैं (एकाग्रता परिणामः) और एकाग्रता परिणाम है ॥ १२ ॥

सू० का भा० । शान्त प्रत्यय और उदित प्रत्यय चित्तके समान ज्ञान है किन्तु एकाग्रता परिणाम है ॥ १२ ॥

समाहितचित्तस्य पूर्वप्रत्ययः शांतउत्तरस्तत्सदृश उदितः समाधि चित्तमुभयोरनुगतं पुनस्तथै वाऽसमाधिभ्रंशादिति सखल्वयन्धर्मिणश्चित्तस्यै काग्रतापरिणामः ॥ १२

भा० का प० । (समाहित चित्तस्य) जिस योगीका चित्त सावधान हो गया है (पूर्व प्रत्ययः) उसका जो प्रथम ज्ञान है (शान्तः) उसे शान्त प्रत्यय कहते हैं (उत्तरस्तत्सदृश उदितः) ऐसेही उत्तर ज्ञानको उदित प्रत्यय कहते हैं (समाधिचित्तमुभयोरनु गतम्) समाधिस्थ चित्त जब दोनो प्रत्ययोंसे युक्त होता है (पुनस्तथैवा समाधि भ्रंशादिति) समाधि भ्रष्ट होनेसे फिर वैसाही हो जाताहैं (सखल्वयम् धर्म्मिणश्चितैस्यैकाग्रता) उस उक्त धर्म्मवाले चित्तकी जो एकाग्रता है (परिणामः) उसे परिणाम कहते हैं ॥ १२ ॥

भा० का भा० । चित्तके दो गुण हैं एक शान्त प्रत्यय और दूसरा उदित प्रत्यय जब मनुष्य इन दोनो गुणोंसे उर्द्ध गत होता है तब इसके चित्तकी एकाग्रता होती है और वही समाधिका परिणाम है ! १२ ।

एतेनभूतेन्द्रियेषुधर्मलक्षणावस्थापरिणा

मा व्याख्याता: ॥ १२ ॥

सू० का० प० । (एतेन) पूर्व सूत्रोक्त प्रकारसे (भूतेन्द्रियेषु) इन्द्रियों में (धर्मलक्षणावस्था परिणामा व्याख्याता:) धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम कहे । १२ ।

सू० का० भा० । पूर्वोक्त चित्त परिणामके कथनसे इन्द्रियों में जो धर्म परिणाम लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम होते हैं उनका कथन भी समझना योग्य है । १२ ।

एतेन पूर्वोक्तेन चित्तपरिणामेन धर्मलक्षणावस्था रूपेण भूतेन्द्रियेषुधर्मपरिणामो लक्षणपरिणामोवस्थापरिणामश्चोक्तो वेदितव्यः तत्र व्युत्थान निरोधयोर्धर्मयोरभिभव प्रादुर्भावौ धर्मिणि धर्म परिणामो लक्षण परिणामश्च निरोधस्त्रिलक्षण स्त्रिभिरध्वभिर्युक्तः सखल्वनागत लक्षणमध्वानं प्रथमं हित्वा धर्मत्वमनतिक्रांतोवर्तमानं लक्षणं प्रतिपन्नः यत्रास्य स्वरूपेणा भिव्यक्तिरेषोस्य द्वितीयोध्वा नचातीतानागताभ्यां लक्षणाभ्यां वियुक्तः तथाव्युत्थानं त्रिलक्षणं त्रिभिरध्वभिर्युक्तं वर्तमानं लक्षणं हित्वाधर्मत्वमनतिक्रांतमतीतलक्षणं प्रतिपन्नमेषोस्य-तृतीयोध्वानचानागतवर्तमानाभ्यां लक्षणाभ्यां वियुक्तं एवं पुन र्व्युत्थानमुपसंपद्यमानमनागत लक्षणं हित्वा धर्मत्वमनति-क्रान्तं वर्तमानं लक्षणं प्रतिपन्नं यत्रास्य स्वरूपाभिव्यक्तौ सत्यां

व्यापार एवास्य द्वितीयोऽध्वा नचातीतानागताभ्यां लक्षणाभ्यां विमुक्तमित्येवं पुनर्निरोध एवं पुनर्व्युत्थानमिति तथावस्था-परिणामस्तत्र निरोधक्षणेषु निरोधसंस्कारा बलवन्तो भवन्ति दुर्बला व्युत्थानसंस्कारा इत्येष धर्माणामवस्थापरिणामः तत्र धर्मि धर्मैः परिणामो धर्माणां त्र्यध्वानां लक्षणैः परिणामो लक्षणानामप्यवस्थाभिः परिणामः इति एवं धर्मलक्षणावस्थापरि-णामैः शून्यं न क्षणमपि गुणवृत्तमवतिष्ठते चलञ्च गुणवृत्तं गुणस्वाभाव्यन्तु प्रवृत्तिकारणमुक्तं गुणानामिति एतेन भूतेन्द्रि-येषु धर्मधर्मिभेदात् त्रिविधः परिणामो वेदितव्यः परमार्थत-स्त्वेक एव परिणामो धर्मिस्वरूपमात्रो हि धर्मो धर्मि विक्रियै-वैषा धर्मद्वारा प्रपञ्च्यते इति तत्र धर्मस्य धर्मिणो वर्तमानस्यैवा ध्वस्वतीतानागतवर्तमानेषु भावान्यथात्वं भवति न द्रव्यान्यथा त्वं यथा सुवर्णभाजनस्य भित्वान्यथाक्रियमाणस्य भावान्यथा त्वं भवति न सुवर्णान्यथात्व मिति। अपर आह धर्मानभ्य-धिको धर्मी पूर्वतत्त्वानतिक्रमात् पूर्वापरावस्थाभेदमनुपतितः कौटस्थ्येन विपरिवर्तेत यद्यन्वयी स्यादित्ययमदोषः कस्मात् एकान्तानभ्युपगमात् तदेतत् त्रैलोक्यं व्यक्तेरपैति नित्यत्व प्रति-षेधात् अपेतमप्यस्ति विनाश प्रतिषेधात् संसर्गाच्चास्य सौक्ष्म्यं सौक्ष्म्याच्चानुपलब्धि रिति लक्षणपरिणामो धर्मोऽध्वसु वर्तमानोऽ

तीतोतीत लक्षणयुक्तोनागतवर्त्तमानाभ्यां लक्षणाभ्यामवियुक्त स्तथानागतो नागतलक्षणयुक्तो वर्तमानातीताभ्यां लक्षणाभ्या-वियुक्त स्तथा वर्तमानो वर्तमानलक्षणयुक्तोतीनागताभ्यां ल-क्षणाभ्याम वियुक्त इति यथापुरुष एकस्यांस्त्रियां रक्तो न शेषासुविरक्तो भवतीति अत्र लक्षण परिणामे सर्वलक्षणयोगा-दध्वसङ्करः प्राप्नोतीतिपरैर्दोषश्चोद्यत इति तस्य परिहारो धर्माणान्धर्मत्वमसाध्यं सतिच धर्मत्वेलक्षण भेदोपिवाच्यो न वर्तमान समय एवास्य धर्मत्वं एवं हिन चित्तं रागधर्मकंस्यात् क्रोधकाले रागस्यासमुदाचारादिति किञ्च त्रयाणां लक्षणानां युगपदेकस्यां व्यक्तौ नास्ति सम्भवः क्रमेणतु स्वव्यञ्जकाञ्जनस्य भावो भवेदिति उक्तञ्च रूपातिशयावृत्त्यतिशयाश्च विरुध्यन्ते सामान्यानित्यातिशयैः सह प्रवर्तन्ते तस्मादसङ्करो यथाराग स्यैवक्कचित्समुदाचार इति नतदानीमन्यत्राभावः किन्तु केवलं सामान्ये न समन्वागत इत्यस्ति तदा तत्र तस्याभावः तथा लक्षणस्येति न धर्मीत्र्यध्वाधर्मास्तु अध्वानस्ते लक्षिता अल-क्षितास्त्वत्यतान्तामवस्था म्प्राप्नुवन्तोऽन्यत्वं न प्रतिनिर्दिश्यन्ते अवस्थान्तरतो न द्रव्यान्तरतः यथैकारेखाशतस्थाने शतन्दश-स्थाने दशैकाचैकस्थाने यथाचैकत्वे पि स्त्रीमाताचोच्यते दुहि-ताच स्वसाचेति अवस्थापरिणामे कौटस्थ्यप्रसङ्ग दोषः कैश्चि-

टुक्तः कथं अध्वनो व्यापारेणाव्यवहितत्वात्यदाधर्मः स्वव्यापारं न करोति तदानागतो यदाकरोति तदा वर्तमानो यदाकृत्वा निवृत्त स्तदातीत इत्येवं धर्मधर्मिणोर्लक्षणानामवस्थानां च कौटस्थ्यम्प्राप्नोतीतिपरैर्दोष उच्यतेनासौ दोषः कस्मात्गुणि नित्वेपि गुणानां विमर्द्दवैचित्र्यात् यथा संस्थानमादिमद्धर्म मात्र शब्दादीनां विनाश्यविनाशिनामेवं लिंगादिमद्धर्ममात्र सत्वादीनां गुणानां विनाश्यविनाशिनां तस्मिन् विकार संज्ञेति तत्रेदमुदाहरणं मृद्धर्मीपिण्डाकाराद्धर्माद्धर्मान्तरमुप-संपद्यमानो धर्मतः परिणमतेघटाकार इति घटाकारोना-गतं लक्षणं हित्वा वर्तमान लक्षणं प्रतिपद्यत इति लक्षणतः परिणमते घटो नव पुराणतां प्रतिलक्षणमनुभवन् अवस्था परिणामं प्रतिपद्यत इति धर्मिणोपिधर्मांतरमवस्थाधर्मस्यापि लक्षणांतरमवस्थेति एक एव द्रव्यपरिणामो भेदेनोपदर्शित एवं पदार्थान्तरेष्वपि योज्यमिति एते धर्मलक्षणावस्थापरि-णामासाधर्मिस्वरूपमनतिक्रांता इत्येक एव परिणामः सर्वान-मून्विशेषानभिप्लवते अथकोयं परिणामः अवस्थितस्य द्रव्यस्य पूर्वधर्म निवृत्तौधर्मांतरोत्पत्तिः परिणामः इति ॥ १३ ॥

भा० का० प० । (एतेन पूर्वोक्तेन चित्त परिणामेन) सूत्रमें लिखे "एतेन" शब्दका अर्थ करते हैं कि पूर्व कहे हुए चित्तके परिणामसे (धर्म-

लक्षणावस्था रूपेण) धर्म लक्षण और अवस्था रूपसे (भूतेन्द्रियेषु धर्म्म परिणामो लक्षण परिणामो वस्था परिणामश्च वेदितव्यः) भूतेन्द्रिय अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियोंमें धर्म्म परिणाम-लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम समझने योग्य हैं (तत्रव्युत्थान निरोधयो धर्म्मयोरभिभवप्रादुर्भावौ धर्म्मिणि धर्म्म परिणामः) इन तीनों में से धर्म परिणाम उसे कहते हैं जिसमें धर्म्मी अर्थात् इन्द्रिओंमें व्युत्थान अर्थात् चञ्चलता और निरोध अर्थात् स्थिरता रूप दो धर्म्मोंका तिरोभाव और प्रादुर्भाव होताहै (लक्षण परिणामश्च) और लक्षण परिणाम वह है (निरोधस्त्रिभिरध्वभिर्युक्तः) जिसमें इन्द्रियनिरोध तीनमार्गों से युक्त होता है (सखल्वनागत लक्षण मध्वानम्प्रथमंहित्वा) वह वह निरोधप्रथम अनागत लक्षणवाले मार्गको परित्याग कर (धर्म्मत्वमनतिक्रान्तः वर्तमानं लक्षणं प्रतिपन्नः) गुणताको ग्रहण किये हुए वर्तमान लक्षणको प्राप्त होताहै (यत्रास्य स्वरूपेणाभिव्यक्तिः) जिसमें अपने रूपका प्रकाश होताहै (एषोस्य) यह चित्तका (द्वितीयोध्वा) दूसरा मार्गहै (नचातीतानागताभ्यां लक्षणाभ्यां वियुक्तः) अतीत अर्थात् वीते हुवे और अनागत अर्थात् जो भविष्यतमें होगा लक्षणोंसे नहीं भिन्न है (तथा) ऐसेही (व्युत्थानं त्रिलक्षणम्) व्युत्थान चित्तकेभी तीन प्रकार के लक्षण (त्रिभिरध्वभिर्युक्तम्) तीन मार्गोंसे युक्त होता है (वर्तमानं लक्षणं हित्वा) वर्तमान लक्षणको त्याग कर (धर्म्मत्वमनतिक्रान्तम्) धर्म्म भावको ग्रहण किये हुए (अतीत लक्षणं प्रतिपन्नम्) अतीत अर्थात् भूत लक्षणको प्राप्त हुआ (एषोस्यतृतीयोध्वा) यह चित्तका तीसरा मार्ग है (नचातीतानागताभ्यां लक्षणाभ्यां वियुक्तम्) भूत और भविष्यत् लक्षणोंसे युक्तनही (एवम्) इसही प्रकारसे (पुनर्व्युत्थानम्) फिर चञ्चल हुआ चित्त (अनागत लक्षणंहित्वा) भविष्यत् लक्षण को परित्याग करके (धर्म्मत्वमनतिक्रान्तम्) धर्म्म भावको ग्रहण किये हुए (वर्तमानं लक्षणं प्रतिपन्नम्) वर्तमान लक्षणको धारण किये हुवे (यत्रास्य) जिस लक्षणमें चित्तके

(स्वरूपाभिव्यक्तौ सत्यास्) स्वरूपका प्रकाश होनेसे (व्यापार:) व्यवहार होता है (एषोऽस्यद्वितीयोऽध्वा) वह चित्तका दूसरा मार्ग है (नचातीता-नागताभ्यां लक्षणाभ्यां वियुक्त:) किन्तु भूत और भविष्यत लक्षणोंसे परि-त्यक्त नहीं होताहै (इत्येवं) इस रीतिसे (पुनर्निरोध:) चित्तकी फिर एकाग्रता वा निरोध होताहै (पुन: व्युत्थानमिति) और फिर चञ्चलता होती है (तथावस्थापरिणाम:) इसही रीतिसे अवस्था परिणाम है (तत्र) अवस्थापरिणाममें (निरोधक्षणेषु) जिस समयमें चित्तका निरोध होता है (निरोध संस्कारावलवन्तो भवन्ति) निरोधके संस्कार बलवान् होते हैं (दुर्बलाव्युत्थान संस्कारा:) चञ्चलताके संस्कार बलहीन हो जाते हैं (इत्येष धर्म्माणामवस्था परिणाम:) इस रीतिसे चित्तके धर्म्मोंका अवस्था-परिणाम है (तत्रधर्म्मिणोधर्म्मै:) उस धर्म्मी अर्थात् चित्तका इन धर्म्मोंसे परिणाम (धर्म्माणाञ्चत्र्यध्वानाम्) उक्त तीन मार्गके आश्रयवाले धर्म्मका (लक्षणै: परिणाम:) लक्षणोंसे परिणाम अर्थात् अवस्थान्तर होता है (लक्षणोंका अवस्थाओंसे परिणाम होता है (एव धर्म्मलक्षणावस्था परि-णामै शून्यम्) इस रीतिसे धर्म्म लक्षण और अवस्थाकृत परिणामोंसे रहित (न क्षणमपिगुणवृत्त मवतिष्ठते) क्षणमात्रभी चित्त नही रहता (चलञ्च-गुणवृत्तम्) क्योंकि गुणकी वृत्तियां स्थिर नही रहती (गुणस्वाभाव्यन्तु प्रवृत्ति कारणमुक्तम्) गुणोंका स्वभावही चित्तकी प्रवृत्तिमें कारण कहा है (एतेन) इस कथनसे (भूतेन्द्रियेषु) इन्द्रियोंमें (धर्म्म धर्म्मिभेदात्त्रिविध: परिणाम वेदितव्य: धर्म्म और धर्म्मी के भेदसे तीन प्रकारका परिणाम जानना चाहिये (परमार्थतस्त्वेक एवपरिणाम:) यथार्थमें तो एकही परिणाम है (धर्म्मिस्वरूपमात्रोहि धर्म्म:) क्योंकि धर्म्मीके स्वरूपमात्रही धर्म्म है (धर्म्मिविक्रियैव) धर्म्मीके बिकारही से (एषा धर्म्मद्वारा प्रपंच्यते) यह धर्म्म द्वारा कहा जाता है अर्थात् धर्म्मीके बिकारको ही धर्म्म रूपसे कहते हैं (धर्म्मस्यधर्म्मिणोवर्तमानस्यैवाध्वसु) धर्म्मीका जो वर्तमान धर्म्म

है वही (अधुस्वतीतानागय वर्तमानेषु) भूत भविष्यत् और वर्तमान मार्गोंमें (भावान्यथात्वम्भवति) न द्रव्यान्यथात्वम्) भावकी ही विपरीतता होती है किन्तु पदार्थ अर्थात् गुणीमें कुछ विपरीत नहीं होता (यथा) जैसे (सुवर्णभाजनस्यभित्वान्यथा क्रियमानस्य) सुवर्णके पात्रको तोड़ कर दूसरी रीतिका बनानेसे (भावान्यथात्वं भवतिन सुवर्णान्यथात्वम्) केवल पात्रके भावको विकार होता है किन्तु सुवर्णमें कुछ विकार नहीं होता (अपर आह) दूसरा आचार्य्य कहाता है कि (धर्मानभ्यधिको धर्मी पूर्वतत्वानतिक्रमात्) धर्मोंसे भिन्न अथवा सर्व रहित धर्मी है क्योंकि वह अपने पूर्व रूपको परित्याग नहीं करता (पूर्वापरावस्था भेद मनु पतितः) पूर्वावस्था और परावस्थाके भेदमें पड़के (कौटस्थेन विपरिवर्तेत) कूटस्थ अर्थात् अविचारी रूपसे रहता है (यद्यन्वयीस्यात्) यदि अवस्था वा परिणाम से सम्बन्ध रखनेवाला होता तो (इत्यमदोषः कस्मात्) अदोष कैसे होसक्ता है (विनाशप्रतिषेधात् संसर्गाचास्यसौक्ष्मम्) विनाश रहित होनेसे और संसर्गसे वह सूक्ष्म है (सौक्ष्मयाच्चानुपलब्धिः) और सूक्ष्मताके कारण से उसकी उपलब्धि नही होती (इति लक्षण परिणामः) इस रीतिसे लक्षण परिणाम (धर्मोधूसु) धर्म परिणामके उक्त मार्गोंमें (वर्तमानः) वर्तमान (अतीत लक्षणयुक्तः) अती लक्षणके युक्त होता है (नागतवर्तमान लक्षणाभ्यां वियुक्तः) किन्तु भविष्यत् और वर्तलान लक्षणोंसे रहित नही होता (तथा नागतोनागतलक्षण युक्तः) ऐसेही अनागत अर्थात् भविष्यत् अनागत लक्षणसे युक्त होता है (तथा वर्तमानः) ऐसे ही वर्तमान लक्षण परिणाम (वर्तमान लक्षणोंसे युक्त होता है अतीता यथा पुरुष एकस्यां स्त्रियां रक्तः) जैसे कोई पुरुष एक स्त्रीमें प्रीतिमान है (नशेषासुविरक्तो भवति) तो वह अन्य स्त्रिओंमें विरक्त नहीं है (अत लक्षण परिणामें) इस लक्षण परिणाममें (सर्व लक्षणयोगादध्वसंकरः) प्राप्नोतीति सब लक्षणोंका संयोग होनेसे उक्त मार्गों का मिलाप वा एकता

होती है यह समझ कर (परैर्दोषप्रोच्यते) दूसरे लोग दोषका उद्घाटन करते हैं (तस्य परिहारः) उसका उत्तर यह है (नधर्म्माणां धर्म्मत्वंसाध्यं) धर्म्मोका धर्म्म होना असाध्य है (सतिच धर्म्मत्वे लक्षणभेदोपिवाच्यः) यदि धर्म्मका धर्म्म हो तो लक्षणका भेद कहना भी योग्य है (न वर्तमान समये एवास्यधर्म्मत्वम्) वर्तमान कालमें धर्म्मत्व नहीं होता (एवंहि) क्योंकि इस रीतिसे (नचित्तं रागधर्म्मकं स्यात्) चित्तराग धर्म्मवाला सिद्ध नहीं होगा क्रोधकाले रागस्या समुदायाचारात्) क्रोधके समयमें राग समुदायका आवि र्भाव नहीं होता (किंच) और भी दोष आवेगा (त्रयाणांलक्षणानां युग- पदेकस्यां व्यक्तौ) तीनो लक्षणोका एक समय में एकही व्यक्तिमें होना असम्भव है (क्रमेणतु स्व व्यंजकां जनभावो भवेदिति) और क्रमसे एक दूसरेके व्यंजक होसक्ते हैं (उक्तंच) अन्यत्र भी लिखाहै (रूपातिशया वृत्त्यतिशयाश्च विरुध्यन्ते सामान्यानित्वतिशयैः सह प्रवर्त्तन्ते) रुपातिशय और वृत्तिकी अधिकतासे विरुद्ध वा भिन्न हैं और सामान्य अतिशयसे मिल कर रहते भी है (तस्मान्नसंकरः) इससे मार्ग संकर नहीं है (यथा) जैसे (रागस्यैवक्वचित्समुदाचारः) रागहीका कहीं अधिकार होता है (नतदानीमन्यत्राभावः) किन्तु उस रागका दूसरे स्थलमें अभाव नहीं हैं (किन्तु केवलं सामान्येन समन्वागतः) केवल सामान्य रूपसे दूसरे स्थलमें वह है (इतस्थित स्तस्य तत्र भावः) इसे यह सिद्ध होता है कि उस समयमें भी रागकी उस स्थलमें सत्ता है (तथा) ऐसेही (लक्षणस्येति) लक्षणका भी वर्णन है (नधर्म्मीत्र्यध्वा) धर्मी तीन मार्गका नही हैं (धर्म्मास्तुअध्वानः) किन्तु धर्म्मही तीन मार्ग हैं (ते लक्षिता अलक्षिता श्च) वे लक्षित और अलक्षित (तान्तामवस्थां प्राप्नुवन्तः) तीन अवस्थाओं को प्राप्त होते हैं (अन्यत्वेन प्रतिनिर्दिश्यन्ते) और वही धर्म्म भिन्न भिन्न नामोंसे कहे जाते हैं (अवस्थान्तरतोन द्रव्यान्तरतः) किन्तु भिन्न अवस्था- ओंसे द्रव्यान्तरसे नहीं (यथैकारेखा) जैसे एकही रेखा (शतस्थाने शतन्द-

शस्थानेदशैका चैक स्थाने) शतके स्थानमें शत दशके स्थानमें दश और एकके स्थानमें एकही होती है (यथा चैकत्वेपि) जैसे एकही (स्त्री माता चच्यते दुहिताचस्वसाचेति) स्त्री माता, पुत्री भगिनी कहाती है (अवस्था परिणामे) अवस्था परिणाममें (कौटस्थ्यप्रसंगदोषः) कूटस्थता दोष आवेगा (कैश्चिदुक्तः) कोई कहते हैं (कथमध्वनो व्यापारेण व्यवहितत्वात्) मार्गके व्यापार से रुद्ध होनेसे दोष कैसे होगा (यदा) जब (धर्म्मः स्वव्यारं न करोति) धर्म्म अपना कार्य्य नहीं करता (तदानागतः) तब वह प्रत्यक्ष नहीं है (यदा करोति तदावर्तमानः) जब अपने कार्य्यको करता है तब वर्तमान है (यदा कृत्वानिवृत्त स्तदातीतः) जब अपने कार्य्यको करको निवृत्त हो जाता है तब उसे अतीत कहते हैं (इत्येवम्) इस रीतिसे (धर्म्म धर्म्मिणोः) धर्म्म और धर्मीका (लक्षणाना मवस्थानांच कौटस्थ्यं च प्राप्नोति) लक्षण और अवस्थाओं की कूटस्थता प्राप्त होती है (परैर्दोष उच्यते) अन्य लोग दोष देते हैं (नासौ दोषः) यह दोष नहीं आसक्ता (गुणिनि सत्यत्वेपिगुणानाम् विमर्द वैचित्र्यात्) गुणीके रहते भी गुणोंके विमर्दन अर्थात् प्रादुर्भाव और तिरोभावकी विचित्रतासे (यथा संस्थानमादिमद्धर्म्म मात्रम्) निज पूर्वस्थान पर स्थिर रहनेसे अपने पूर्व धर्म्म मात्रकी स्थिति रखताहै (शब्दादीनां विनाश्य विनाशिना मेवं लिङ्गादि मद्धर्म्म मात्रम्) ऐसेही शब्दादिकों का विनाशी और अविनाशी लिंगही धर्म्ममात्र है (सत्वादीनां गुणानां विनाश्य विनाशिनाम् तस्मिन् विकार संज्ञेति) सत्वादि विनाशी और अविनाशी गुणोंकी उसमें विकार संज्ञा है (तत्रेदमुदाहरणम्) उसमें यह उदाहरण है (मृद्धर्म्मी पिण्डाकाराद्धर्म्माद्धर्म्मान्तरमुपसम्पद्यमानः) मट्टी पिण्डके आकारसे दूसरे घटादि धर्म्मको प्राप्त होकर (धर्म्मतः परिणमते घटाकारः) मट्टी धर्म्मसेही घटाकारमें परिणत होती है (अनागतं लक्षणं हित्वा) भविष्यत् लक्षणको त्याग कर (वर्तमान लक्षणं

प्रतिपद्यते) वर्तमान लक्षणको प्राप्त होता है (लक्षणतः परिणमते) लक्षण से बदलता है (घटोनव पुराणतां प्रतिक्षण मनु भवन्) प्रतिक्षण में नवीनता और प्राचीनताको प्राप्त होता हुआ (अवस्था परिणामं प्रतिपद्यते) अवस्था लत परिणामको प्राप्त होता है (इति धर्म्मिणोपि धर्म्मान्तरमवस्था धर्म्मस्यापि लक्षणान्तर अवस्थे ति) इस रीतिसे धर्म्मीका भी धर्म्मान्तर अवस्था धर्म्मका भी लक्षणान्तर अवस्था है (एक एव द्रव्य-परिणामः) किन्तु द्रव्य परिणाम एकही है (भेदेनोपदर्शितः) जो भेदसे दिखलाया गयाहै (एवम्) इसही क्रमसे (पदार्थान्तरेष्यपि योज्यम्) अन्य पदार्थों में भी युक्त करना योग्य है (एतेधर्म्म लक्षणा वस्था परिणामाः) यह धर्म्म लक्षण और अवस्थाके परिणास ।

भा० का भा० । पूर्व सूत्रमें जो चित्तपरिणामका वर्णन किया था उससे इन्द्रियों में लक्षण परिणाम धर्म्म परिणाम और अवस्था परिणाम समझने योग्य हैं उनमें चित्तका उत्थान और निरोध धर्मोंका प्रादुर्भाव और तिरोभाव होता है उसे धर्म्म परिणाम कहते हैं, लक्षण परिणाम तीन मार्ग युक्त होता है अर्थात् भूत लक्षण परिणाम भविष्यल्लक्षण परिणाम और वर्तमान् लक्षणपरिणाम भूतलक्षण परिणाम वह है कि जिसमें अनागत लक्षणको परित्याग करके केवल अतीत लक्षण का अनुसरण कर्ता है किन्तु अतीत लक्षण परिणामसे अन्य परिणामों नितान्त भिन्न नहीं है क्योंकि वर्तमान् लक्षण परिणाम और अनागत लक्षण परिणाम का अंश भी उसमें रहता है, इसही रीतिसे वर्तमान लक्षण परिणाम और अनागत लक्षण परिणाम को भी समझना इनका अभिप्राय यह है कि जब योगी का चित्त समाधि वा निरोध दशाको प्राप्त हो जाता है तब यदि फिर चञ्चलताको धारण करले तो उसकी कैसी दशा होगी, तो तीन प्रकारके परिणाम होते हैं उनमें से एक लक्षण परिणाम भूत भविष्यत् और वर्त-मान भेदसे तीन प्रकारका है वर्तमान लक्षण परिणाम का अभिप्राय यह

है कि जिस दशामें योगीका चित्त परिणत हो उसही दशामें रहेगा किन्तु अन्य दोनो परिणामों का धर्म्म भी उसके चित्तमें वना रहेगा और लघू-पापसेही पुनः चित्त स्थिर हो जायगा यदि फिर चित्त चञ्चलताको धारण करैगा तो अतीत लक्षण परिणामको प्राप्त होगा यव्दा पुरुत्थानमें, अनागत लक्षण परिणामको धारण करेगा—

यद्वा योगाभ्यास से जव उत्तम परिणामको प्राप्त होगा तो प्रथम अतीत लक्षण परिणामको धारण कर्ता है अर्थात् पूर्वके कुसंस्कार नष्ट हो जाते हैं द्वितीय वर्तमान परिणाम है और इसके अनन्तर अनागत लक्षण परिणाम होता है, ऐसेही धर्म्म परिणाम तीन मार्ग युक्त होता है इसमें धर्मीमें धर्म्म अर्थात् गुणों का परिणाम होता है इसमें धर्मी अर्थात् चित्त व्युत्थान धर्म्मको त्याग कर निरोध धर्म्मको धारण करता है इसके अनन्तर अवस्था परिणाम है इसमें जिस क्षणमें निरोध संस्कारोंका उदय होता है उसमें व्युत्थान संस्कारोंका वल क्षीण होजाता है इसरीति से धर्मी में धर्म्म परिणाम लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम होते हैं किन्तु इन तीनों परिणामों से शून्य चित्त नही होता क्योंकि गुणक भी स्थायी नही रहते किन्तु यथार्थमें परिणाम एकही है क्योंकि धर्म्म और धर्मीके भेदसे यह सब प्रपञ्च होता है अर्थात् धर्म्मही रूपान्तरको प्राप्त होता है जैसे सुवर्ण पात्रको तोड़ कर यदि कोई अन्य अलंकार वनाया जायतो उस परिणामसे केवल पात्रका रूपान्तर होगा किन्तु सुवर्णका रूपान्तर नहीं होगा, अव इसमें शंका होती है कि एकही व्यक्तिमें भूत भविष्यत् और वर्तमान लक्षणोका होना असम्भव है यदि सम्भव भी हो तो अध्व संकरता दोष आवेगा ?

इसका उत्तर यह है कि एक कालमें सव परिणाम नहीं होते किन्तु यथाक्रम होनेमें कोई दोष नही है जैसे किसी व्यक्तिमें राग होता है तो उसे यह नही कह सके कि इस मनुष्यमें क्रोध नहीं है किन्तु राग और

क्रोध एक समयमें नहीं होते जैसे एक मनुष्य किसी स्त्रीमें अनुरक्त होता है तो वह अन्य स्त्रियोंमें विरक्त नही होता किन्तु उस समय उस स्त्रीमें लब्ध वृत्ति कहा जायगा इस्से उक्त परिणामों में संकर दोष नही आता इस सब कथनका अभिप्राय यह है कि परिणाम केवल गुणोमें होता है किन्तु गुणी में नहीं परिणाम का अर्थ है कि पूर्व गुणको परित्याग कर दूसरे गुणको धारण करना ॥ १३ ॥

तत्रशांतोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपातीध र्मी योग्यतावच्छिन्नाधर्मिणःशक्तिरेवधर्मः१४

सू० का प० । (तत्र) पूर्वोक्त चित्तपरिणाममें (शान्तोदिताव्यपदेश्य धर्म्मानुपाती धर्म्मी) शान्त और उदित धर्म्मसे युक्त धर्मी होता है (धर्म्मिणः योग्यतावच्छिन्नाशक्तिरेव धर्म्मः) धर्मी की योग्यतासे युक्त वा अनुसार जो शक्ति है उसही को धर्म्म कहते हैं ॥ १४ ॥

सू० का भा० पूर्वोक्त सूत्रमें जो चित्तका परिणामी शान्त और उदित धर्म्म हैं और धर्मी उनसे युक्त होता है उसही को धर्मी कहते हैं ॥ १४ ॥

सचफलप्रसवभेदानुमितसद्भावः एकस्यान्योन्यश्चपरिदृष्टः तत्र वर्तमानः स्वव्यापारमनुभवन्धर्मोधर्मान्तरेभ्यः शान्तेभ्यश्चाव्यपदेश्येभ्यश्चभिद्यतेयदातु सामान्येनसमन्वागतोभवतितदाधर्मिस्वरूपमात्रत्वात्कोसौकेनभिद्यं तत्रत्रयेखलुधर्मिणोधर्माः शांताउदिताअव्यपदेश्याश्चे तितत्रशान्तायेकृत्वाव्यापारानुपरताः सव्यापाराउदितास्ते चानागतस्यलक्षणस्यसमनन्तरोः वर्तमानस्यानन्तराअतीताः किमर्थमतीतस्यानन्तरानभवन्तिवर्त-

माना: पूर्वपश्चिमतायाअभावात् यथानागतवर्तमानयो: पूर्वपश्चिमतानैवमतीतस्यतस्मान्नातीतस्यास्तिसमनंतरस्तदनागतएवसमनन्तरोभवति वर्तमानस्येतिअथाव्यपदेश्या: क्वेसर्वं सर्वात्मकमितियथोक्तं जलभूम्यो: पारिणामिकं रसादिवैसारूप्यंस्थावरेषुदृष्टं तथास्थावराणां जङ्गमेषुजंगमाणांस्थावरेष्वित्येवं जात्यनुच्छेदेनसर्वंसर्वात्मकमिति देशकालाकारनिमित्तापबंधान्नखलुसमानकालमात्मनामभिव्यक्तिरितियएतेष्वभिव्यक्तानभिव्यक्तेषुधर्मेष्वनुयातीसामान्यविशेषात्मासोन्वयी धर्मीयस्यतुधर्ममर्ममात्रमेवेदं निरन्वयंतस्यभोगाभाव: कस्मात् अन्येनविज्ञानेनकृतस्यकर्मणोन्यत्कथंभोक्तृत्वे नाधिक्रियेत तत्स्मृत्यभावश्च नान्यदृष्टस्य स्मरणमन्यस्यास्तीतिवस्तु प्रत्यभिज्ञानाच्चस्थितोन्वयीधर्मीयोधर्मान्यथात्वमभ्युपगत: प्रत्यभिज्ञायते तस्मान्नेदंधर्ममात्रं निरन्वयमिति ॥ १४ ॥

भा० का प० । (सच फल प्रसव भेदानुमित सद्भाव:) और उस धर्मकी सत्ता भिन्न २ फलोंकी उत्पत्तिसे अनुमान की जाती है (एकस्यान्योन्यश्च परिदृष्ट:) एक धर्मका सद्भाव दूसरों में दीखता है (तत्र) उनमें से (वर्तमान: स्वव्यापार मनुभवन्) वर्तमान धर्म अपने व्यापार का अनुभव करता हुआ (धर्मान्तरेभ्यश्शान्तेभ्यश्चाव्यपदेश्येभ्यश्च भिद्यते) अन्य शान्त और अव्यपदेश्य धर्मों से छिन्न हो जाता है (यदानु) और जब (सामान्येन समन्वागतोभवति) सामान्य भावको प्राप्त होता है (तदा) तब (धर्मिस्वरूपम्) धर्मीका स्वरूप स्थिर रहता है (कोसौकेन भिद्येत)

यह कौन है और किस से छिन्न होता है (तत्र) उन में (ये धर्म्मिणो-धर्म्माः) जो धर्म्मो के धर्म्म (शान्ता उदिता अव्यपदेश्याश्चेति) शान्त उदित और अव्यपदेश्य हैं (तत्र शान्ता) इन तीनो धर्म्मोंमें से शान्त वे धर्म्म कहाते हैं (येव्यापारान् कृत्वा उपरताः) जो व्यापारों को करके निवृत्त होगये हों (सव्यापाराउदिताः) और जो व्यापार के युक्त है वे उदित कहाते हैं (तेचा नागतस्य लक्षणस्य समनन्तराः) वे अनागत-लक्षण परिणाम के समीपवर्ती होते हैं (वर्तमानस्यानन्तरा अतीताः) वर्तमान के सहचर अतीत होते हैं। (किमर्थमतीतस्यानन्तरा न भवन्ति वर्तमानाः) भूतके अनन्तर वर्तमान क्यों नहीं होते (पूर्व पश्चिमताया अभावात्) पूर्वता और पश्चिमताके अभावसे (यथा नागतवर्तमानयोः) जैसे अनागत और वर्तमान की (पूर्वपश्चिमता) पूर्व पश्चिमता है (नैव-मतीतस्य) वैसे अतीत की नहीं (तस्मान्नातीतस्यास्ति समनन्तरः) इस लिये अतीत की अनन्तरता नहीं है (तदनागत एव समनन्तरो भवति) इससे अनागत ही वर्तमान का समनन्तर कहाता है (अथा व्यपदेश्याः के) व्यपदेश्य कितने और कौन हैं (सर्वं सर्वात्मक मिति) सब सबके अन्तर्गत होतेहैं (यत्रोक्तम्) जिसमें यह कहा जाता है (जल भूम्योः पारिणामिकम्) जल और भूमिके परिणामसे उत्पन्न हुए (रसादिवैरूप्यम्) स्थावरेषु दृष्टम्) रस आदि का विषम रूप स्थावरोंमें देखा गया हैं (तथा स्थावराणाम् जंगमेषु जंगमानां स्थावरेषु) ऐसे ही स्थावरों का जंगमो में और जंगमोंका स्थावरों में (एवं जात्यनुच्छेदेन सर्वं सर्वात्मक मिति) इस रीतिसे जातिके सम्बन्धसे सबका परस्पर सम्बन्ध है देशकालाकार-निमित्ताय बंधान्नखलु समानकालमात्मनाभिव्यक्तिः) देश काल और निमित्तके बन्धनसे एक समय में प्रकाशित नहीं होते (एतेष्वभिव्यक्तान-भिव्यक्तेषु) इन अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्षो धर्मों में (अनुयाति) अनुगमन कर्ता है (सोन्वयी धर्म्मी) वह अनुगमन करनेवाला धर्म्मी कहाता है

(यस्यतु धर्म्ममात्र मेवेदं निरन्वयम्) जिसका धर्म्म ही सम्बन्ध रहित है (तस्य भोगाभावः) उसको भोगका अभावहै (कस्मात्) क्योंकि (अन्येन विज्ञानेन) दूसरे ज्ञानसे (कृतस्य कर्म्मणोन्यत्कथं भोक्तृत्वेनाधिक्रियेत) दूसरे किया हुए कर्म्म का अन्य क्यों कर भोक्ता हो सक्ता है (तत् स्मृत्यभावश्च) उससे स्मृति का अभावभी होगा (नान्यदृष्टस्य स्मरणमन्यस्यास्तीति) अन्यके देखे हुए का दूसरे को स्मरण नहीं हो सक्ता (वस्तुप्रत्यभिज्ञानाच्चस्थितोन्वयी धर्मी) पदार्थों की प्रत्यभिज्ञासे एक धर्मी सिद्ध होता है (यो धर्म्मान्यथात्वमभ्युपगतः) जो धर्मी के परिणामको प्राप्त होता (प्रत्यभिज्ञायते) भान होता है (तस्मान्नेदं धर्म्ममात्र निरन्वयमिति) इसकारण से धर्म्म मात्र अन्वय रहित नहीं है । १४ ।

भा० का भा० । वह धर्म्म और धर्मी भिन्न २ फल की उत्पत्ति से जाने जाते हैं और सब धर्म्म अन्योन्याश्रय होतेहैं जैसे वर्तमान धर्म्म अपने कार्य्यों को करता हुआ अव्यपदेश्य और शान्त धर्मों से परिवर्तित हो जाता है जब वर्तमान धर्म्म सामान्य रूपसे रहता है तब उसमें धर्मी अर्थात् आत्मा अपने यथास्थित रूपमें रहता है अब यहां पर प्रश्न होता है कि जो परिवर्तित होता है उसका लक्षण क्या है ? और किनसे वह परिवर्तित होता है । इसका उत्तर यह है कि शान्तधर्म्म वा गुण वे कहाते है जो अपने कार्य्य को करके निवृत्त हो गये हों और जिनका कार्य्य समाप्त न हुआ हो वह उदित कहाते हैं एवं अव्यपदेश्य व्यापार रहित होते हैं अर्थात् इनके व्यापारमें कभी परिवर्तन नहीं होता उदित धर्म्म अनागतके समीपवर्ती होते हैं अर्थात् योगीके जो अनागत लक्षण वा गुण हैं वे उदित धर्म्मवाले हैं क्योंकि वह अवश्यम्भावी होते हैं और वर्तमानके समनन्तर अर्थात् अवश्यभावी भूत धर्म्म होते हैं किन्तु अतीत से समनन्तर वर्तमान नहीं होते क्योंकि उनमें अवश्यम्भाविता (अर्थात् जरूर ही यह होंगे) नहीं होती — प्र० अव्यपदेश्य कौनसे धर्म्म हैं ? उ०

जो धर्म्म सब चराचर में पाये जाते हैं वह अव्यय देश्य है जैसे जल और पृथ्वी के पारिणामिक रसादि गुण सब स्थावर और जङ्गममें होते हैं और इन धर्मों में वर्तमान है वही सर्वान्वयी धर्मी आत्मा है अन्यथा अतीत धर्मों का स्मरण करना असम्भव होगा क्योंकि जिसने अपने ज्ञानसे कर्म किया था वह जब कोई न होगा तब अन्यके कर्मका आश्रय एक धर्मी अवश्य ही मानना योग्य है इससे यह भी सिद्ध हुआ कि की कोई धर्म सम्बन्ध रहित नहीं है । १४ ।

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वेहेतुः ॥ १५

सू० का प० । (क्रमान्यत्वम्) क्रमका परिवर्तन (परिणामान्यत्वे हेतुः) परिणाम के परिवर्तन में कारण है ॥ १५

सू० का भा० । उक्त परिणामों का हेतु क्रम है ।

एकस्यधर्मिणएकएवपरिणामइतिप्रसक्तेः क्रमान्यत्वस्यपरिणामान्यत्वेहेतुर्भवतीतितद्यथाचूर्णमृत्पिंडमृद्घटमृत्कपालमृत्कणमृदिति चक्रमः यो यस्यधर्मस्य समनंतरोधर्मः सतस्यक्रमः पिण्डःप्रच्यवतेघटउपजायतइतिधर्मपरिणामक्रमःलक्षणपरिणामक्रमोघटस्यानागतभावाद्वर्तमानभावःक्रमः तथापिण्डस्यवर्तमान भावादतीतभावःक्रमः नातीतस्यास्तिक्रमः कस्मात्पूर्वपरतायांसत्यांसमनन्तरत्वं मक्रमः तुनास्त्यतीतस्य तस्मात्द्वयोरेव लक्षणयोःक्रमः तथावस्थापरिणामोपिघटस्याभिनवस्यप्रान्तेपुराणताद्दृश्यतेसाचक्षणपरम्परानुपातिनाक्रमेणाभिव्यज्यमाना पराव्यक्तिं मापद्यतइतिधर्मलक्षणाभ्यां अविशिष्टोयं तृतीयः

होते हैं अब जिस योगी को योग के साधन प्राप्त हुए हैं उसको योगके सब साधन प्राप्ति की इच्छावे विषयों के त्याग का वर्णन करते हैं। १५

परिणामत्रय संयमादतीतानागत ज्ञानम् ॥ १६

सू० का प० (परिमाणत्रय संयमात्) उक्त तीन परिणामों के संयमसे (अतीतानागत ज्ञानम्) भूत और भविष्यत् का ज्ञान होता हैं। १६

सू० का भा० तीन परिणामों के संयम से भूत और भविष्यत् काल का ज्ञान होता है। १६

धर्मलक्षणावस्थापरिणामेषु संयमाद्योगिनां भवत्यतीतानागतज्ञानन्धारणाध्यान समाधित्रय मेकत्र संयम उक्तास्तेन परिणामत्रयं साक्षात्क्रियमाणमतीतानागत ज्ञानन्तेषु संपादयति ॥ १६ ॥

भा० का प० (धर्मलक्षणावस्था परिणामेषु) धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम और अवस्था परिणामों में (संयमात्) संयम से (योगीनाम्भवत्यतीतानागत ज्ञानम्) योगीओं को होता है भूत और भविष्यत् का ज्ञान (ध्यान धारणा समाधित्रयमेकत्र संयम उक्तः) संयम का लक्षण प्रथम लिख आये हैं कि ध्यान धारणा और समाधि की एकता को संयम कहता हैं (तिन परिणामत्रयं साक्षात् क्रियमाणम्) इससे यह सिद्ध हुआ कि समाधि में तीनों परिणामों के साक्षात् अर्थात् स्पष्ट दीखने से (अतीतानागत ज्ञानंतेषु सम्पादयति) भूत और भविष्यत् ज्ञान को सम्भव करता है ॥१६

भा० का भा० धर्म्म परिणाम लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम के संयम से योगी को भूत और भविष्यत् काल का ज्ञान होता है, संयम का अर्थ पूर्व ही लिख चुके हैं अर्थात् ध्यान धारणा और समाधि के एकत्र होनेको संयम कहते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि उक्त परिणामों को संयम से स्थिर करने से भूत और भविष्यत् काल का ज्ञान होता है। १६

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकर स्तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरुत ज्ञानम् ॥ १७

सू० का प० (शब्दार्थ प्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरः) शब्द, अर्थ और ज्ञान के एक दूसरे में मिले रहने से संकर अर्थात् घनिष्ट मेल है (तत्प्रविभाग संयमात् सर्व भूत रुतज्ञानम्) उसके विभाग में संयम से सब प्राणियों की वाणी का ज्ञान होता है। १७

सू० का भा० शब्द अर्थ और ज्ञान में परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध होने से शब्द संकरता है और उन के विभागमें संयम करने से प्राणी मात्र की भाषा का ज्ञान होता है। १७

तत्र वाग्वर्णेष्वेवार्थवती श्रोत्रञ्च ध्वनिपरिणाममात्रविषयं पदं पुनर्नादानुसंहार बुद्धिनिर्ग्राह्यमिति वर्णा एक समया संभवित्वात् परस्पर निरनुग्रहात्मानस्ते पदमसंस्पृश्यानुपस्थाप्या विर्भूतास्तिरोभूताश्चेति प्रत्येकमपदस्वरूपा उच्यन्ते वर्णः पुनरेकैकः पदात्मा सर्वाभिधानशक्ति प्रचितः सहकारि

वर्णान्तर प्रतियोगित्वाद्वै च्चरूप्य मिवापन्नः पूर्वस्योत्तरेणोत्तरस्य पूर्वेण विशेषेवस्थापित इत्येवं बहवो वर्णाः क्रमानुरोधिनोर्थ संकेतेनावच्छिन्ना इयन्त एते सर्वाभिधानशक्ति परिवृतागकारौ कारविसर्जनीयाः सा स्नादिमन्तमर्थंद्योतयन्तीति तदे तेषामर्थ संकेतेनावच्छिन्नानामुप संहृतध्वनि क्रमाणां य एको बुद्धिनि-र्भासस्तत्पदं वाचकं वाच्यस्य संकेत्यते तदेकं पदमेकबुद्धिविषय एक प्रयत्नाक्षिप्तमभागक्रममवर्णं वौद्धमन्त्यवर्ण प्रत्ययव्यापारो-पस्थापितं परत्र प्रतिपिपादयिषयावर्णैरेवाभिधीयमानैः श्रुय-माणैश्च श्रोतृभिरनादि वाग्व्यवहारवासनानुविद्धयालोकबुद्ध्या सिद्धवत्सम्प्रतिपत्त्याप्रतीयते तस्य संकेतबुद्धितः प्रविभाग एतावतामेवं जातीय कोऽनुसंहार एकस्यार्थस्य वाचक इति संकेतस्तु पदपदार्थयोरितरेतराध्यासरूपः स्मृत्यात्मको योयं शब्दः सोऽयमर्थोयोर्थः स शब्द इत्येवमितरेतराध्यासरूपः संकेतो भवतीत्येव मेते शब्दार्थ प्रत्यया इतरेराध्यासात्सङ्कीर्णा गौरिति शब्दो गोरित्यर्थो गौरितिज्ञानं य एषां प्रविभागज्ञः स सर्ववित् सर्वपदेषुचास्तिगम्यते। न सत्तामपदार्थो व्यभि-चरतीति वाक्याशक्तिहि च इत्युक्तोस्तीति तथा नह्यसाधनाक्रि-यास्तीति तथा च पचतीत्युक्ते सर्वकारकाणामाक्षेपो निय-मार्थोनुवादः कर्तृकरणकर्मणांचैवाग्नि तण्डुलानामिति दृष्टञ्च

दृष्टं च वाक्यार्थे पदरचनं श्रोत्रियश्छन्दोधीते जीवति प्राणान् धारयति तत्र वाक्ये पदं पदार्थाभिव्यक्तिस्ततः पदं प्रविभज्य व्याकरणीयं क्रियावाचकं कारकवाचकं वा अन्यथा भवत्यश्वो जापय इत्येवमादिषु नामाख्यातसारूप्यादनिर्ज्ञातं कथं क्रियायां कारकेवाव्याक्रियतेति तेषां शब्दार्थप्रत्ययानां प्रविभागः तद्यथा श्वेतते प्रासादइति क्रियार्थः श्वेतः प्रासादइति कारकार्थः शब्दः क्रियाकारकात्मातदर्थः प्रत्ययश्च कस्मात् सोऽयमित्यभिसम्बन्धादेकाकारएव प्रत्ययः संकेतइति यस्तु श्वेतोर्थः सशब्दप्रत्ययोरालम्बनीभूतः सहिस्वाभिरवस्थाभिर्विक्रियमाणो न शब्दसहगतो न बुद्धिसहगतः एवं शब्दएवं प्रत्ययो नेतरेतरसहगतइति प्रत्ययार्थोन्यथाशब्दोन्यथा प्रत्ययइति विभागएवं तत्प्रविभाग संयमाद्योगिनः सर्वभूतरुतज्ञानं संपद्यते इति ॥ १७ ॥

भा० का प० (तत्र वागक्षरेष्वेवार्थवती) इससें यह विचार है कि वाणी अक्षरोंसें अर्थवती होती है (श्रोत्रञ्च ध्वनिपरिणाममात्रविषयम्) कर्ण तो केवल ध्वनिके परिणामको ग्रहण करता है (पदं पुनर्नादानुसंहारबुद्धिनिर्ग्राह्यम्) ऐसेही नादके पश्चात् जो बुद्धिसे ग्रहण किया जाता है उसे पद कहते हैं (वर्णाएकसमयासम्भवित्वात्) अक्षर एकसमय में उत्पन्न नहीं हो सक्ते हैं (परस्परं निरनुग्रहात्मानः) इसहीसे एकवर्ण दूसरे का सहायक

नहीं हो सक्ता है (ते पवनसूक्ष्मानुपस्थाप्याविर्भूतास्तिरोभूताश्चेति) वर्ण उच्चारित होकर नष्ट हो जाते हैं इससे वह पदको स्पर्श नहीं कर सक्ते हैं इसही कारणसे उनका ज्ञानबुद्धिमें स्थापन करने योग्य हैं एवम् वर्णों का गुप्त होना और प्रकट होना होता है (प्रत्येकमपदस्वरूपा उच्यन्ते) एक वर्ण कदापि पद नहीं हो सक्ता है (वर्णः पुनरेकैकः पदात्मा किन्तु फिर यहभी है कि एक एक वर्णही पदका आत्मा है (सर्वाभिधानशक्तिप्रचितः) सब कथनकी शक्तिसे युक्त (सहकारी वर्णान्तरप्रतियोगित्वात्) अपने समीपवर्ती दूसरे वर्णके धर्मको संग्रह करता है (वैश्वरूप्यमिवापन्नः) भिन्न रूपको धारण किये हुए (पूर्वश्चोत्तरेणोत्तरश्च पूर्वेण विशेषेऽवस्थापितः) पूर्व वर्ण उत्तरसे और उत्तरवर्ण पूर्वसे ज्ञानमें स्थापन किये जाते हैं (इत्येवं बहवो वर्णाः) इस रीतिसे अनेक वर्ण (क्रमानुरोधिनोऽर्थसंकेतेनावच्छिन्नाः) क्रमसे अनुरोधवाले अर्थ और संकेतसे युक्त हैं (एते सर्वाभिधानशक्तिपरिवृताः) यह वर्ण कथनकी सब शक्तियोंसे पूर्ण होते हैं (गकारौकार विसर्जनीयाः) जैसे गौशब्दमें गकार औकार और विसर्ग (सास्नादिमन्तमर्थं द्योतयन्ति) सास्ना जो गौके गलेमें चर्म लटका करता है उससे युक्त जो पशुविशेष है उस अर्थको प्रकाशित करते हैं (तदेतेषामर्थसंकेतावच्छिन्नानामुपसंहृतध्वनिक्रमाणां यएकोबुद्धिनिर्भासः) इस अर्थ संकेतोंसे युक्तवर्णों के ध्वनिक्रमका जो बुद्धिमें ज्ञानका उत्पन्न करानेवाला है वह शब्दोंका संकेत है (वाच्यस्य संकेत्यते) जिससे वाच्य संकेतित होता है (तदेकं पदमेकबुद्धिविषयम्) सो वह संकेतित पद एक बुद्धिसे ग्रहीत होता है (एकप्रयत्नाक्षिप्तमभागमक्रमवर्णंबौद्धम्) एक वर्ण जो एक प्रयत्न और एकही क्रम से बुद्धिद्वारा ग्रहीत होता है (अन्त्यवर्ण प्रत्ययव्यापारोपस्थापितं) अन्त्यवर्ण

की आकांक्षासे जो स्थापित किया जाता है (परन्तु दूसरे समयमें (प्रतिपिपादयिषया) प्रतिपादनकी इच्छासे (वर्णैरेवाभिधीयमानैः श्रूयमाणैश्चार्थैः) जो वर्ण कहे जाते हैं उनके द्वारा या जो सुने जाते हैं उनके द्वारा (अनादिवाग्व्यवहारवासनानुविद्धयालोकबुद्ध्यासिद्धवत् संप्रतिपत्त्या प्रतीयते) अनादिवचनकी वासनासे युक्त जो बुद्धि उसके द्वारा सिद्धसे प्रतीत होते हैं (तस्य संकेतबुद्धितः प्रविभागः) संकेतबुद्धिसे उसका विभाग होता है (एतावता) इससे यह सिद्ध हुआ कि (जातीयकोगुरुः हारएकस्यार्थस्य वाचकइति) जातीय शब्दएकही अर्थका वाचक रहता है (संकेतस्तु पदपदार्थयोरितरेतराध्यासरूपः स्मृत्यात्मकः) संकेत तो एक दूसरे में अध्यास रूप केवल स्मरण करानेवाला होता है (योऽयं शब्दः सोऽयमर्थोयोऽर्थः सशब्दः) जो शब्द है सो अर्थ है जो अर्थ है वह शब्द है (इत्येवमितरेतराध्यासरूपः) इसी प्रकार एक दूसरे में अध्यासित (संकेतो भवति) संकेत कहाता है (इत्येवमेते शब्दार्थप्रत्यया इतरेतराध्यासात् संकीर्णाः) इस प्रकार से शब्द अर्थ और ज्ञान एक दूसरे में अध्यासित होनेके कारण संकीर्ण अर्थात् संयुक्त मालूम पड़ते हैं (गौरिति शब्दोगौरित्यर्थो गौरिति ज्ञानमेषां प्रविभागज्ञः ससर्ववित् सर्वपदेषु चास्तिगम्यते) गौशब्दका अर्थ यानी व्यक्ति इन दोनोंका ज्ञान अर्थात् बोध जो इनके विभागको जानता है वही सब पदोंके ज्ञानको प्राप्त होता है (नसत्तां पदार्थोव्यभिचरतीति) कोई पदार्थ अपनी सत्ताको नहीं छोड़ता (वाक्यशक्ति ह्युच्चद्युत्तेस्तीति) यद्यपि इस ऐसा कहनेसे वाक्यकी कोई शक्ति नहीं है किन्तु पदशक्ति अवश्य है (तथानह्यसाधनाक्रियास्तीति) साधनके रहित कोई क्रिया नहीं होती (तथाच) जैसे (पचतीत्युक्तेः सर्वकारकाणामाक्षेपेनियमार्थोनुवादः) पचति

क्रियाके उच्चारण करनेही से सब कारकोंका आक्षेप नियमसे होता है (कर्तृकरणकर्म्मणां चैत्राग्नितंडुलानमिति) कर्ताकरण और कर्म्म चैत्र ना मक पुरुष कर्त्ता अग्निकरण तंडुल कर्म्मका आक्षेप पचन्यही किया जाता है (दृष्टश्च) ऐसाही शास्त्रोंमें देखा जाता है (वाक्यार्थं पदरचनं) वाक्यके अर्थ में पद रचना (श्रोत्रियश्छन्दोधीते) इस पाणिनीयसूत्र में अध्ययम क्रियाके आश्रयसेही श्रोत्रियकर्ताकानिपातन किया है (जीवति प्राणान् धारयति) इत्यादि क्रियाओंमेंभी कर्त्ताका आक्षेप करना पड़ता है (तत्र वाक्येपदपदा र्थाभिव्यक्तिः) इन वाक्योंमें पद और पदार्थों का प्रकट करना अपेक्षित है (ततः पदं प्रविभज्यव्याकरणीयम्) इस लिये पदको पृथक् करके प्रकाश करना चाहिये (क्रियावाचकं कारकवाचकं वा) यह पद क्रियावाचक है वा कारकवाचक है (अन्यथा) यदि ऐसा विभाग न किया जायगा तो (भवत्यश्वोजापयइत्येवमादिषु नामाख्यातसारूप्यादनिर्ज्ञातम्) इस वाक्यमें प्रातिपदिक और क्रियाके समान रूप होनेसे कुछ बोध न होगा (कथं क्रियायां कारके व्याक्रियते तेषां शब्दार्थप्रत्ययानां प्रविभागः) क्रिया और कारकमें कैसे विभाग प्रतीत होगा (तद्यथा) जैसे (श्वेततेप्रासाद इति) तेरी अटारी सफेद है (क्रियार्थश्वेतः प्रासादइति कारकार्थः) श्वेतश्च क्रियार्थक है और प्रासाद कारकार्थ है (शब्दः क्रियाकारकात्मा) क्रिया और कारकात्मक शब्द होता है (तदर्थं प्रत्ययश्च) उसका अर्थ और ज्ञानभी (कस्मात्) क्योंकि (सोयमित्यभिसंबन्धादेकाकार एव प्रत्ययः संकेते) यह वही है इस सम्बन्धसे शब्दज्ञान एकही रूपका है संकेत में (यस्तु श्वेतोर्थः सशब्दप्रत्ययोरालम्बनीभूतः) जो श्वेत अर्थ है वह शब्द और प्रत्ययके आश्रित है (सहि स्वाभिरवस्थाभिर्विक्रीयमाणो न शब्दसहगतो न बुद्धि

सहगत:) वह अपनी अवस्थाओंसे विकारवान् होता है न शब्दके साथसे न बुद्धिके साथसे (एवं शब्दस्तं प्रत्ययोनेतरेतर सह गत इति) इस प्रकारसे शब्द इस प्रकारसे प्रत्यय दोनों आपसमें मिले हुए नहीं है (अन्यथार्थो ऽन्यथा शब्दोन्यथा प्रत्यय इति) शब्द अर्थ और ज्ञान यह तीनों अलग२ हैं (एवं तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरुतज्ञानं संपद्यते) इस प्रकारसे शब्दके विभाग में संयम करनेसे सर्वप्राणियोंके शब्दका ज्ञान होता है ॥ १७

भा० का भा० इस स्थल पर यह विचार करना आवश्यक है कि वाणी अक्षरों में अर्थवती होती है कान उसकी धुनि मात्रको ग्रहण करते हैं एवं बुद्धि अर्थग्राहिणी है यद्यपि एक वर्ण दूसरे वर्णसे उत्पन्न होतेही विनष्ट हो जाता है और इसीवास्ते पहिले अक्षरका अर्थ दूसरे अक्षरसे नहीं सम्बन्ध रखता तथापि बुद्धिमें उनका संस्कार स्थिर होता जाता है इसीसे अर्थ बोधक वर्ण होते हैं और वर्णही पदका आत्मा है जब योगी शब्दोंको प्रकृति प्रत्यय सहित जान कर संयम करता है तब उसे सब प्राणियोंकी वाणी समझ में आने लगती है ॥ १७

संस्कारसाक्षात् करणात्पूर्वजाति ज्ञानम् ॥ १८ ॥

सू० का प० (संस्कार साक्षात्करणात्)] संस्कारों के प्रत्यक्ष होने से (पूर्वजातिज्ञानम्) पूर्व जन्म का ज्ञान होता है ॥ १८ ॥

सू० का भा० संस्कारों के प्रत्यक्ष होने से पूर्व जन्मों का ज्ञान होता है ॥ १८ ॥

द्वये खल्वमीसंस्कारा: स्मृति क्लेशहेतवो वासनारूपा विपाकहेतवो धर्माधर्मरूपास्ते पूर्वभवाभि संस्कृता: परिणाम चेष्टानिरोधशक्ति जीवनधर्मवदपरिद्दष्टाश्चित्तधर्मास्तेषु संयम: संस्कार साक्षात्क्रियायै समर्थ: न च देशकाल निमित्तानुभवैर्विना तेषामस्ति साक्षात्करणन्तदित्थं संस्कार साक्षात्करणात् पूर्वजाति ज्ञानमुत्पद्यते योगिन: परत्राप्येवमेव संस्कार साक्षात्करणात् परजाति संवेदनं अत्रेदमाख्यानं श्रूयते भगवतो जैगीषव्यस्य संस्कार साक्षात्करणादश सुमहासर्गेषु जन्मपरिणामक्रम मनुपश्यतो विवेक जंज्ञानं प्रादुर भवत् अथ भगवानावट्यस्तमुवाच दश महासर्गेषु भव्यत्वाद-नभिभूत बुद्धिसत्वे नत्वया नरकतिर्य्यग्गर्भसंभवं दु:खं संपश्यता देवमनुष्येषु पुन: पुनरुत्पद्यमानेन सुखदु:खयो: किमधिक-

मुपलब्धमिति भगवन्तमावट्यं जैगीषव्य उवाच दशसुमहासर्गेषु भव्यत्वाद नभिभूतबुद्धिसत्वेन मया नरकतिर्य्यग्भवं दुःखं संपश्यता देवमनुष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन यत्किंचिदनुभूतन्तत् सर्वं दुःखमेव प्रत्यवैमि भगवानावट्य उवाच यदि दमायुष्मतः प्रधानवशित्वमनुत्तमं च सन्तोषसुखं किमिदमपि दुःखपक्षेनिःक्षिप्तमिति भगवाञ्जैगीषव्य उवाच विषयसुखापेक्षयै वेदमनुत्तमं सन्तोष सुखमुक्तञ्जैव ल्यापेक्षया दुःखमेव बुद्धिसत्वस्यायं धर्मस्त्रिगुणः त्रिगुणाश्च प्रत्ययोहेयपक्षे न्यस्त इति दुःखस्वरूपं तृष्णातं तु तृष्णा दुःखसन्तापापगमानुप्रसन्नमवाध सर्वानुकूलं सुखमिदमुक्तमिति प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानं प्रत्यये स्वयमात्प्रत्ययस्य साक्षात्कारणात्ततः परचित्तज्ञानं न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् रक्तप्रत्ययं जानात्यमुष्मिन्नालंव रक्तमिति न जानाति परप्रत्ययस्य यदालम्बनं तद्योगिचित्तेन नालम्बनीकृतं परप्रत्यय माचन्तु योगीचित्तस्यालम्बनीभूतमिति ॥ १८ ॥

भा० का प० (द्वये खल्वमी संस्काराः) संस्कार दो प्रकारके होते हैं (स्मृति क्लेशहेतवोवासनारूपाः) स्मृति और पंचक्लेशोंके कारण एक वासना रूप संस्कार होते हैं (विपाक हेतवो धर्माधर्म रूपाः) और दूसरे संस्कार वे हैं जिनका कारण विपाक अर्थात् फल है और वह धर्माधर्म रूप होते हैं। (ते पूर्वभवाभि संस्कृताः) यह संस्कार पूर्वजन्मके कर्मों के होते हैं (परिणाम

चेष्टानिरोधशक्ति जीवन धर्म्मवदपरि दृष्टाश्चित्तधर्म्माः) परिणाम, चेष्टा, शक्ति, जीवन, गुणो के समान चित्त के अप्रत्यक्ष गुण हैं। (तेषु संयमः) उन में संयम करने से योगी (संस्कार साक्षात् क्रियाये समर्थः) संस्कारों के प्रत्यक्ष करने में समर्थ होता है। (न च देशकाल निमित्तानुभवैर्विना तेषामस्ति साक्षात् करणम्) देशकालनिमित्त, और अनुभव के विना उन का साक्षात् नही होता (तदित्थम्) इस रीति से (सँस्कारसाक्षात् करणात्पूर्वजाति ज्ञानमुत्पद्येत योगिनः) संस्कारों के प्रत्यक्ष होने से योगी को पूर्व जन्म का ज्ञान उत्पन्न होता है (परत्राप्येवमेव) ऐसे ही परजन्म का भी (संस्कार साक्षात् करणात् परजाति संवेदनम्) संस्कारों के प्रत्यक्ष अर्थात् स्मरण होने से परजन्म अर्थात् भविष्यत् जन्म का ज्ञान होता है (अत्रेदमाख्यानं श्रूयते) इस विषय में यह इतिहास सुन्ते हैं (भगवतो जैगीषव्यस्य) भगवान् जैगीषव्य ऋषि को (संस्कारसाक्षात् करणात्) संस्कारों के प्रत्यक्ष करने से (दशसुमहासर्गेषु जन्मपरिणाम क्रममनुपश्यतो विवेकजं ज्ञानं प्रादुर भवत्) दशसृष्टियों में जन्मकी परिणाम और क्रम भली भांति प्रत्यक्ष करने से विवेक ज्ञान उत्पन्न हुवा था। (अथ भगवानावट्यस्तनुधरस्तमुवाच) इस के अनन्तर भगवान् आवट्य ऋषि ने प्रश्न किया (दशसुमहासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूतबुद्धिसत्वेन त्वया नरक तिर्य्यग्गर्भं दुःखं सम्पश्यता देवमनुष्येषु पुनः पुनः उत्पद्यमानेन सुख दुःखयोः किमधिकमुपलब्ध मिति) कि आप इन दशसृष्टियों में योगबल से बुद्धि और बलकी स्थिर दशा में नरक स्वर्ग और तिर्य्यक आदि योनिओं में, देवता और मनुष्यादि शरीरो में भ्रमण करते रहे उन सब में आपने कौन कौन से विशेष सुख और दुःख सहे उन का वर्णन कीजिये (भगवन्तमावट्य जैगीषव्य उवाच) उन आवट्य ऋषि से जैगीषव्य बोले (दशसुमहासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूत बुद्धिसत्वेन मया नरक तिर्य्यग्भवं दुःखं सम्पश्यता देवमनुष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन

यत्किं चिदनुभूतन्तत्सर्वं दुःखमेव प्रत्यवैमि) कि दशसृष्टियों में बार बार जन्म ले कर योगबल से अव्याहत ज्ञान और बुद्धि के द्वारा नरक स्वर्ग और देव और मनुष्यादि शरीरों में जो कुछ भोगा उस सब को मैं दुःख ही समझता हूं । (भगवानावद्य उवाच) फिर आवद्य ऋषि बोले (यदि दमायुष्मतः प्रधानवशित्वमनुत्तमं च सन्तोषसुखं किमिदमपि दुःखपक्षेनिःक्षिप्तमिति) जो मनुष्य का इन्द्रियों का निरोध करना और सन्तोषरूपी महोत्तम सुख है उस को भी आपने दुःख की श्रेणी ही में प्रविष्ट किया ? (भगवान् जैगीषव्य उवाच) भगवान् जैगीषव्य ऋषि बोले (विषय सुखापेक्षयैवेदमनुत्तमं सन्तोषसुखमुक्तं कैवल्यापेक्षया दुःखमेव) सन्तोष को विषय सुखकी अपेक्षा में अनुत्तम सुख कहा जाता है किन्तु कैवल्य सुख की अपेक्षा में तो वह दुःख ही है (बुद्धिसत्वस्यायं धर्म्मः त्रिगुणः) बुद्धि का धर्म्म तीन गुणयुक्त होता है (त्रिगुणश्च प्रत्ययः) और ज्ञान भी त्रिगुणात्मक होता है (हेयपक्षेन्यस्त इति) हेय अर्थात् सांसारिक विषय के पक्ष में नियुक्त है (दुःखस्वरूपतृष्णातं तु तृष्णापगमानुप्रसन्नमबाधसर्वानुकूलसुखम्) तृष्णा दुःखरूप है योगी को तृष्णारूप दुःख प्रसन्नता युक्त होने से छोड़ देती है और सब के अनुकूल जो जो सुख हैं वह प्राप्त होता है (प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्) प्रत्यय अर्थात् दूसरे के चित्त का ज्ञान होता है (प्रत्यये संयमात्) अर्थात् प्रत्यय के साक्षात् करने से (परचित्तज्ञानम्) दूसरे मनुष्यों के चित्त का ज्ञान होता है (तत्सालम्बनम् तस्याविषयीभूतत्वात्) वह चित्त आश्रय सहित होता है क्योंकि वह किसी का विषय नहीं है । (रक्तं प्रत्ययं जानात्यमुष्मिन्नालम्बने रक्तमिति) जिस आलम्बन में प्रत्यय का ज्ञान होय उसे रक्त प्रत्यय कहते हैं (न जानाति परप्रत्ययस्य यदालम्बनम्) जो परप्रत्यय को नहीं जानता (तद्योगिचित्ते नालम्बनीकृतम्) जो अन्य किसी को परप्रत्यय नहीं होता वह योगी के चित्त को परप्रत्यय होता है । (प्रत्ययमालन्तु योगीचित्तस्यालम्बनीभूतमिति) क्योंकि जितने ज्ञान हैं वह सब योगी के चित्त के आश्रय से रहते हैं ॥ १८ ॥

भा० का भा० पूर्व कर्म्म के दो प्रकार के संस्कार होते हैं एक वासना रूप दूसरे विपाकरूप वासना रूप वे संस्कार कहाते हैं जो स्मृतिपूर्वक क्लेश से उत्पन्न होते हैं और विपाक रूप उन्हें कहते हैं जो पूर्व-कर्मों के फल धर्म्म वा अधर्म्म हैं योगी को समाधि द्वारा जब यह संस्कार प्रत्यक्ष होते हैं। तब उसे पूर्व जन्म का ज्ञान होता है जब योगी को पर संस्कारों का परिज्ञान होता है तब उसे परजन्म का भी परिज्ञान होता है इस में एक दृष्टान्त है कि जैगीषव्य ऋषि को योगाभ्यास करते हुवे दश कल्पों के जन्मो का स्मरण हुआ था उन से एक समय आवट्य ऋषिने प्रश्न किया था कि योग के प्रताप से आप की बुद्धि और ज्ञान विनष्ट नहीं हुआ था ऐसी ज्ञानमय अवस्था में आपने अनेक योनिओं में गमनागमन किया उन में आप को जो सुख वा दुःख प्राप्त हुवा उस का मुझ से वर्णन कीजिये? इस प्रश्न के उत्तर में जैगीषव्य ऋषिने कहा कि मैंने इन दश कल्पों में जितने जन्मधारण किये उन सब में मुझे दुःख ही दुःख मिले सुख का लेश भी प्राप्त न हुआ, फिर आवट्य ऋषिने प्रश्न किया कि सन्तोषादि जो पूर्ण सुख कहे जाते हैं उन को आपने दुःख किस रीति से कहा? जैगीषव्य ऋषिने इस का उत्तर दिया कि सन्तोषादि जो सुख कहाते हैं वह केवल सांसारिक दुःख की अपेक्षा ही सुख हैं, किन्तु कैवल्य सुख की अपेक्षा वह भी दुःख ही हैं जीव के धर्म्म त्रिगुणात्मक हैं और सांसारिक विषयों में त्रिगुणात्मक ज्ञान भी होता है तृष्णा दुःखरूप ही है जब कि दुःखरूप तृष्णा योगी के चित्तसे दूर हो जाती है तब उस का चित्त प्रसन्न हो जाता है तब योगी को पर चित्त का ज्ञान भी हो जाता है॥ १८॥

विशेष—किसी किसी पुस्तक में यह दो सूत्र अधिक हैं "प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्" इस का अभिप्राय यह है कि प्रत्यय के संयम से परचित्त स्थित ज्ञान का बोध होता है "नचसालम्बनम् तस्या विषयीभूतत्वात्"

योगी का पर चित्तज्ञान आलम्बन सहित नहीं होता क्योंकि मुख विकाशादि से वह ज्ञान नहीं हो सकता जो योगी को होता है।

कायरूपसंयमात्तद् ग्राह्यशक्तिस्तम्भेचक्षुःप्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्धानम् ॥१६॥

सू०काप० (कायरूपसंयात्) कायगत रूप के संयम से (तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे) उस की ग्राह्यशक्ति का स्तम्भ होता है (चक्षुःप्रकाशासम्प्रयोगे) नेत्र के प्रकाश का संयोग नहीं होता (अन्तर्द्धानम्) योगी को अन्तर्द्धान होता है ॥ १६ ॥

सूत्रकाभा० कायागत रूप में संयम करने से उस की शक्ति का स्तम्भ होता है और शक्तिस्तम्भ होने से नेत्र के प्रकाश का संयोग नहीं होता और उस्से योगी का अन्तर्द्धान सिद्ध होता है ॥ १६ ॥

कायरूपे संयमाद्रूपस्य याग्राह्याशक्तिस्तां प्रतिवध्नाति ग्राह्यशक्ति स्तम्भेसति चक्षुः प्रकाशासंयोगेऽन्तर्द्धान मुत्पद्यते योगिनः एतेन शब्दाद्यंतर्द्धानमुक्तं वेदितव्यम् ॥ १६ ॥

भा० काप० (कायरूपे संयमात्) काया के रूप में संयम करने से (रूपस्ययाग्राह्याशक्तिः) रूप की जो ग्राह्यशक्ति है (तां प्रतिवध्नाति) उस का निरोध करता है (शक्तिस्तम्भे सति) नेत्र से जो दृश्यरूप शक्ति ग्रहण की जाती है (चक्षुः प्रकाशासंयोगे) नेत्रों में जो देखने का प्रकाश है उस के संयोग न होने से (अन्तर्द्धानमुत्पद्यते) अन्तर्द्धान अर्थात् दूसरे को न दिखाई देना उत्पन्न होता है (योगिनः) योगी का (एतेन) इस से (शब्दांत-

र्धान सुक्तम्) शब्दान्तर्धान आदि पांच प्रकार का अन्तर्धान (विदितव्यम्) समझनेयोग्य है ।

भा० काभा० जब योगी शरीर के रूप का संयम करता है तब उस के शरीर के रूप की ग्राह्यशक्तिस्तम्भित हो जाती है तब किसी के नेत्रों का प्रकाश उस के शरीर को स्पर्श नहीं कर सक्ता, इस कारण से योगी का शरीर अन्तर्हित हो जाता है ॥ १९ ॥

विशेष यह एक स्वाभाविक बात है कि नेत्र इन्द्रिय की शक्ति जब किसी कारण से प्रतिबन्धित हो जाती है तब उस को सन्मुख रक्खा पदार्थ भी नहीं दीखता जैसे इन्द्रजाल का खेल करने वाले लोग अनेक पदार्थों के संयोग और क्रिया कौशल से दर्शकों के नेत्रों को स्तम्भित कर देते हैं ऐसे ही ऐन्द्रजालिक लोगों के परम गुरु योगीओं का अन्तर्धान होना कुछ आश्चर्यजनक नहीं है, कई एक पुस्तकों में "एतेन शब्दान्तर्धानमुक्तम्" यह भिन्न सूत्र लिखा है, किन्तु जो पुस्तक श्रीयुत स्वा० दयानन्द सरस्वती जीने काशी में मुद्रित कराया था उस में यह भाष्य का पाठ लिखा है अतएव हमने भी इस की भिन्न व्याख्या नहीं की—१९

सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्मतत्सं यमादपरान्त ज्ञानं अरिष्टेभ्योवा ॥२०॥

सूत्रकाप० (सोपक्रमं निरुपक्रमंच कर्म) सोपक्रम और निरुपक्रम जो दो प्रकार के कर्म हैं (तत् संयमात्) उन में संयम करने से (अपरान्तज्ञानम्) मृत्यु का ज्ञान होता है (वा अरिष्टेभ्यः) अथवा दुःखों से मृत्यु का ज्ञान होता है ॥ २० ॥

सू० का भा० सोपक्रम और निरुपक्रम कर्मों में संयम करने से अथवा दुखों से जोगी को मृत्यु का ज्ञान होता है ॥ २० ॥

आयुर्विपाकं कर्मद्विविधं सोपक्रमं निरुपक्रमं तत्र यथार्द्रं वस्त्रं वितानितं लघीयसाकालेन शुष्येत् तथा सोपक्रमं यथा च तदेव सम्पिण्डितं चिरेण संशुष्येत् एवन्निरुपक्रमं यथावाग्निः शुष्केकक्षे मुक्तवातेन समन्ततोयुक्तः क्षेपीयसाकालेन दहेत्तथा सोपक्रमं यथा वासएवाग्निस्तृणराशौ क्रमशोवयवेषुन्यस्तश्चिरेण दहेत्तता निरुपक्रमन्तदैकभविकमायुष्करंकर्मद्विविधं सोपक्रमं च तत्संयमादपरांतस्य प्रापणस्य ज्ञानमरिष्टेभ्योवेति त्रिविधमरिष्ठमाध्यात्मिकमाधिभौतिमाधिदैविकं चेतितत्राध्यात्मिकं घोषं स्वदेहेपिहितकर्णो नशृणोतिज्योतिर्वानेत्रेऽवष्टब्धे न पश्यतितथा धिभौतिकं यमपुरुषान्पश्यति पितृ न तीतानकस्मात्पश्यति आधिदैविकं स्वर्गमकस्मात् सिद्धान्वापश्यति विपरीतं वासर्वमिति अनेनवाजानात्यपरान्तं सरवामुपस्थितमिति ॥ २० ॥

भा० का प० (आयुर्विपाकं कर्मद्विविधम्) आयु अर्थात् जीवन जिस का फल है वह कर्म दो प्रकार का है, (सोपक्रमं निरुपक्रमं च) सोपक्रम और निरुपक्रम उपक्रम का अर्थ है आरम्भ वा चलना (तत्र) उन दोनों में (यथा जैसे आर्द्रं वस्त्रं विजामितं लघीयसा कालेन शुष्येत्) जल से भीगे वस्त्र को निचोड़ कर फैलाने से बहुत ही थोड़े काल में वह वस्त्र सूख जाता है (सोपक्रमम्) ऐसे ही सोपक्रम कर्म बहुत शीघ्र फल जनक होता है (यथा) और जैसे (तदेव सपिण्डीभूतं चिरेण शुष्येत्) वही वस्त्र पिण्डवत् रख देने से अधिक समय में सूखता है (एवम् निरुपक्रमम्) ऐसे

ही निरुपक्रम कर्म्म विलम्ब से फलदायक होता है (यथावा) अथवा जैसे (अग्निः शुष्के कक्षेमुक्तोवातेन समन्ताद्युक्तः क्षेपः) अग्नि सूखे तृणसमूह में डालने और वायु के युक्त होने से शीघ्र दाहक हो जाता है। (तथा सोपक्रम्) ऐसे ही सोपक्रम शीघ्र फलदायक होता है (सएवाग्निः) वही अग्नि (तृणराशौ क्रमशोवयवेषु न्यस्तः) तृण समूह के किसी भाग में थोड़ी २ डालने से (चिरेणदहेत्) विलम्ब से जलावेगी (तथा निरुप क्रमम्) ऐसे ही निरुपक्रम कर्म्म विलम्ब से फल देता है (तदैकभविकं कर्म्मद्विविधं सोपक्रमं निरुपक्रमं च) इस रीति से एक जन्म के दो प्रकार के कर्म्म होते हैं एक सोपक्रम और दूसरे निरुपक्रम (तत् संयमादपरांतस्य प्रापणस्य ज्ञानभवेत्) उनकर्मों में संयम करने से मृत्यु का ज्ञान होता है (अरिष्टेभ्योवेति) अथवा अरिष्ट से मृत्यु का ज्ञान होता है (त्रिविधमरिष्टम्) अरिष्ट तीन प्रकार का है (आध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकं च) आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक (तत्राध्यात्मिकं) उन में से पश्यति) अचानक अधिक सुखवाले लोकों को वा सिद्धों को देखता है विपरीतं वा सर्वमिति) यह सब विपरीत अर्थात् मिथ्या पदार्थ हैं (अनेन वा जानात्यपरान्तं मरणमुपस्थित मिति) इन के देखने से समीप आये मृत्यु का ज्ञान होता है ॥ २० ॥

मैत्र्यादिषु बलानि ॥ २१ ॥

सू० का प० (मैत्र्यादिषु) मैत्री आदि में संयम करनेसे (बलानि) बलप्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

सू० का भा० मैत्री मुदिता और करुणा में संयम करने से बलकी वृद्धि होती है ॥ २१ ॥

मैत्रीकरुणामुदितेति तिस्रोभावनास्तत्र भूतेषु सुखि भूतेषु

मैत्रीं भावयित्वा मैत्रीबलं लभते दुःखितेषु करुणां भावयित्वा करुणाबलं लभते पुण्यशीलेषु मुदितां भावयित्वा मुदिताबलं लभते। भावनातः समाधिर्यः स संयमस्ततो बलान्यवन्ध्य-वीर्य्याणि जायन्ते पापशीलेषूपेक्षा न तु भावना ततश्च तस्यां नास्ति समाधिरीति अतो न बलमुपेक्षातस्तत्र संयमाभावा-दिति ॥ २१ ॥

भा० का प० (मैत्रीमुदिता करुणेतिति स्त्रोभावनाः) मैत्री मुदिता और करुणा यह तीन प्रकार की भावना हैं (तत्र) उन में से (भूतेषु सखिभूतेषु मैत्रीभावयित्वा) सुखी प्राणिओं में मित्रता की भावना करके (मैत्रीबलं लभते) मित्रता के बलको पाता है (दुःखितेषु करुणां भाव-यित्वा) दुःखीप्राणिओं में करुणा अर्थात् दया की भावना करने से (करु-णाबलं लभते) दयाबल को पाता है (पुण्यशीलेषु मुदितां भावयित्वा) धर्म्मात्माओं में मुदिता अर्थात् प्रसन्न चित्तता की भावना कर के (मुदि-ताबलं लभते) मुदिता बलको पाता है (भावनातः समाधिः) भावना से समाधि होती है (संयमस्ततोबलानि) समाधि से संयम बल (अवन्ध्य-वीर्य्याणिजायन्ते) अनिवार्य्य बल होते हैं अर्थात् उन शक्तियों का कोई प्रतिबन्ध नहीं कर सक्ता—(पापशीलेषु) पाप करने का स्वभाव है जिन का उन में (उपेक्षा नतुभावना) त्याग होता है इससे उन में भावना नहीं होती (ततश्चतस्यां नास्तिसमाधिः) इस हेतुसे उपेक्षा में समाधि भी नहीं होती (अतो न बलमुपेक्षातः) इस ही कारण से उपेक्षा का बल भी नहीं होता है (तत्र संयाभावात्) क्योंकि उस में संयम होना असम्भव है ॥ २१ ॥

भा० का भा० पूर्व कही हुई मैत्री मुदिता और करुणा, भावनाओं में संयम करने से मैत्री बल करुणा बल और मुदिता बल की वृद्धि होती है अर्थात् जब योगी सब सुखी प्राणिओं को अपना मित्र समझता है तब उसको भी सब अपना मित्र समझने लगते हैं जब योगी दुःखी प्राणिओं पर कृपा करता है तब उस पर भी सब कृपालु होते हैं और जब योगी मुदिता में संयम करता है अर्थात् पुण्य शीलों को देख कर प्रसन्न होता है तब उसको भी देख कर सब प्रसन्न होते हैं अब यहां पर यह शंका होती है कि पूर्व पाद में ४ प्रकार की भावना कही थी किन्तु इस सूत्र में उपेक्षा का परित्याग क्यों किया ? इसका उत्तर भाष्यकार यह देते हैं कि पापी लोगों की जो उपेक्षा अर्थात् त्याग किया जाता है इससे उपेक्षा भावना नहीं कहला सक्ती इससे उस में समाधि ही नहीं हो सक्ती और समाधिके अभाव से उस में संयम भी नहीं होसक्ता और जब संयम ही न हुआ तो उसका बल कैसे हो सक्ता है ॥ २१ ॥

बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ २२ ॥

सू० का० प० (बलेषु) बलो में संयम करने से (हस्ति बलादीनि) हस्ति बलादि प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

सू० का भा० योगी जिस केवल में संयम करता है उसीके समान योगी को बल प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

हस्तिबले संयमाद्धस्तिबलोभवति वैनतेयबले संयमाद्वैनतेयबलोभवति वायुबले संयमाद्वायुबल इत्येवमादि ॥ २३ ॥

भा० का प० (हस्ति बले संयमात्) हस्ती के बलमें संयम करने से (हस्ति बलोभवति) हस्ती के समान बल वाला होता है (वैन

तेयवले संयमात्) गरूड़ के वल में संयम करने से (वैन तेय वलो भवति) गरूड़ के समान वल वाला होता है (वायु वले संयमात्) वायु केवल में संयम करने से (वायुवलइत्येव मादिषु) वायु के समान वलवान् होता है इत्यादि अन्य वल भ ऐसे ही समझने ॥ २२ ॥

भाष्य का भा० योगी समाधि समय में जिस के वल में संयम करेगा उसके समान ही वलवान् हो जायगा ॥ २२ ॥

प्रवृत्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहित विप्रकृष्टज्ञानम् ॥ २३ ॥

सू० का प० (प्रवृत्यालोकन्यासात्) प्रवृत्ति का जो आलोक अर्थात् प्रकाश उसके न्यास अर्थात् ज्ञानके साथ संयोग करने से (सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्टज्ञानाम्) सूक्ष्म—गुप्त और उत्तम अर्थोंका ज्ञान होता है ॥ २३ ॥

सू० का भा० पूर्वोक्त ज्योतिषमती प्रवृत्ति की प्रकाश को संयुक्त करने से योगी सूक्ष्म व्यवहित और उत्तमोत्तम अर्थोंको जान सक्ता है ॥ २३ ॥

ज्योतिष्मती प्रवृत्तिरुक्ता मनसस्तस्यायमालोकस्तं योगी सूक्ष्मे वा व्यवहिते वा विप्रकृष्टे वार्थे विन्यस्य तमर्थं मधिगच्छति ॥ २३ ॥

भा० का० प० (ज्योतिषमती प्रवृत्तिरुक्ता मनसः) पूर्व पाद में जो ज्योतिषमती प्रवृत्ति मन की कही थी (तस्याय आलोकः) उसका जो प्रकाश (तम्) उसको (योगी सूक्ष्मे व्यवहिते वा विप्र कृष्टेर्थे विन्यास्य) योगी सूक्ष्म गुप्त वा उत्तमोत्तम अर्थ में लगा कर (तमर्थं मधि गच्छति) उस अर्थ को जान लेता है ॥ २३ ॥

भा० का० भा० पूर्व पाद में जो मनकी ज्योतिमती प्रवृत्ति कही है उसको ज्योति का अर्थों के साथ सम्बन्ध करने से योगी सब प्रकार के अर्थों को जान लेता है ॥ २३ ॥

भुवनज्ञानं सूर्य्ये संयमात् ॥ २४ ॥

सू० का प० (सूर्य्ये संयमात) सूर्य्य में संयम करनेसे (भुवन ज्ञानम्) जगत् का यथार्थ ज्ञान होता है । २४ ।

सू० का भा० सूर्य्य में संयम करने से भुवन ज्ञान होता है ।

भाष्य—ततः प्रस्तारः सप्त लोकास्तत्रावीचेः प्रभृति मेरुपृष्ठं यावदित्येवं भूर्लोको मेरु पृष्टादारभ्याध्रुवात् ग्रह नक्षत्र तारा विचित्रोन्तरिक्ष लोकस्तत परः स्वर्लोकः पञ्चविधोमाहेन्द्रस्तृतीय लोकश्चतुर्थः प्राजापत्यो मह र्लोकस्त्रिविधो ब्राह्मः तद्यथा—जनलोकस्तपो लोकः सत्यलोक इति ब्राह्मस्त्रिभूमिको लोकः प्राजापत्यस्ततो महान् । माहेन्द्रश्चस्वरित्युक्तोदिवि तारा भुवि प्रजा इति । संग्रहश्लोकः तत्रावीचे रुपर्य्युपरि निविष्ठाः सम्महा नरक भूमयो घन सलिलानलानिलाकाशतमः प्रतिष्ठाः महाकालांबरीष रौरव महारौरव काल सूत्रान्ध तामिस्राः यत्र स्वकर्मोपार्ज्जित दुःखवेदनाः प्राणिनः कष्टमायुर्दीर्घमाक्षिप्य जायन्ते ततो महातल रसातलातल सुतल वितल तलातल पातालाख्यानि सप्त पातालानि भूमिरियमष्टमी सप्तद्वीपा वसुमती यस्याः सुमेरुर्मध्ये पर्व्वतराजः काञ्चनः तस्य राजत वैडूर्यस्फटिक हेममणिमयाणि शृङ्गानि तत्र वैदुर्य्यप्रभानुरागान्वितोत्पलश्याम नभसो दक्षिण भागः श्वेतः पूर्व्वः स्वच्छः पश्चिमः कुरण्डकाभउत्तरः । दक्षिण पार्श्वे चास्य जम्बूर्यतोयं जम्बूद्वीपः । तस्य सूर्य्य प्रचारात्रिन्दिवं लग्नमिव विवर्त्तते । तस्य नीलश्वेतं शृङ्गवन्त उदीचानास्त्रयः पर्व्वताः द्विसहस्रा यामातदन्तरेषु त्रीणि वर्षाणि नव नव योजन साहस्राणि रमणकं हिरण्य मतमुत्तराः कुरव इति निषेध हेमकूट हिमशैलादक्षिणतो द्विसाहस्रयामास

तदन्तरेषु त्रीणि वर्षाणि नव नवयोजन साहस्राणि हरिवर्षं किंपुरुषं भारतमिति। सुमेरोः प्राचीनाः भद्राश्वमाल्यवत् सीमानः प्रतीचीनाः केतुमाल गन्धमादनसीमानौ मध्ये वर्षमिलावृतम्। तदेतद् योजन शतसहस्रं सुमेरोर्दिशि दिशि तदर्द्धेन व्यूढं स खल्वयं शतसहस्रायामो जंबूद्वीपस्ततो द्विगुणेन लवणोदधिना वलयाकृतिना वेष्टितः ततश्च द्विगुणाः शाक कुश क्रौञ्च शाल्मल गोमेध पुष्कर द्वीपाः सप्त समुद्राश्च सर्षपराशिकल्पाः सविचित्र शैलावतंसाः इक्षुरस सुरा सर्पि दधिमण्ड चीर स्वादूदक सप्त समुद्र वेष्टिताः वलयाकृतयो लोकाः पर्व्वतपरिवाराः पञ्चाशद् योजन कोटी परिसंख्याता स्तदेतत् सर्व्वम् सुप्रतिष्ठित संस्थानमण्डमध्ये व्यूढं अण्डञ्चप्रधानस्याणोवयवो यथाकाशे खद्योत इति तत्र पाताले जलधौ पर्वतेष्वेतेषु देवनिकाया सुर गन्धर्व्व किन्नर किम्पुरुष यक्ष राक्षस भूत प्रेत पिशाचापस्मारकाप्सरो ब्रह्म राक्षसकुष्माण्ड विनायकाः प्रतिवसन्ति। सर्वेषु द्वीपेषु पुण्यात्मानो देव मनुष्याः। सुमेरुस्त्रिदशानामुद्यानभूमिस्तत्र मिश्रवनं नन्दनं चैत्ररथं सुमानसमित्युद्यानानि। सुधर्म्मा देवसभा। सुदर्शनं पुरं। वैजयन्तःप्रसादः ग्रह नक्षत्र तारकास्तु ध्रुवेनिवद्धा वायुविक्षेपनियमे नोपलक्षित प्रचाराः सुमेरोरुपर्युपरि सन्निविष्टा त्रिपरिवर्त्तन्ते माहेन्द्रनिवासिनः षट्देवनिकायास्त्रिदशाः ग्निष्वात्तायामास्तुषिताः अपरिनिर्मितवसवर्त्तिनः परिनिर्मितवशवर्त्तिनश्चेति। सर्व्वसङ्कल्पसिद्धाः। अणिमाद्यैश्वर्य्योपपन्नाः कल्पायुषो वृन्दारकाः कामभोगिनः औपपादिक देहा उत्तमानुकूलाभिरप्सरोभिः कृतपरिवाराः महतिलोके प्राजापत्ये पञ्चविधाः देवनिकायाः कुमुदाऋभव प्रतर्द्दना अञ्जनाभाः प्रतिताभाइत्येते महाभूतवासिनो ध्यानाहाराः कल्पसहस्रायुषः प्रथमे ब्रह्मणोजनलोके चतुर्विधो देवनिकायो ब्रह्म पुरोहिताः ब्रह्मकायिकाः ब्रह्ममहाकायिका अमरा इति ते भूतेन्द्रियवशिनो द्विगुणोद्विगुणोत्तरायुषो द्वितीये तपसि लोके त्रिविधो देवनिकायः अभास्वरा महाभास्वरा सत्यमहाभास्वरा इति ते भूतेन्द्रियप्रकृतिवशिनः द्विगुण

द्विगुणोत्तरायुषः सर्व्वे ध्यानाहाराः ऊर्द्धरेतसऊर्द्धमप्रतिहतज्ञानः। अधर-भूमिष्वनावृतज्ञानविषयाः तृतीये ब्रह्मणः सत्यलोके चत्वारो देवनिकाया अच्युताः शुद्धनिवासाः सत्याभाः संज्ञासंज्ञिनश्चेति अकृतभुवनन्यासाः स्व-प्रतिष्ठाः उपर्युपरिस्थिताः प्रधानवशिनो यावत् स्वर्गायुषः तत्राच्युताः सवितर्कध्यानसुखाः शुद्धनिवासाः सविचारध्यानसुखाः सत्याभा आनन्दः मात्रध्यानसुखाः संज्ञासंज्ञिनश्चास्मितामात्रध्यानसुखास्तेपि त्रैलोक्यमध्ये प्रतितिष्ठति। तत्र ते सप्तलोकाः सर्वेएव ब्रह्मलोकाः विदेहप्रकृतिलयास्तु मोक्षपदे वर्त्तन्ते न लोकमध्ये न्यस्ता इत्येतद्योगिना साक्षात्कर्त्तव्यं सूर्यद्वारे संयमं कृत्वा ततोन्यत्रापि एवं तावदभ्यसेद् यावदिदं सर्वं दृष्ट-मिति। २४।

भा० का प० (ततःप्रस्तारः) भुवन का प्रस्तार अर्थात् बिस्तार यों है (सप्तलोकाः) सात लोक हैं (तत्र) उनमें से (आवीचेःप्रभृतिमेरुपृष्ठम् यावदित्येवम्) ध्रुवसे और मेरुपृष्ठ पर्यन्त है (भूर्लोकोमेरुपृष्ठादारभ्याध्रु-वात्) मेरुपृष्टसे ध्रुव पर्यन्त भूर्लोक कहाता में (ग्रह नक्षत्र ताराविचित्रो-न्तरिक्षलोकः) सूर्यादि ग्रह अश्विनी आदि नक्षत्र और अरुन्धती आदि तारासे पूर्ण लोक जो है उसे अन्तरिक्षलोक कहते हैं (ततःपरस्वर्लोकः पञ्चविधः) इसके पर पांच प्रकार का स्वर्लोक है (माहेन्द्रस्तृतीयलोकः) तीसरालोक माहेंद्र कहाता है (चतुर्थ प्राजापत्यः) चौथालोक प्राजापत्य है (महर्लोकस्त्रिविधोब्राह्मः) तदन्तर तीनप्रकारका महर्लोक उसके ब्रह्म-लोक है (यथा) ऐसाही अन्यत्रभी कहा है (जनलोकस्तपोलोकः सत्य लोकइतिस्मृतः ब्राह्मस्त्रिभूमिलोकः प्राजापत्योततोमहान् माहेंद्रस्वरि-त्युक्तोदिवितारामुविप्रजाः) इस श्लोकमें भी सप्तलोकके नाम हैं।

भावार्थ—यही सात लोक हैं।

विशेष—सूर्य चंद्र इन शब्दोंसे योगशास्त्रमें बाहरके सूर्यादिका ग्रहण नहीं है किन्तु शरीरस्थही सूर्यादिका ग्रहण होता है क्योंकि बाह्य सूर्या-

दिकोंमें संयम करनेका कोई नियम नहीं लिखा तब विभूतिपाद में उसके द्वारा सिद्धिकी प्राप्ति कैसे कह सकते हैं इसलिये शरीरस्थ इड़ा नाड़ी जो दक्षिणभागसे चलती है उसे सूर्य और जो बाम ओरसे पिंगला नाड़ी वहती है उसे चंद्र एवं मध्यस्थ सुषुम्णा नाड़ीको ध्रुव कहते हैं और जो २४ सूत्रके भाष्यमें सप्तलोक कहे हैं वह योगकी सप्त भूमिका हैं।

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २५ ॥

सू० का प० (चन्द्रे) चन्द्रमा में संयम करने से (ताराव्यूहज्ञानम्) नक्षत्रोंके समूह का ज्ञान होता है ॥ २५ ॥

सू० का भा० चन्द्रमा में संयम करने से समस्त तारागण का यथार्थ ज्ञान होता है ॥ २५ ॥

चन्द्रे संयमं कृत्वा ताराव्यूहं विजानियात् ॥ २६ ॥

भा० का प० (चन्द्रे) चन्द्रमा में (संयमम् कृत्वा) चित्त वृत्ति को लगा कर (ताराव्यूहम्विजानीयात्) ताराओं की राशि को जाने ॥ २४ ॥

भा० का भा० स्पष्ट है ॥ २५ ॥

ध्रुवेतद्गतिज्ञानम् ॥ २६ ॥

सू० का प० (ध्रुवे) ध्रुव नामक नक्षत्र में संयम करने से (तद्गतिज्ञानम्) तारागण की गति का ज्ञान होता है ॥ २६ ॥

सू० का भा० ध्रुव में संयम करने से तारों की गति का ज्ञान होता है ॥ २६ ॥

ततो ध्रुवे संयमं कृत्वा ताराणां गतिं जानीयात्। ऊर्द्ध विमानेषु कृतसंयमस्तानि विजानीयात् ॥ २७ ॥

भा० का प० (ततः) इसके पश्चात् (ध्रुवेसंयमंकृत्वा) ध्रुव नामक तारे में संयम कर के (ताराणांगतिंजानीयात्) नक्षत्रों की चाल को जाने (ऊर्द्धविमानेषुकृतसंयमः) ऊर्द्ध गमन करने वाले जो विमान हैं उन में संयम करके (तानि विजानीयात्) विमानों को जाने ॥ २६ ॥

भा० का भा० योगी को उचित है कि ध्रुव में संयम करके तारों की गति को जाने और ऊर्द्धगामी विमानों में संयम करके विमानों को भी जानले ॥ २६ ॥

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् । २७ ।

सू० का प० (नाभिचक्रे) चक्राकार जोनाभि है उसमें (कायव्यूहज्ञानम्) शरीर के समुदाय का ज्ञान होता है ॥ २७ ॥

सू० का भा० नाभिचक्र में संयम करने से शरीरस्थ सब पदार्थों का ज्ञान होता है ॥ २७ ॥

नाभिचक्रे संयमं कृत्वा कायव्यूहं विजानीयात् वातपित्त श्लेष्माणस्त्रयो दोषाः सन्ति धातवः सप्त । त्वक्लोहितमांस-स्नाय्वस्थिमज्जा-शुक्राणि पूर्वं—पूर्वमेषां वाह्यमित्येष विन्यासः ॥ २८ ॥

भा० का प० (नाभिचक्रे संयमंकृत्वा) नाभिचक्र में चित्त की वृत्ति को स्थिर करने से (कायव्यूहं विजानीयात्) काया के समूह को जाने (वातपित्तश्लेष्माणस्त्रयोदोषाः सन्ति) शरीर में यह पदार्थ हैं वात पित्त और कफ यह त्रिदोष हैं (धातवस्सप्त) और सात धातु हैं (त्वग्लोहित मांसस्नाय्वस्थिमज्जाशुक्राणि) चर्म-रुधिर-मांस-नस-हड्डी-चर्बी-और वीर्य (पूर्वम्पूर्वमेषांवाह्यम्) इन में जो पूर्व हैं वह क्रमशः वाह्य हैं (इत्येषविन्यास !) यह इनकी स्थितिका क्रम है ॥ २७ ॥

भा० का भा० नाभि में संयम से शरीर के पदार्थों का ज्ञान होता

है शरीर में वातादि कि दोष और त्वगादि सात धातु होते हैं धातुओं की स्थिति का नियम यह है कि उत्तरोत्तर अन्तरंग हैं इन्ही से सबका शरीर स्थिर रहता है ॥ २७ ॥

कंठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ २८ ।

सू० का प० (कंठकूपे) कंठ के नीचे (क्षुत्पिपासानिवृत्तिः) क्षुधा और प्यास की निवृत्ति हो जाति है ॥ २८ ॥

सूत्रका भा० कंठ के नीचे कूप में संयम से भूख और प्यास निवृत्त हो जाती है ॥ २८ ॥

जिह्वाया अधस्तात् तन्तुस्तंतोरधस्तात्कंठस्ततोधस्तात् कूपस्तत्र संयमात् क्षुत्पिपासे न बाधेते ॥ २८ ॥

भा० का प० (जिह्वायाअधस्तात्) जिह्वा के नीचे (तंतुः) सूत के समान एक नस है (तन्तोधस्तात्कंठः) उस तंतु के अधोभाग में कंठ स्थान है (ततोधस्तात् कूपः) कंठ के अधोभाग में कूप अर्थात् गंभीर छिद्र है (तत्र संयमात्) उस कूप में संयम से (क्षुत्पिपासे न बाधेते) क्षुधा और तृषा दुःख नही देती ॥ २८ ॥

भा० का भा० जिह्वा के अधोभाग में तंतु तंतु के अधोभाग में कंठ और कंठ के नीचे कूप है उस कूप में जब योगी संयम करता है तब उसे क्षुधा और पिपासा नहीं सताती ॥ १८ ॥

कूर्मनाड्यांस्थैर्य्यम् ॥ २९ ॥

सू० का प० (कूर्मनाड्याम्) कूर्मनाड़ी में (स्थैर्य्यम्) स्थिरता होती है ॥ २९ ॥

सू० का भा० कूर्मनाड़ी में संयम करने से योगी के चित्त की स्थिरता होती है ॥ २९ ॥

कूर्पादधउरसि कूर्माकारानाड़ीतस्यांकृतसंयमः स्थिरपदं लभते यथा सर्पोगोधावेति ॥ ३० ॥

भा० का प० (कूपादधः) कूपकेनीचे (उरसि) वक्षस्थल में (कूर्माकारानाड़ी) कच्छप के शरीराकार के समान एक नाड़ी है (तस्यांकृत संयमः) उसमें संयम करने से (स्थिरपदंलभते) अचल पद को प्राप्त होता है (यथा) जैसे (सर्पोगोधावेति) सर्प अथवा गोह ॥ २९ ॥

भा० का भा० पूर्व सूत्र में कहे कूपसे नीचे वक्षस्थल में कछुएके शरीर के समान एक नाड़ी है जिसे कूर्मनाड़ी कहते हैं उस में संयम करने से योगी को स्थिर पद की प्राप्ति होती है जैसे सर्प्प वा गोह अपने घर में जाकर चंचलता वा क्रूरता को त्याग देते हैं ऐसे ही योगी का चित्त इस नाड़ी में आकर स्थिर हो जाता है ॥ २९ ॥

मूर्द्धज्योतिषि सिधदर्शनम् ॥ ३० ॥

सू० काप० (मूर्द्धज्योतिषि) कपाल की ज्योति में (सिद्धदर्शनम्) सिद्धोंका दर्शन होता है ॥ ३० ॥

सू० काभा० कपालस्थ ज्योति में संयम करने से सिद्धोंका दर्शन होता है ॥ ३० ॥

शिरः कपाले अन्तः छिद्रम् प्रभास्वरं ज्योतिस्तत्र संयमात्सिद्धानां द्यावापृथिव्योरन्तरालचारिणां दर्शनं भवति ॥ ३१ ॥

भा० काभा० (शिरःकापाले उन्तश्छिद्रम् प्रभास्वरं ज्योतिः) शिरके कपाल में भीतर एक छिद्र होता है उसमें अत्यन्त प्रकाशमान एक ज्योति है (तत्र संयमात्) उसमें संयम करने से (सिद्धानांद्यावापृथिव्यो रन्तरालचारिणान्दर्शनम्) जो सिद्ध पृथिवी और अन्तरिक्ष के मध्य में फिरा करते हैं उन के दर्शन होते हैं ॥ ३० ॥

भा० काभा० कपाल के मध्य में एक छिद्र है उसमें अत्यन्त प्रकाशयुक्त जो ज्योति है उसमें संयम करने से अन्तरिक्ष में विचरने वाले महात्माओं के दर्शन होते हैं ॥ ३० ॥

प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥ ३१ ॥

सू० काप० (प्रातिभात्वा) अथवा प्रतिभनामक तारा जो हृदय में है उसके ज्ञानसे (सर्वम्) सम्पूर्ण ज्ञान होता है ॥ ३१ ॥

सू०काभा० प्रतिभके ज्ञानसे योगीको सब ज्ञान होता है ॥ ३१ ॥

प्रातिभं नाम तारकं तद्विवेकजस्य ज्ञानस्य पूर्वरूपं यथोदये प्रभा भास्करस्य तेन वा सर्वमेव जानाति योगी प्रातिभस्य ज्ञानस्योत्पत्ताविति ॥ ३१ ॥

भाका० प० (प्रातिभं नामतारकं) प्रतिभ नामक एकतारा है (तद्विवेजकस्य ज्ञानस्य पूर्वरूपम्) उसका ज्ञान विवेक द्वारा उत्पन्न हुए सत्यज्ञान का पूर्वरूप अर्थात् भविष्यत् लक्षण है (यथोदयेप्रभा भास्करस्य) जैसे अरुणोदय सूर्य्योदय का लक्षण है (तेनवा सर्वमेव जानाति) इस प्रातिभ ज्ञानसे सम्पूर्ण ज्ञान होता है (योगी प्रातिभस्य ज्ञानस्योत्पत्ताविति) योगी प्रातिभज्ञान की उत्पत्ति होनेसे ॥ ३१ ॥

भाका० भा० पूर्वोक्त कपालस्थ ज्योतिके अन्तर्गत एक प्रतिभ नामक तारा है इस तारेका नाम प्रातिभ इस लिये है कि यह समस्त प्रतिभाओं का मूल है उससें संयम करने से जो ज्ञान होता है वह प्रातिभज्ञान कहाता है वह प्रातिभज्ञान होने से योगीको सम्पूर्ण ज्ञानोंका उदय होता है क्योंकि यही ज्ञान प्रमाजन्य ज्ञानका पूर्वरूप है ॥ ३१ ॥

हृदये चित्तसंवित् ॥ ३२ ॥

सू० का प० (हृदये) हृदय में (चित्तसंवित्) चित्तका ज्ञान होता है ॥ ३२ ॥

सू० का भा० हृदय में संयम करने से योगी को चित्तका ज्ञान होता है ॥ ३२ ॥

यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म तत्र विज्ञानं तस्मिन् संयमात् चित्तसम्वित् ॥ ३२ ॥

भा० का प० (यस्मिन् ब्रम्हपुरे) ब्रम्हपुर अर्थात् हृदयस्थल में (दहरम्) दहर अर्थात् जो तड़ाग के समानस्थल है (पुण्डरीकं वेश्म) जो तड़ाग कमलका निवासस्थान है उसमें कमल स्थानापन्न ज्ञान रहता है (तस्मिन्-संयमात्) उसमें संयम करने से (चित्तसंवित्) चित्तका ज्ञान होता है ॥ ३२ ॥

भा० का भा० हृदयका मध्यस्थान एक तड़ाग के तुल्य है उस में संयम करनेसे चित्तज्ञान * होता है ॥ ३२ ॥

सत्वपुरुषयोरत्यन्ता संकीर्णयो: प्रत्यय विशेषोभोग: परार्थत्वात्स्वार्थ पुरुषज्ञानम् ॥ ३३ ॥

सू० का प० (सत्वपुरुषयोरत्यन्ता संकीर्णयो) बुद्धि और पुरुष जो अत्यन्त भिन्न है (प्रत्यया विशेषोभोग:) उनकी एकताका ज्ञानभोग कहा है

* स्वचित्तगता वासना: परचित्तगतान् अभिप्राय जानाती त्यर्थः ।

(परार्थत्वात् स्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम्) परार्थ अर्थात् बुद्धिके विचार से भिन्न पुरुष प्रत्यय के संयमसे पुरुष का ज्ञान होता है ॥ ३३ ॥

सू० का भा० बुद्धि जो पुरुषसे अत्यन्त भिन्न है, किन्तु अज्ञान से जो उनकी एकता मानी जाती है उसे भोग कहते हैं अतएव स्वार्थ संयमसे योगीको पुरुषज्ञान अर्थात् जीवका ज्ञान होता है ॥ ३३ ॥

बुद्धिसत्वं प्रख्याशीलं समानसत्वोपनिबन्धने रजस्तमसौ वशीकृत्य सत्वपुरुषान्यता प्रत्ययेन परिणतं तस्माच्च सत्वात् परिणामिनोत्यन्तविधर्म्मात् शुद्धोन्यश्चितिमात्ररूपः पुरुषस्त-योरत्यन्तासङ्कीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः पुरुषस्य दर्शित विषयत्वात् स भोगप्रत्ययः सत्वस्य परार्थत्वाद्दृश्यः। यस्तु तस्माद्विशिष्टश्चितिमात्ररूपोन्यः पौरुषेयप्रत्ययस्तत्र संयमात् पुरुषविषया प्रज्ञा जायते। न च पुरुष प्रत्ययेन बुद्धिसत्वा त्मना पुरुषोदृश्यते पुरुषएव प्रत्ययं स्वात्मावलम्बनं पश्यति। तथाह्युक्तं विज्ञातारमरेकेन विजानीयादिति ॥ ३३ ॥

भा० का प० (बुद्धिसत्वप्रख्याशीलम्) बुद्धि विचार रूपज्ञान है (समान सत्वोपनिबन्धनेन) जीवमें अज्ञानसे उसका आरोप करनेसे (सत्वपुरु-षान्यता प्रत्ययेनपरिणतम्) बुद्धि जीव रूपसे प्रतीत होती है (तस्माच्च) इस कारण से परिणामरूप अपने विधर्म्म से रहित (अन्यश्चितिमात्ररूपः पुरुषः) बुद्धिसे भिन्न ज्ञानस्वरूप जीव है (तयोरत्यन्ता संकीर्णयोः प्रत्यया विशेषो भोगः) उक्त दोनो में जो अत्यन्त भिन्न हैं अभेद ज्ञानको भोग कहते हैं (यस्तु तद्विशिष्ठश्चितिमात्र रूपोन्यपौरुषेय प्रत्ययस्तत्र संयमात्) जो उस भोगसे युक्त है और भोग्य तथा साधन से भिन्नज्ञान स्वरूप है उस

पुरुषमें संयम करने से (पुरुषविषया प्रज्ञाजायते) जीवकी यथार्थ ज्ञानकी वुद्धि होती है किन्तु यह ज्ञान जीवही को होता है ॥ ३४ ॥

भा० का भा०—स्पष्ट है ।

ततः प्रातिभश्रावण वेदनादर्शास्वाद वार्ताजायन्ते ॥ ३४ ॥

सू० का प० (ततः) इसके अनन्तर (प्रातिभ श्रावण वेदनादर्शास्वाद-वार्ता) प्रातिभ अर्थात् वुद्विवर्द्धक श्रावण दिव्यश्रवण, दिव्यस्पर्श, दिव्यदृष्टि, दिव्यरसज्ञान और दिव्य गंधज्ञान (जायन्ते) उत्पन्न होते हैं ॥ ३४ ॥

सू० का प०—स्पष्ट

प्रातिभात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टातीतानागतज्ञानंश्रावणाद्दिव्यशब्दश्रवणम् वेदनाद्दिव्य स्पर्शाधिगमः आदर्शाद्दिव्य-रूपसम्वित् आस्वादाद्दिव्यरससम्वित् वार्त्तातो दिव्यगन्धविज्ञा-नमितयेतानि नित्यं जायन्ते ॥ ३४ ॥

भा० का प० (प्रतिभात्) प्रतिभा सम्बन्धि ज्ञानसे (सूक्ष्मव्यवहित विप्रकृष्टातीतानागतज्ञानम्) सूक्ष्म-गुप्त-उत्तम-भूत और भविष्यत् ज्ञान होता है (श्रावणाद्दिव्यशब्द श्रवणम्) कर्णसम्बन्धि ज्ञानसे दिव्यशब्दका श्रवण होता है (वेदनाद्दिव्य स्पर्शाधिगमः) वेदना से दिव्यस्पर्शका ज्ञान होता है (आदर्शाद्दिव्यरूप संवित्) आदर्श अर्थात् नेत्र इन्द्रिय से दिव्यरूपका ज्ञान होता है (आस्वाद्दिव्यरस संवित्) जिह्वासे दिव्यरस का ज्ञान होता है (वार्तातो दिव्यगन्ध विज्ञानम्) नासिका से दिव्य गन्धका ज्ञान होता है (इत्येतानिनित्यं जायन्ते) यह ज्ञान नित्य ही होते हैं ॥ ३४ ॥

भा० का भा० जब योगीको पुरुषका ज्ञान हो जाता हैं तिसके पश्चात् गुप्त सूक्ष्म और भूत भविष्यत् तथा दिव्य श्रवणादि ज्ञान उत्पन्न होते हैं ॥ ३४ ॥

तेसमाधावुपसर्गाव्युत्थाने सिद्धयः ३५॥

सू० का प० (तेसमाधौ उपसर्गाः) पूर्वसूत्र में कहे ज्ञान समाधि में विघ्नकारक हैं (व्युत्थित चित्तस्य सिद्धयः) चंचलचित्त वाले को सिद्धि हैं ॥ ३५ ॥

सू० का भा० कैवल्य समाधि वाले को पूर्वोक्त ज्ञान विघ्न हैं, किन्तु चंचलचित्तवाले योगीकी यह सिद्धि है अर्थात् सिद्धिग्रस्त मनुष्यको कैवल्य समाधि की अभाव से ईश्वर का ज्ञान नहीं होता ॥ ३५ ॥

ते प्रातिभादयः समाहितचित्तस्योत्पद्यमाना उपसर्गास्तद्दर्शनप्रत्यनीकत्वात् व्युत्थितचित्तस्योत्पद्यमानाः सिद्धयः ॥ ३६ ॥

भा० का प० (तेप्रातिभादयः) पूर्वसूत्र में कहे प्रातिभ आदि (समाहितचित्तस्योत्पद्यमाना उपसर्गाः) स्थिरचित्तवाले को उत्पन्न हुए विघ्न है (तद्दर्शन प्रत्यनीकत्वात्) क्योंकि इनसे ईश्वर के ज्ञान में विघ्न होता है (व्युत्थित चितस्योत्पद्यमाना सिद्धयः) व्युत्थित चित्त अर्थात् बाह्यवृत्ति वाले को यह सिद्धि हैं ॥ ३५ ॥

भा० का भा० उक्त प्रातिभ ज्ञानादि कैवल्य समाधि में विघ्न है और बाह्यवृत्तिवाले को सिद्धि हैं ॥ ३५ ॥

बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः । ३६ ।

सू० का प० (बन्धकारणशैथिल्यात्) बन्धन का जो कारण है उस के शिथिल हो जानेसे (प्रचार सम्वेदनाच्च) और प्रचार अर्थात् प्रवेश और निर्गम के ज्ञान से (चित्तस्य परशरीरावेशः) चित्तका पराये शरीर में प्रवेश होता है ॥ ३६ ॥

सू० का भा० बन्ध कारण के शिथिल होने और प्रचार ज्ञान होनेसे योगीके चित्तमें परकाय निवेश की शक्ति होती है ॥ ३६ ॥

लोलीभूतस्य मनसोऽप्रतिष्ठस्य शरीरे कर्म्माशयवशाद्बन्धः प्रतिष्ठेत्यर्थः तस्य कर्म्मणोबन्धकारणस्य शैथिल्यं समाधिबलाद्भवति प्रचारसम्वेदनञ्च चित्तस्य समाधिजमेव कर्म्मबन्धक्षयात् स्वचित्तस्य प्रचारसम्वेदनाच्च योगी चित्तं स्वशरीरान्निष्कृष्य शरीरान्तरेषु निक्षिपति निक्षिप्तं चित्तञ्चेन्द्रियाण्यनुपतन्ति यथा मधुकरराजानं मक्षिका उत्पतन्तमनुत्पतन्ति निविशमानमनुनिविशन्ते तथेन्द्रियाणि परशरीरावेशे चित्तमनुविधीयन्त इति ॥ ३६ ॥

भा० का प० (लोलीभूतस्य) चंचलता को प्राप्त हुए (मनसो प्रतिष्ठस्य) अस्थिर मनका (शरीरे कर्म्माशयवशाद्बन्धः) कर्मफल के वशसे बन्ध है (प्रतिष्ठेत्यर्थः) अर्थात् स्थिरता है (तस्य कर्म्मणोबन्धकारणस्य) उस बन्धनके कारण रूपकर्म्म की (शैथिल्यम्) शिथिलता (समाधिब-

लाघवति) समाधि के प्रताप से होती है (प्रचारसम्वेदनं च समाधिजमेव) और प्रचार ज्ञान भी समाधि से ही उत्पन्न होता है (कर्म्मवन्धचयात् स्वचित्तस्य प्रचार सम्वेदनाच्च) कर्म्मवन्धनों के नाश होनेसे और अपने चित्तके प्रचार ज्ञानसे (योगीचित्तं स्वशरीरान्निष्कृष्ट) योगी चित्तको अपने शरीर से निकाल कर (शरीरान्तरेषु निःक्षिपति) दूसरे शरीर में डाल देता है (निःक्षिप्तं चित्तं चेन्द्रियाण्यनुपतन्ति) चित्तके पर शरीर में प्रविष्ट होनेसे इन्द्रियां भी उस ही शरीर में चली जाती हैं (यथा) जैसे (मधुकर राजानं मक्षिका उत्पतन्त मनूत्पतन्ति) राणीमक्खीके उड़ने से सब मक्खी उड़ती हैं (निविशमान मनुनिविशन्ते) और जहां वह बैठती है वहीं सब बैठजाती हैं (तथेन्द्रियाणि) ऐसे ही इन्द्रियां भी (परशरीरावेशे) दूसरे शरीर में प्रवेश करने के समय (अनुविधीयन्ते) चित्तकी अनुगामी होती हैं ॥ ३६ ॥

भा० का भा० । मन जो अत्यन्तही चञ्चल है उसका एक शरीरमें स्थिर रहना यह केवल कर्म्म फलके बन्धन से है और वह कर्म्म बन्धन समाधि से शिथिल होता है और समाधिहीसे चित्तका प्रचार अर्थात् नाड़ीका परिज्ञान भी जाना जाता है जब योगीके समाधि बलसे कर्म्म बन्धन ढीले होजाता हैं और चित्तके प्रचारको भी योगी जान जाता है तब उसको यह शक्ति होजाती है कि वह अपने चित्तको * पर शरीरमें प्रविष्ट कर देता है और चित्तके गमन से इन्द्रिया भी चित्तकी अनुगामिनी होती हैं क्योंकि इन्द्रियों की गति राणी मक्खी के समान है जैसे राणी मक्खी के उड़ने से सब मक्खीयां उड़ती हैं और जहां वह बैठती हैं वहीं सब बैठ जाती हैं ॥ ३६ ॥

* वि० परेषांशरीराणि पर श० तेष्वावेश:—यद्वा परंपवच्छरीरं तस्मिन्निति अस्मिनर्थेचित्तसंज्ञानत्रा पीहतीति, फणितीर्थो व गन्तव्य:—३६।

उदानजयाज्जलपंककंटकादिष्वसंग उत्क्रान्तिश्च ॥ ३७ ॥

सू० का प०। (उदान जयात्) कण्ठमें रहनेवाली उदान वायुके जीतनेसे (जलकण्ठकादिषु असङ्गः) जल और कण्टक आदि शरीर भेदक पदार्थोंका स्पर्श नही होता (उत्क्रान्तिश्च) और मरण अपने वश हो जाता है ॥ ३७ ॥

सू० का भा०। उदानादि वायुके जीतनेसे कण्टकादिका स्पर्श नही होता और मरण भी यथा रुचि होता है ॥ ३७ ॥

समस्तेन्द्रियवृत्तिः प्राणादिलक्षणा जीवनं तस्य क्रिया पञ्चतयी। प्राणो मुख नासिका गतिराहृदयवृत्तिः। समं नयनात् समानश्चानाभिवृत्तिः। अपनयनादपानश्चापादतलवृत्तिः उन्नयनादुदानश्चाशिरोवृत्तिः। व्यापी व्यानइतिएषां प्रधानः प्राणः। उदानजयाज्जलपङ्ककण्ठकाशादिष्वसङ्गः उत्क्रान्तिश्च प्रयाणकाले भवति तां वशित्वेन प्रतिपद्यते ॥ ३७ ॥

भा० का प०। (समस्तेन्द्रियः वृत्तिः) सम्पूर्ण इन्द्रियों की वृत्ति (प्राणादि लक्षणा जीवनम्) प्राण आदिही उनका आजीवन अर्थात् आधार है (तस्यक्रिया पञ्चतयी) उस प्राणकी पांच गति हैं (प्राणोमुख-नासिका गतिराहृदयवृत्तिः) उनमें से प्राण उसे कहते हैं जिसकी मुख और नासिकाके द्वारा गमन होताहै और यह हृदयतक वर्तमान रहता है (समंनयनात्समानश्चानाभिवृत्तिः) समताको प्राप्त करनेवाला समान नाभितक रहता है (अपनयनादपान आपादतलवृत्तिः) अधो गमनसे

उस वायुको अपान कहते हैं जो नाभिके अधोभागसे पैरोंतक गमन करती है (उन्नयनादुदान आशिरोवृत्तिः) ऊर्द्ध्वगमनसे वह वायु उदान कहाता है जो कण्ठ सिर पर्य्यन्त पूरित है (व्यापी व्यान इति एषां प्रधानः) शरीरमें पूर्ण होनेसे व्यान इन सबमें प्रधान है (प्राण और उदानका संयम करने जल, पङ्क और कण्टक आदिमें पतन नहीं होता (उत्क्रान्तिश्च प्रयाणकाले भवति) उत्क्रान्ति अर्थात् प्राणोंका निकलना जो मरनेके समय होता है (तां वशित्वेन प्रतिपद्यते) उसको वशमें करता है ॥ ३७ ॥

भा० का भा० । सम्पूर्ण इन्द्रियों को अपने गमनागमनसे स्थिर रखनेवाला वायु है जिसके प्राणादि पांच भेद हैं प्राण वह वायु है जिसकी गति मुख और नासिका के द्वारा होती है और वह केवल हृदय पर्य्यन्त गमन कर्ता है समगतिवान् नाभिपर्य्यन्त जानेवाला वायु समान कहाता है अधोगमनशील जो चरण पर्य्यन्त भ्रमण करता है वह अपान वायु कहा जाता है और जो कण्ठसे शिर पर्य्यन्त घूमता है उसका नाम उदान है और जो इन सबमें प्रधान और पूर्ण शरीर सञ्चारी है वह व्यान कहाता है, प्राण और उदानके संयम करने से, जलकीचड़ और कण्टकादि का भय योगी को निवृत्त हो जाता है और मरण भी योगीके वश हो जाता है अर्थात् अपने जीवनकी द्विगुण कर सक्ता है ॥ ३७ ॥

समानजयाज्ज्वलनम् ॥ ३८ ॥

सू० का प० । (समानजयात्) समान वायुको अपने वशमें करने से (ज्वलनम्) अधिक तेज होताहै ॥ ३८ ॥

सू० का भा० । समान वायुको वशमें करनेसे योगीका अधिक तेज होता है ॥ ३८ ॥

भा० । जितसमानस्तेजस उपध्मानं कृत्वा ज्वलति ३८

भा० का प० । (जितसमानः) जीत लिया है समान वायुको

जिससे वह योगी (तेजस उपध्यानं कृत्वा ज्वलति) तेजकी वृद्धि करके जाज्वल्यमान होता है ॥ ३८ ॥

भा० का भा० । स्पष्ट है ।

श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥ ३९ ॥

सू० का प० । (श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमात्) कर्ण इन्द्रिय और आकाशमें संयमकरनेसे (दिव्यं श्रोत्रम्) दिव्य श्रवण होता है । ३९ ।

सू० का भा० । कर्णेन्द्रिय और आकाशमें संयम करनेसे दिव्य श्रवण अर्थात् दूर देशका भी श्रवण होता है । ३९ ।

सर्व्वश्रोत्राणामाकाशं प्रतिष्ठासर्व्वशब्दानाञ्च यथोक्तम् तुल्यदेशश्रवणानामेकदेशश्रुतित्वं सर्व्वेषां भवतीति तच्चैतदाकाशस्य लिङ्गं अनावरणञ्चोक्तम् तथाह मूर्त्तस्यानावरणदर्शनाद्विभुत्वमपि प्रख्यातमाकाशस्य शब्दग्रहणनिमित्तं श्रोत्रं वधिराबधिरयोरेकः शब्दं गृह्णात्यपरो न गृह्णातीति तस्मात् श्रोत्रमेव शब्दविषयं श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धे कृतसंयमस्य योगिनोदिव्यं श्रोत्रं प्रवर्त्तते । ३९ ।

भा० का प० । (सर्वश्रोत्राणामाकाशं प्रतिष्ठा) समस्त प्राणियोंकी कर्णेन्द्रियका आधार आकाश है (सर्वशब्दानाञ्च) और सम्पूर्ण शब्दका भी आधार आकाशही है (यथोक्तं) ऐसाही अन्यत्र भी कहा है (तुल्यदेश श्रवणानामेकदेशश्रुतित्वम् सर्वेषां भवतीति) एक स्थलपर उच्चरित

भा० का० भा०। आकाश और कायाका जो आधाराधेय भाव सम्बन्ध है उसमें संयम करनेसे और लघुपदार्थोंका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेसे योगी के शरीरको गुरुता नाश होजाती है और उसके नाश होनेसे योगी जलके ऊपर गमनागमन कर सक्ता है फिर ऊर्णातन्तुपर और ऊर्ध्वां तन्तु से किरणोंपर विहार करने की शक्ति प्राप्त करके स्वच्छन्द आकाश गमन सिद्ध होता है ॥ ४० ॥

विशेष—यहां पर आकाश गमनादि से प्रयोग पूर्वोक्त सूर्यादिके समान समझना उचित है।

वहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा

ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥ ४१ ॥

सू० का प० (वहिरकल्पिता वृत्तिः) शरीरसे बाहर जो मनकी स्वाभाविक वृत्ति है (महाविदेहा) उसका नाम महावृत्ति है (ततप्रकाशावरणक्षयः) उसमें प्रकाश के आवरण का नाश होजाता है ४१

सू० का भ०। मनकी जो अकल्पित वाह्यवृत्ति है जिसको महाविदेहा वृत्ति कहते हैं उसमें संयम करने से प्रकाश के आवरण का क्षय होजाता है ४१

शरीराद्वहिर्मनसोवृत्तिलाभोविदेहा नाम धारणा सा यदि शरीरप्रतिष्ठस्य मनसोवहिर्वृत्तिमात्रेण भवति सा कल्पितेत्युच्यते या तु शरीरनिरपेक्षा वहिर्भूतस्यैव मनसो वृत्तिः सात् परिणामिनोत्यन्तविधर्म्मात् शुद्धोन्यश्चितिमात्ररूपः पुरुषस्तयोरत्यन्तासङ्कीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः पुरुषस्य द-

वहिर्वृत्तिः सखल्वकल्पिता तत्र कल्पितया साधयन्त्यकल्पितां महा विदेहामिति यया परशरीराण्याविशन्ति योगिनः ततश्च धारणातः प्रकाशात्मनो बुद्धिसत्त्वस्य यदावरणं क्लेशकर्मविपाकत्रयं रजस्तमोमूलं तस्य च क्षयो भवति ॥ ४१ ॥

भा० का प० । (शरीरबहिर्मनसोवृत्तिलाभः) शरीरसे बाहर जो मनकी वृत्ति पाई जाती है (विदेहानाम धारणा) उस धारणाका नाम विदेहा है (शरीर प्रतिष्ठस्य मनसो वहि र्वृत्ति मात्रेण भवति) शरीरमें जो स्थिर मन है उसकी बाह्य वृत्ति मात्रसे जो होती है (साकल्पितेत्यु-च्यते) उस वृत्तिका नाम कल्पिता है (यातु शरीर निरपेक्षा बहिर्भूत-स्यैवमनसोबहिर्वृत्तिः) जो शरीर की अपेक्षा न रखती हो बहि र्भूतहुए मनकी बाह्य वृत्ति है (साखल्वकल्पिता) वह अकल्पित वृत्ति है (उन की दोनो कल्पित और अकल्पित वृत्तिओंमें से (कल्पितया साधयन्त्य कल्पितांमहाविदेहाम्) कल्पित वृत्तिद्वारा अकल्पित महाविदेहा साधना की जाती है (यया पर शरीराण्या विशन्ति योगिनः) जिसके द्वारायोगीजन पर शरीरमें प्रविष्ट होते हैं (ततश्च धारणातः) और महावि-देहा धारण से (प्रकाशात्मनो बुद्धिसत्वस्य) प्रकाश स्वरूप जो बुद्धि है (यदावरणम्) उसके जो आवरण (क्लेशकर्म्म विपाकत्रयम्) क्लेश कर्म्म और कर्म्मका फल हैं (रजस्तमोमूलम्) जो रजोगुण और तमोगुणसे उत्पन्न होते हैं (तस्य चक्षयोभवति) उस आवरण त्रयका नाश हो जाता है ॥ ४१ ॥

भा० का भा० । मनकी दो प्रकार की वृत्ति वाह्य विषयमें होती है उनमें से अकल्पित को महा विदेहा वृत्ति कहते हैं जो कल्पित वृत्तिके द्वारा स्थिर की जाती है जो योगिओं का पर शरीर में प्रवेश होता है वह केवल इस वृत्तिका परिणाम है जब इस वृत्तिमें योगी स्थिर होता है तब उसकी बुद्धिके आवरण त्रय क्षय होजाते हैं ॥ ४१ ॥

स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् भूतजयः ॥ ४२ ॥

सू० का प० । (स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्व संयमात्) स्थूल गुण अर्थात् गन्धादि स्वरूप अर्थात् तत्तत् भूत सम्बन्धी परमाणुओंका समूह सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्व अर्थात् पञ्चतत्वोंकी तन्मात्रा इनके संयम से (भूतजयः) भूतका जय होता है ॥ ४२ ॥

सू० का भा० । पञ्च तत्वके गुण स्वरूप तथा तन्मात्रा में संयम करने से भूत जय प्राप्त होती है ॥ ४२ ॥

तत्रपार्थिवाद्याःशब्दादयोविशेषाः सहाकारादिभिर्धर्मैःस्थूलशब्देनपरिभाषिता एतद्भूतानांप्रथमंरूपंद्वितीयंरूपंस्वसामान्यंमूर्तिर्भूमिः स्नेहोजलंवन्हिरुष्णतावायुः प्रणामीसर्वतोगतिराकाशइत्येतत्स्वरूपशब्देनोच्यते अस्यसामान्यस्यशब्दादयोविशेषः तथाचोक्तं एकजातिसमन्वितानामेषांधर्ममात्रव्यावृत्तिरितिसामान्यविशेषसमुदायोत्रद्रव्यंद्विष्ठोहिसमूहः प्रत्यस्तमितभेदावयवानुगतः शरीरंवृक्षोयूथंवनमितिशब्देनोपात्तभेदावयवानुगतःसमूहउभये देवमनुष्याःसमूहस्यदेवाएकोभागोमनुष्याद्वितीयोभागस्ताभ्यामेवाभिधीयतेसमूहः सचभेदाभेदविवक्षितआम्राणांवनं ब्राह्मणानांसंघःआम्रवनंब्राह्मणसंघइति सपुनर्द्विविधोयुतसिद्धावयवोऽयुतसिद्धावयवश्चयुत सिद्धावयवःसमूहोवनंसंघइतिअयुतसिद्धावयवःसंघातःशरीरंवृक्षःपरमाणुरितिअयुतसिद्धावयवभेदनुगतः समूहोद्रव्यमितिपतंजलिः

एतत्स्वरूपमित्युक्तं अथक्रियेषां सूक्ष्मरूपंतन्मा त्र भूतकारणं-
तन्मात्रैकोवयवःपरमाणुः सामान्यविशेषात्माऽयुतसिद्धावयव
भेदानुगतः समुदायइत्येवंसर्वतन्मात्राण्येतत्तृतीयमथयभू
तानांचतुर्थंरूपंख्यातिक्रियास्थितिशीलागुणः कार्यस्वभावानुपा-
तिनोन्वयशब्देनोक्ताः अथैषांपंचमरूपमर्थवत्वंभोगापवर्गार्थ-
तागुणेष्वन्वयिनीगुणास्तन्मात्रभूतभौतिकेष्वितिसर्वमर्थवत्तेष्वि-
दानीभूतेषुपंचसुपंचरूपेषुसंयमात्तस्यतस्यरूपस्यस्वरूप-
दर्शनंजयश्चप्रादुर्भवतितत्रपंचभूतस्वरूपाणिजित्वाभूतजया-
भवति तज्जयाद्वत्सानुसारिण्यइवगावोस्यसंकल्पानुविधा-
यिन्योभूतप्रकृतयोभवंति ४२

भा० का प० । (तत्रपार्थिवाद्या शब्दादयो विशेषाः) पृथ्वी आदि के शब्दादि विशेष गुण (सहकारादिभिर्द्धर्मैः स्थूलशब्देन परिभाषिताः पृथिवी आदि जो स्थूल द्रव्य हैं उनके सहकारी होनेसे गुण भी स्थूल कहे जाते हैं (एतद्भूतानां प्रथमं रूपम्) तत्वोंका यह प्रथम रूप है (द्वितीय रूपं सामान्य मूर्तिः) तत्वोंका द्वितीय रूप प्रत्यक्ष मूर्ति अर्थात् पृथ्वी आदिका जो स्वरूप देखनेमें आता है वह है (भूमिः स्नेहो जलं वह्नि रुष्णाता वायुः प्रणामी सर्वतोगतिराकाश इत्येतत्स्व रूपशब्देनोच्यते) भूमि घृतादि जल, उष्णता वायुगमनशील और आकाश वह कि जिसमें सबका गमनागमन होता है यह सब स्वरूप शब्दसे गृहीत होते हैं (अस्य सामान्यस्य शब्दादयोविशेषाः) उक्त सामान्य रूपके शब्दादि विशेषरूप हैं (तथाचोक्तम्) ऐसाही कहा भी है (एकजातिसमन्वितानामेषांधर्म्म मात्रव्यावृत्तिरिति) यह जो पंच तत्व एक जाति अर्थात् मूर्तत्व वा भूतत्व गुणसे एक हैं परन्तु अन्य धर्म्मों से भिन्न है (सामान्यविशेषस समुदायोत्र द्रव्यम्) सामान्य और विशेषता केवल समुदाय पर निर्भर है) द्विष्ठोहि-

समूह:) एकत्रित होने का समूह कहते हैं (शरीरंवृक्षोयूथोवनमिति) जैसे शरीर वृक्ष यूथ सेना और वन इनमें अव यव सामान्य द्रव्य और शरीरादि विशेष हैं (शब्देनोपात्तभेदावयवानुगत:समूह:) शब्दके कथन से अवयवगतभेद समझा जाता है (उभयेदेवमनुष्या:) जैसे देव और मनुष्यों की एक समुदाय कहने से (समूहस्यदेवाएकोभाग:) बोध होताहै कि इस समुदायका देवता लोग एक भाग है (मनुष्या:द्वितीयोभाग:) मनुष्य दूसरा भाग है (ताभ्यामेवाभिधीयतेसमूह:) इन दोनों से समूह कहाता है (सचभेदाभेदविवक्षित:) समूह दो प्रकार का होता है अर्थात भेद अव यववाला और अभेद अवयवाला (आम्राणाम्वनमब्राह्मणानामसद्य:) आम के वृक्षों का वन ब्राह्मणों की सभा (सपुनर्द्विविध:) समूह फिर दो प्रकार का है (युतसिद्धावयवोयुतसिद्धावयवश्च) एक युत सिद्धावयव दूसरा अयुत सिद्धावयव (वनंसद्य:इत्ययुतसिद्धावयव:संघात:) वन और सभा अयुत सिद्धावयव हैं (शरीरंवृक्ष:परमाणुरितियुतसिद्धावयवभेदानुगत:) शरीरवृक्ष और परमाणु युत सिद्धावयव समूह है अर्थात इनके अवयव भिन्न २ (समूहोद्रव्यमिति पतंजलि:) पतंजलि ऋषिके मतमें समूहको द्रव्य कहते हैं (एतत्स्वरूपमित्युक्तम्) यह समुदाय तत्वों का एक रूपहै (अथकिमेषाम्सूक्ष्मरूपम) इन का सूक्ष्मरूप क्या है (तन्मात्राणाभूतकारणम्) तन्मात्राओंका जो भूत कारण हैं वह सूक्ष्मरूप है (तस्यैकोवयव:परमाणु:) उसका एक अवयव परमाणु कहाता है (सामान्यविशेषात्माऽयुतसिद्धावयवभेदानुगत:समुदाय:) सामान्य और विशेष रुप अयुत सिद्धा वयव भेदनुगत (इत्येवंसर्वतन्मात्राणिएतत्तृतीयंरूपम्) पञ्चतत्व कातन्मात्र इनका तीसरारूप है (अथ भूतानांचतुर्थंरूपंख्यातिक्रिया[illegible]तिशीलागुणा:) तत्वोंका चतुर्थ रूप ख्याति प्रकाश क्रिया और [illegible] वाले गुण है (अथैषांपंचमंरूपमर्थ ततम्) तत्वों का पाचवा [illegible] है (भोगापवर्गार्थता गुणेष्वन्वयिन: भोग और मोक्ष रूप जित[illegible] तोंके गुणों से सम्बन्ध रखते हैं गणास्तन्मात्रभौतिकेष) गुण[illegible] [illegible] से सम्बन्ध रखते हैं (इति

सर्वमर्थवत्त्वेषु)इस क्रमसे सब अर्थ तत्वो मे रहते हैं (तेष्विदानीं भूतेषुपंचसु पंचरूपेषुसंयमात्) पंचभूत और उनके पांचरुपो में संयम करने से (तस्य तस्यरूपस्य दर्शनंजयश्चप्रादुर्भवति) उस उस रूप का दर्शन होता है और उसे में जय लाभ होता है तत्रपंचभूतस्वरूपाणि जित्वा) पंच भूतों के स्वरूपों को जीत कर (भूतजयो भवति) तत् कि जय होती है तत्र (यावत्सानुसारिण्यइववत्सावोस्यसंकल्पानुविधायिन्योभूतप्रकृतयोभवन्ति) भूत जयसे प्रकृति ऐसी होती हैं जैसे गौ अपने बच्छे को प्रेमसे दूध देती है ४२

भा० का० भा०—पंच ततवों के पांच प्रकार के रूप हैं उनमें संयम करने से योगी को समस्त भूत प्रकृति ऐसे इच्छा को पूर्ण करने वाली हो जाती हैं जैसे गौ अपने बच्छड़े की इच्छा पूर्ण करने वाली होती है । ४२

ततोणिमादिप्रादुर्भावःकायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥ ४३ ॥

सू० का प० (ततः) इसके अनन्तर (अणिमादि प्रादुर्भावः) अणीमादि सिद्धि ओं का प्रकाश (काय सम्पत्) शरीर सम्बन्धी सब सम्पत्ति प्राप्त होती हैं (च) और (तद्धर्मानभिघातः) शरीर के गुणो का नाश नहीं होता ।। ४३ ।।

सू० का भा० भूत जय के अनन्तर (योगी को) अणिमादि सिद्धि यों की प्राप्ति शारिरक सम्पत्ति की प्राप्ति होती है और शारीरक गुण अविनाशी होजाता है ॥ ४३ ॥

तत्राणिमाभवत्यणुः लघिमालघुर्भवति महिमामहान् भवतिप्राप्तिरंगुल्यग्रेणापिस्पृशतिचन्द्रमसंप्राकाम्यमिच्छानभिघा

तः भूमावुन्मज्जतिनिमज्जतियथोदकेवशित्वंभूतभौतिकेषुवशी भवत्यवशश्चान्येषांईशित्वंतेषांप्रभवाप्ययव्यूहानामीष्टेयत्रका मावसयित्वं सत्यसङ्कल्पतायथासंकल्पस्तथाभूतप्रकृतीनामवस्थानंनच शक्तोपिपदार्थविपर्यासङ्करोतिकस्मात्अन्यस्ययत्रकामावसायि नःपूर्वसिद्धस्यतथाभूतेषुसङ्कल्पादितिएतान्यष्टैश्वर्याणिकायसम्प द्धर्मानभिघातश्चपृथ्वीमूर्त्यानिरुणद्धियोगिनः शरी रादिक्रियांशिलामप्यनुविशतीति नापःस्निग्धाःक्लेदयंतिनाग्नि रुष्णोदहतिनवायुःप्रणामीवहत्यानावरणात्मकेप्याकाशे भवत्यावृत्त कायःसिद्धानामप्यदृश्योभवयि ॥ ४२ ॥

भा॰ का पा॰ (तत्राणिमा भवत्यणुः) अणिमा सिद्धि वह है जिस्से योगी अणु के समान सूक्ष्म होजाता है (लघिमा लघुर्भवति) लघु होने को लघिमा कहते हैं (प्राप्तिरंगुल्यग्रेणापि स्पृशति चन्द्रमसम्) प्राप्ति सिद्धि उसे कहते हैं जिससे योगी आकाश गामी होकर चन्द्रलोक को भी स्पर्श कर सक्ता है (प्राकाम्य मिच्छा नभिघातः) प्राकाम्य सिद्धि उसे कहते हैं जिस्से योगी की इच्छा पूर्ण होती है (भूमा वुन्मज्जति निमज्जति यथो दके) पृथ्वी में इस रीति से डूबता है जैसे जल में (भूत भौतिके षुवशी भवत्यवशश्चान्येषाम्) पंच भूत और समस्त भौतिक पदार्थ उसके वश में होते हैं और वह किसी के वश में नहीं रहता है इस सिद्धि को वशित्व कहते हैं (ईशी त्वम्) ईशीत्व सिद्धि वह है (तेषां प्रभवा प्यय व्यूहाना मीष्टे) भूत भौतिक पदार्थों की उत्पत्ति प्रलय और स्थिति में समर्थ (यत्र कामा वसा यित्वम्) जहां इच्छा का अन्त हो वहां तक (सत्य संकल्पता) इच्छा का पूरा होना है (यथा संकल्पस्तथा भूत प्रकृतीना भवतीस्थानम्) योगी की इच्छा नुसार प्रकृति की स्थिति होती है (नच)और न (शक्तोपि) समर्थ होनेपर भी योगी (पदार्थ विपर्य्यासंकरो

ति)पदार्थों को उलटा पुलटा अर्थात् सृष्टि क्रम विरुद्ध करता है (कस्मात्) क्योंकि (अन्यस्य यत्र कामावसायिनः) और लोगों की इच्छा भङ्ग रूप दोष का भय रहता है (एतान्यष्टावैश्वर्याणि) यह आठ ऐश्वर्य वासिद्ध हैं (कायसम्पत्वक्ष्यमाणा) अगीले सूत्र में जो कही जायेंगी उन्हे काय संपत् कहते हैं (तद्धर्मानभिघातश्च) तद्धर्मानभिघात का अर्थ यह है कि (पृथ्वी मूर्त्या ननिरुणद्धि योगीनः शरीरादि क्रियाम्) काठ्य रूप पृथ्वी नहीं रोक सकती योगी की शारीरक क्रियाओं को (शिलामप्यनुविशती-ति) कठोर पाषाण में भी योगी प्रवेश कर सक्ता है (नाग्निरुष्णदहति) अग्नि भी योगी को नहीं जला सक्ता (न वायुः प्रणामीवहति) नहतवा दुःखद वा सुखानेवाला चलता है (अनावरणात्मकेप्याकाशेभवत्यावृत्तकायः जो आकाश किसी को नही छिपाता उसमें योगी का शरीर छिपजाता है (सिद्धानामप्यदृश्योभवति) अर्थात् योगी सिद्धों के नेत्रों से भी अदृश्य हो जाता है ॥ ४५ ॥

भा० का भा० ।—भूतजय के अनन्तर योगी को अणि मादि सिद्धिओं की प्राप्ती होती हैं—अणिमा से अणु और लघिमा से लघु, महिमा से महान् होता है प्राप्ति से योगी को वह शक्ति बढती है जिस्से योगो चन्द्रमा को अंगुली से स्पर्श कर सक्ता है अर्थात् पूर्व जो आकाश गमन कहा था उसके द्वाराही योगी चन्द्रस्पर्शादि कठिनतर कार्य्य कर सक्ता है प्राकाम्यका अर्थ है कि इच्छा पूरी होना वशित्व वह सिद्धि है जिस्से आणिमात्र वश हो जायं और आप किसी के वश में न रहे (यहां वश होने से राज्यादि का प्रयोजन नहीं है) ईशित्वका अर्थ है कि प्राणिओं की उत्पत्ति लय और स्थिति को जानता है योगी के संकल्प के अनुकूल ही पदार्थ हो जाता है परन्तु इसमें शंका होती है कि जो योगी को पदार्थों के उलट पुलट करने की शक्ति होती है तो वह जगत् के पदार्थों में विपर्य्यय क्यों नही करता इसका समाधान यह है कि योगी समर्थ

होने पर भी नियम विरुद्ध कार्य्य नहीं करता क्योंकि सब सिद्धों का सिद्ध परम योगी परमेश्वर है उस के संकल्प मे विघ्न होगा जो सर्वथा असम्भव है ॥ ४३ ॥

रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानिकायसंयत् ॥ ४४ ॥

सू० का प० — स्पष्ट है ॥ ४४ ॥

सू० का भा०—रूप में मनोहरता बल वज्र संहनन अर्थात् वज्रादि से अच्छेद्य होना यह काय सम्पत् कहाती है ।

दर्शनीयः कांतिमान् अतिशयबलः वज्रसंहननश्चेति ॥ ४४ ॥

भा० का प०।— (दर्शनीयः) मनोहर रूप वाला (कान्तिमान्) तेजस्वी (अति शयबलः) अधिक बल वाला (वज्र संहनन श्चेति) वज्र शास्त्र वा शस्त्र से अछेद्य होता है ॥

भा० का भा० स्पष्ट ॥ ४४ ॥

ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्वसंयामादिन्द्रियजयः ॥ ४५ ॥

सू० का प० (ग्रहण स्वरूपा स्मितान्व यार्थवत्व संय मात्) ग्रहण अर्थात् जिनसे पदार्थ ज्ञान होता है इन्द्रिय स्वरूप अर्थात् बुद्धि अस्मिता अहंकार इन्द्रियों के गुण और वासना इन पांचो में संयम करने से (इन्द्रियजयः) इन्द्रियां वश में होती हैं ॥ ४५ ॥

सू० का भा० इन्द्रिय बुद्धि अहंकार गुण और वासना में संयम करने से योगी की समस्त इन्द्रियां वश में होजाती हैं ॥ ४५ ॥

सामान्यविशेषात्मा शब्दादिर्ग्राह्यः तेष्विन्द्रियाणां वृत्तिर्ग्रहणं नचतत्सामान्यमात्रग्रहणाकारं कथमनालोचितः सविषयविशेषइन्द्रियेणमनसानुव्यवसीयेतेतिस्वरूपंपुनःप्रकाशात्मनोबुद्धिसत्वस्यसामान्यविशेषयोरयुतसिद्धावयवभेदानुगतः समूहोद्रव्यमिन्द्रियन्तेषांतृतीयंरूपंसस्मितालक्षणोहंकारः तस्यसामान्यस्येन्द्रियाणिविशेषाः चतुर्थं रूपंव्यवसायात्मकाःप्रकाशक्रियास्थितिशीलागुणाःयेषामिंद्रियाणिसाहंकाराणिपरिणामःपञ्चसंरूपंगुणेषुयदनुगतंपुरुषार्थवत्वमितिपञ्चस्वेतेष्विन्द्रियरूपेषुयथाक्रमंसंयमः तत्रतत्रजयंकृत्वापञ्चरूपजयादिंद्रियजयः प्रादुर्भवति योगिनः ॥ ४५ ॥

भा० का० प० ।—(सामन्य विशेषात्मा शब्दादि ग्राह्यः) सामान्य और विशेषरूप से शब्दादिक जितने विषय है वह सब ग्राह्य है तेष्ठिन्द्रियाणां वृत्तिर्ग्रहणम्) उन ग्राह्य विषयों में जो इन्द्रियों की वृत्ति जाती हैं उस वृत्ति को ग्रहण कहते है (नचततत्सामान्य मात्र ग्रहणाकारम्) परन्तु वह वृत्ति सामान्य ग्रहणा कार नहीं है (कथमनालोचि तस्सविषय विशेषः इन्द्रियेण मनसानु व्यवसीयेत्) किस रीतीसे बिना विचारा विषय मनसे वा इन्द्रियों से ग्रहीत हो सक्ता हैं इससे प्रथम जो ग्रहण द्वारा विषय ग्रहीत होता है वह प्रथम स्वरूप इन्द्रियों का कहलाता है और मनद्वारा जो विचार होता हैं वह द्वितीय रूप है (पुनः) फिर (प्रकाशात्मनो बुद्धिसत्वस्य) ज्ञान स्वरूप जो बुद्धि (सामान्य विशेषयो रयुतसिद्धा वयव भेदानु गतः) सामान्य और विशेष के भेद को जताती है वह इन्द्रियों का तृतीय रूप है (सस्मिता लक्षणो हंकारः) अहंकार चतुर्थ रूपहै (व्यवासायत्मिका प्रकाशक्रिया स्थितिशीला गुणा येषामिन्द्रियाणि साहंकाराणि परिणामः पंचसं-

रूपम्) अनेक कार्यो संव्यस्त प्रकाश करने वाले और स्थिर स्वभाव वाले जिन के अहंकार सहित सब इन्द्रियां कार्य है वह इन्द्रियों का पंचम रूप है (गुणेषु यदनुगतम् पुरूषार्थ वत्वमिति) गुणों के संग जो पुरुषार्थता अर्थात् उद्योग है (पंचस्वे ते षु यथाक्रमं संयम:) इन्द्रियों के पांचो रूपो में जो क्रमसे संयम करना है (तत्र तत्र जयं कृत्वा) उन रूपों में जय लाभ कर के (पंच रूपजयादिन्द्रि यजय:)उक्त पांच रूपों के जय करने से इन्द्रियों का जय लाभ होता है ४५।

भा० का० भा० ।—इन्द्रियों के जो पांच प्रकार के रूप अर्थात ग्रह ण स्वरूप अस्मिता अन्वय और अर्थवत्व उनमें योगी को उचित हैं कि समाधि से जय लाभ अर्थात उसको अपने वशमें कर के समस्त इन्द्रियों कोजीते ४५

ततोमनोजवित्वंविकरणभावःप्रधानजय श्च ॥ ४६ ॥

सृ० का प० (ततः) इन्द्रिय जय के अनन्तर (मनोज वित्वम्) उत्तम गतिकी प्राप्ति (विकरण भाव:) इन्द्रियों के अनुकूल वृत्तिकी प्राप्ति (प्रधा न जय श्च) और प्रकृति के सब विकार वश में होते हैं ॥ ४६ ॥

सू० का भा० ।—तब भाष्य इन्द्रियजय विकरणभाव और प्रधान जय होता है

भा० का प० ।— (कायस्यानुत्तमगतिलाभोमनोजवित्वम्) शरीर की उत्तम गति को प्राप्त होना मनोज वित् कहता है (विदेहानामिन्द्रियाणा-म भिप्रेतदेशकालविषया पेक्षावृत्तिलाभोविकरण भाव:) देहरहित अर्थात् इन्द्रियों का जो इष्ट स्थल समय और विषय की [illegible] कहते हैं (सर्वप्रकृति विकारवशि-

कार इन्द्रियों के बुं इन्द्रियो

जय:) इन्द्रियां वश में हो विकरण भाव

सू० का भा० इन्द्रिय के विकारो के जीतने को प्रधानजय कहते हैं

[illegible] समस्त इन्द्रि तीनों सिद्धयां (मधुप्रतीकाउच्यन्ते) मधुप्रती-

त्वं अन्तः [illegible] ति वाल

वृत्ति है उस की प्राप्ति

एव प्रधान[illegible]

क कहाती है (एतायकरण पंचकोपजयाद धिगस्यन्ते) यह तीनो सिद्ध पूर्वोक्त करण अर्थात ग्रहण पंचक के जीतने से होती है ४६

कायस्यनुत्तमोग तिलाभोमनोजवित्वंविदेहाना मिंद्रियाणा मभिप्रेतदेशाकालविषयापेक्षोह तलाभो विकरणभाव:सर्वप्रकृ ति विकारव शित्व प्रधानजयइत्येता स्तिम्र: सिद्धयोमधुप्रतीकाउच्य न्ते एताश्चकरणपञ्चक रूपजयादधिगस्यन्ते ॥ ४६ ॥

भा० का० भा०—कायाकी उत्तम गति मनोज वित्व कहती है इन्द्रियों की इष्ट गति प्रतिको विकरण भाव और प्रकृति को विकारो के जीतने को प्रधानजय कहते है इन तीनो सिद्धयों का नाम मधुप्रत्तिका है यह पूर्वोक्त पांच करण के जय से प्राप्त होती हैं ४६

सत्व पुरुषान्यताख्याति मात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥ ४७ ॥

सू० का प० (सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य) सत्व जो बुद्धि वह जब निर्मल होकर केवल परमेश्वर के चिन्तनही में लयहो उस योगी को (सर्वभावाधिष्टातृत्वम्) जितने भाव अर्थात् गुण है वेसब उस योगीको प्राप्त होते हैं (सर्वज्ञातृत्व च) और सब गुणोका यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥

सू० काभा० जब योगी की बुद्धि सब विषयों के त्याग से निर्म्मल होकर केवल ईश्वर चिन्तन में लय होती है तब उसे सर्वभावा धिष्टातृत्व और सर्वज्ञत्व प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥

निर्धूतरजस्तमोमलस्यबुद्धिसत्वस्यपरेवैशारद्ये परस्यांवशीकार संज्ञायांवर्तमानस्यसत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्ररूपप्रतिष्टस्य

र्व भावाधिष्टातृत्वं सर्वात्मानोगुणाव्यवसायव्यवसेयात्मकाःस्वा मिनंक्षेत्रज्ञं प्रत्यशेषदृश्यात्मत्वेनोपस्थित्ताइत्यर्थः सर्वज्ञातृत्वं सर्वात्मनांगुणानांशांतोदिताव्यपदेश्यधर्मत्वेनव्यवस्थितानाम क्र मोपारूढं विवेकजं ज्ञानमित्यर्थः इत्येषा विशोकानामसिद्धिःयां प्राप्ययोगीसर्वज्ञःक्षीणक्लेशबन्धनोवशी विहरति ॥ ४७ ॥

भा०का प० (निर्धूतरजस्तमोमलस्य बुद्धिसत्वस्य) धोयेगये है रजोगुण और तमो गुण केमल जिस सत्‌गुण विशिष्ट बुद्धि के (परे वैशारद्ये) जब परम विशारद हो जाय (परस्य वशीकारसंज्ञायाम्) जब परम वशी-कार संज्ञा अर्थात् समस्त विषयों से बुद्धि को रोकने की अवस्था में वर्त-मान योगी को (सत्व पुरुषान्यताख्यातिमात्ररूपप्रतिष्टस्य) केवल परमेश्वर के चिन्तन में लग्न योगी को (सर्वभावाधिष्टातृत्वम्) सर्व भावो में स्वामी पन प्राप्त होता हैं (सर्वेआत्मनोगुणाः) अर्थात् आत्मा के जितने गुण है (व्यवसायव्यवसेयात्मकाः स्वामिनक्षेत्रज्ञम्) वह सब अपने स्वामी क्षेत्रज्ञको (प्रत्यशेषदृश्यात्मनोपस्थिताः) दृश्य पनसे प्राप्त होते हैं (सर्वज्ञा तृत्वम्) सर्वज्ञता का अर्थ यह है कि (सर्वात्मानांगुणानाम्) आत्मा के जितने गुण है (शान्तोदिताव्यदेश्यधर्म्मत्वेनव्यवस्थितानाम्) शान्त अर्थात् व्यापार रहित और उदित अर्थात् जो सचेष्ट हैंवे मुख्य धर्म्म से व्यवस्थित हैं (अक्रमोपारूढंविवेकजंज्ञानमित्यर्थः) अर्थात् विवेक से उत्पन्न हुआ जो ज्ञान (इत्येषाविशोकानामसिद्धिः) यह विशोक नामक सिद्धि हैं (यांप्राप्य)जिसको पाकर (योगी सर्वज्ञः क्षीणक्लेश बन्धनोवशीविहरति) योगी सर्वज्ञ बन्धन रहित जितइन्द्रिय हो कर विचरता है ॥ ४७ ॥

भा० का भावार्थ ।—जब बुद्धि निर्मल होती है और योगी केवल ई-श्वर के चिन्तन में तत्पर रहता है तब योगी को सर्व भावा धिष्ठातृत्व अ-र्थात् आत्मा के समस्त गुणों में स्वामी भाव प्राप्त होता है और सर्व ज्ञता

अर्थात आत्मा के समस्त गुणों के द्वारा विवेक की उत्पत्ति और उसमे सत्य ज्ञान की प्राप्ति होती है इस सिद्धि का नाम विशोका है और इसकी प्राप्तिसेयोगी सर्वज्ञ और बन्ध रहित होकर विचरता है ॥ ४७ ॥

तद्वैराग्यादपिदोषवीजक्षयेकैवल्यम् ४८

सू० का प० (तद्वै राग्यादपि) उक्त सिद्धि ओं के वैराग्य से (दोष - विजक्षये) दोषों के वीज नाश होजाने से (कैवल्यम्) कैवल्य मोक्ष होती है ॥ ४८ ॥

सू० का भा० ।—सिद्धि ओं के वैराग्य से जब दोषो कावीज नाश होजाता है तब योगी कैवल्य को प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥

यदास्यैवंभवतिक्लेशकर्मक्षयेसत्वस्यायंविवेकप्रत्ययोधर्मः सत्वंचहेयपक्षेन्यस्तं पुरुषश्चापरिणामीशुद्धोन्यः सत्वादित्येवमस्यततो विरज्यमानस्यया निक्लेशवीजानिदग्धशालिवीजकल्पान्यप्रसवसमर्थानि सहमनसाप्रत्यस्तं गच्छन्तितेषुप्रलीनेषुपुरुषः पुनरिदंतापत्रयनभुंक्तेतदेतेषांगुणानांमनसिकर्मक्लेशविपाकस्वरूपेणाभिव्यक्तानांचरितार्थानांप्रतिप्रसवेपुरुषस्यात्यन्तिकोगुणवियोगकैवल्यंतदास्वरूपप्रतिष्ठाचित्तशक्तिरेवपुरुषइति ॥ ४८ ॥

भा० का० प० (यदा) जब (अस्यैवं भवति) योगी को ऐसा होता है (क्लेश कर्म क्षये) क्लेश रूपी कर्मों के नाश होने से (सत्वस्यायंविवेकप्रत्ययोधर्मः) बुद्धिका विवेकज्ञानरूपीधर्म (सत्वं चहेयपक्षेन्यस्तमं) और सत्व हे पक्ष के अन्तर्भूत है (पुरुषश्चापरिणामीशुद्धोन्यसत्वात्) परिणाम अर्थात् एक दशा से दूसरी दशाको प्राप्त होने से रहित शुद्ध और बुद्धिआदि से पृथक् है (इत्येवमस्यततोविरज्यमानस्य) ऐसा मानकर योगी जब जगत् से उपरत होता है (यानिक्लेशवीजानि) तब उसके क्लेश के सब क्लेशों के बीज (दग्धशालिवीजकल्पान्यप्रसवसमर्थानिसहमनसाप्रत्यस्तङ्गच्छ

न्ति) ऐसे हो जाते हैं जैसे जलेहुए धनोंके बीज फिर उत्पन्न होने के योग्य नही रहते हैं तब मन अर्थात् संकल्प और विकल्प सहित अस्त होजने से मनुष्य फिर अधिभौतिक अधिदैविक और अध्यात्मिक दुःखोंको नही भोगता (तदेतेषांगुणानाम्मनसिकर्म्मक्लेशविपाकस्वरूपेणाभिव्यक्तानाम्अप्रतिप्रसवे पुरुषस्यात्यन्तिकोगुणैर्वियोगः) उक्त गुण जो मन में क्लेश कर्म्म और कर्म्म फल के रूप से रहते हैं दग्ध बीज होजाने से पुरुष का गुणों से अत्यन्त वियोग होजाता है (कैवल्यम् स्वरूपप्रतिष्ठाचितिशक्तिरेवपुरुषःइति इस अवस्था को कैवल्य स्वरूप प्रतिष्ट वा चितिशक्ति कहते हैं ॥ ४८ ॥

भा० का भ० ।—जब योगी को विवेक प्रत्यय अर्थात् विवेक ज्ञान होता है तब योगी को कैवल्य प्राप्त होता अर्थात् जब योगी विवेक ज्ञान को लाभ करके जगत् से उपर होता है तब उसको कैवल्य प्राप्त होता है तब योगी के जितने क्लेश कर्म्म और विपाक हैं वह सब ऐसे दग्ध बीज होजाता है जैसे जलाहुआ अन्न उत्पन्न होने योग्य नही रहता—तब इस को संकल्पादि सब विनष्ट होजता है और तापत्रय भी नही रहते ॥ ४८ ॥

स्थान्युपनिमन्त्रणेसंगस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसंगात् ॥ ४९ ॥

सू० का प० (स्थान्युपनिमन्त्रणे) उपनिमन्त्रण अर्थात् योग भूमिकाओंमें स्थिर होनेसे (संगस्मयाकरणं) स्मयादिकोंसे संग करना (पुनरनिष्टप्रसंगात्) फिरभी अनिष्ट अर्थात् दुःख प्रद्रसांसारिक विषय होते हैं ॥ ४९ ॥

सू० का भा० ।—योग भूमिकाओं में स्थिर न होने से योगी को फिर भी अनिष्ट की प्राप्ति होती है ॥ ४९ ॥

चत्वारः खल्वमीयोगिनःप्रथमकल्पिकोमधुभूमिकः प्रज्ञाज्योतिरतिक्रान्तभावनीयश्चेतितत्राभ्यासीप्रवृत्तमात्रज्योतिः प्रथमः

ऋतंभरप्रज्ञो द्वितीयः भूतेन्द्रियजयी तृतीयः सर्वेषु भावितेषु भाव-
नीयेषु कृतरक्षाबन्धः कृतकर्त्तव्यसाधनादिमांश्चतुर्थो यस्त्वतिक्रा-
न्तभावनीयस्तस्य चित्तप्रतिसर्ग एकोऽर्थः सप्तविधास्य प्रान्तभूमिप्रज्ञाः
तत्र मधुमतीं भूमिं साक्षात्कुर्वतो ब्राह्मणस्य स्थानिनो देवाः सत्त्वविशुद्धि
मनुपश्यन्तः स्थानैरुपनिमन्त्रयन्ते भो इहास्यतामिह रम्यतां कमनी
योऽयं भोगः कमनीयेयं कन्या रसायनमिदं जरामृत्युं बाधते वैहायस
मिदं यानममी कल्पद्रुमाः पुण्या मन्दाकिनी सिद्धा महर्षय उत्तमा
अनुकूला अप्सरसो दिव्ये श्रोत्रचक्षुषी वज्रोपमः कायः स्वगुणैः स-
र्वमिदमुपार्जितमायुष्मता प्रतिपद्यतामिदमक्षयमजरममरस्थानं दे
वानां प्रियमित्येवमभिधीयमानः सङ्गदोषान् भावयेत् घोरेषु संसा
राङ्गारेषु पच्यमानेन मया जननमरणान्धकारे विपरिवर्त्तमानेन कथ
ञ्चिदासादितः क्लेशतिमिरविनाशी योगप्रदीपस्तस्य चैते तृष्णायो
नयो विषयवायवः प्रतिपक्षाः स खल्वहं लब्धालोकः कथमनया
विषयमृगतृष्णया वञ्चितस्तस्यैव पुनः प्रदीप्तस्य संसाराग्नेरात्मा
नमिन्धनीकुर्यामिति स्वस्ति वः स्वप्नोपमेभ्यः कृपणजनप्रार्थनीयेभ्यो
विषयेभ्य इत्येवं निश्चितमतिः समाधिं भावयेत् सङ्गमकृत्वा स्मयम
पि न कुर्य्यात् एवमहं देवानामपि प्रार्थनीय इति स्मयादयं सुस्थि
तंमन्यतया मृत्युना केशेषु गृहीतमिवात्मानं न भावयिष्यति तथा
चास्य छिद्रान्तरप्रेक्षी नित्यं यत्नोपचर्य्यः प्रमादो लब्धविवरः क्ले-
शानुत्तम्भयिष्यति ततः पुनरनिष्टप्रसङ्गः एवमस्य सङ्गस्मयावकुर्वतो
भावितोऽर्थो दृढीभविष्यति भावनीयश्चार्थोऽभिमुखीभविष्यतीति-

॥ ४८ ॥

भा० वा प० ।—(चत्वारः खल्वमीयोगीनःप्रथमकल्पिकोमधुभूमिकः) यह योगी चार प्रकार के होते हैं उनमें से पहला मधुभूमिक कहता है (प्रज्ञाज्योतिरतिक्रान्तभावनीयश्च) दूसरे प्राज्ञ तीसरे ज्योति चौथे अति क्रान्त भावनीय (तत्राभ्यासीप्रवृत्तमात्रज्योतिःप्रथमः) उसमें से प्रथम वह भूमि है जिसमें ज्योति में प्रवृत्ति मात्र होती है (ऋतम्भरप्रज्ञोद्वितीयः) द्वितीय ऋतंभर प्रज्ञ कहता है भूतेन्द्रियजयीतृतीयः) भूतेन्द्रिय तीसरास (सर्वेषुभावितेषुभावनीयेषुकृतरक्षाबन्धः) जितने विचारे हुए और विचरने योग्य विषय हैं उन में किया है रक्षाबन्धन जिसने (कृतकर्तव्यसाधना दि मांश्चतुर्थः) किये हैं कर्तव्य साधन जिसने वह चौथा है (यस्त्वतिक्रान्तभावनीय वस्यचित्त प्रतिसर्ग एकोर्थः) जो अतिक्रान्तभावनीय है उसका चित्त एक विषय में संलग्न रहता है (अस्यसप्तविधाः प्रान्त भूमिप्रज्ञाः) इस की सात प्रकार की प्रान्त भूमि है (तत्रमधुमतीं भूमिं साक्षात् कुर्वतो ब्राह्मणस्य) उन भूमिओं में से मधुमती भूमि में जब योगी प्राप्त होता है (स्थानिनोदेवाः शुद्धिमनुपश्यन्तः) देवलोग योगी के चित्त की शुद्धिको देखकर (स्थानैरुपनिमंत्रयन्ते) प्रसंगद्वारा निमंत्रितकरते हैं (भोरिहा स्य तामिहरम्यताम्) अजी यहां आओ यहां रमण करो (कमनीयो यं भोगः) यह भोग मनोहर है (कमनीये यं कन्या) यह मनोहर कन्या है (रसायन मिदं जरा मृत्युं बाधते) यह रसायन अर्थात् ओषधिओं जरा वृद्धावस्था और मृत्यु को नाश करता है (वैहायस मिदं यान ममीकल्पद्रुमाः) यह आकाश गामीयान अर्थात् सवारी हैं और यह कल्पवृक्ष है (पुण्यामन्दाकिनी) यह पवित्र गङ्गा नदी है (सिद्धामहर्षयः यह सिद्ध (ऋषिलोग हैं उत्तमाअनुकूलाअप्सरसः) उत्तम और प्रेम करने वाली यह अप्सरा हैं (दिव्यंश्रोत्रचक्षुषी) यह दिव्य श्रोत्र और नेत्र है वज्रोपमःकायः) वज्रकी समान शरीर (स्वगुणैस्सर्वमिदमुपार्जितमायुष्मता) तुमने अपने गुणोंसे सब को प्राप्त किया (प्रतिपद्यतामिदमक्षयमजर ममरस्थानन्दे

वानाम् प्रियस्थिल्यं वमसिधीयमान:) प्राप्तही इस अचय अजर अमर देव- तों के प्रिय स्थान को उनके वचनो से मोहित न होकर (संगदोषानुभा- वयेत) संगके दोष कोही विचारे (घोरेषु संसारांगारेषु) संसार की अ- ग्नि में (पच्यमानेनमया जननमरणान्धकारे विपरि वर्त्तमानेनकथंचिदासा- दित: क्लेशतिमिरविनाशी) जलते हुए नें मैंने क्लेशों के नाश वाला (यो- गप्रदिप:) योगरूपीदीपक पाया है (तस्यचैतेतृष्णायोनय:) उक्त सब वि- षय योगदीपकी तृष्णा योनि है (विषय वायव: प्रतिपक्ष:) यह विष रूपी वायु योग की शत्रु है (सखल्वहंलब्धालोक: कथमनयविषयस्त तृष्णया वंचि तस्स्यैव पुन:, प्रदिप्तस्यसंसाराग्ने रात्मानमिन्धनीकुर्य्याम्) सो मैं प्रकाश को प्राप्त होकर फिर जलती हुई संसार अग्नि में अपनी आत्मा को क्यों इन्धन बनाऊं (स्वस्तिव: स्वप्नोपमेभ्य: कृपणजनप्रार्थनियेभ्योविषयेभ्यइत्यव निश्चितमतिस्समाधिंभावयेत्) जो सिद्धि देवता उत्तम विषयो में फंसाने का प्रयत्न करें उनसे योगी कहें की आप लोगों का कल्याणहो यह सब स्वप्न के समान है दीन दरिद्रवाला भी लोग इनको चाहते हैं इसमति में द्रढ़ होकर समाधि की चिन्ताकरे (संगमकृत्वास्मयमपिनकुर्य्यात्) विषय और विषयीजनों का संगत्यागकर उनका अनुमोदन भी नकरें (ए वमहन्देवानामपिप्रार्थनीय:) मेरी देवता भी स्तुति करते हैं (इति- स्मात्) इस अभीमान से (अयंसुस्थितम्मन्यतया मृत्युनाकेशेषुगृहीतमिवा- त्मानंनभावयिष्यति) योगी अपने को सुस्थित मानकर जीव को ऐसा स- मझेगा मानो इसके केशों को मृत्यु ने नहीं पकड़ रक्खा (तथा चास्य छि द्रान्तरप्रेक्षोनित्यंयत्नोपचर्य्य:प्रमादोलब्धविवर:क्लेशानुतम्भयिष्यति) और ऐसेही योगी के दोषों को देखनेवाला तथा यत्न से पृथक् रहनेवाला प्र- माद दोषों को पाकर क्लेशों को उठानेवाला होगा (तत:पुनर निष्ट प्र- संग:) उससे फिरभी अनिष्ट होगा ॥ ४९ ॥

भा० का० भा० — योगी चार प्रकार के होते हैं १ प्रथम काल्पिक २

मधुभूमिक ३ प्रज्ञाज्योति ४ अति क्रान्तभावनीय इनमें से कल्पिक योगी वह है जो अभ्यास करने वाला ज्योति में प्रवृत्त ही हुआ है, दूसरा मधुभूमिक वह कहाता है जो पूर्वोक्त ऋतम्भर प्रज्ञा को प्राप्त हुआ है तीसरा प्रज्ञाज्योति उस योगी को कहते हैं जिसने इन्द्रियों को जीत लिया हो और कर्तव्य में कृतकार्य्य हुआ हो वह अति क्रान्त भावनीय कहाता है अति क्रान्त भावनीय योगी की बुद्धि की सात भूमिका हैं उन भूमिकाओं में से मधुमति भूमिका प्राप्तहोती है तब देवता अर्थात् विद्वान लोग योगी की मानसिक शुद्धि की परिक्षा करने को अनेक लोभ दिखलाते हैं अर्थात् कहते हैं कि यह उत्तम भोग मनोहर स्थान और मनोहर स्त्री तुमको तुम्हारे तपोबल से प्राप्त हुई इत्यादि को सुनकर योगी उचित है कि उनका संगन करे और न यह अभिमान करे कि देवता मेरी स्तुति करते हैं इससे मैं बड़ा सिद्ध हूं क्योंकि उक्त विषयों का संगकरने से वा अभिमान से प्रमाद क्लेशों को वृद्धि करेगा उससे फिर उन्ही झगड़ों में पड़ होगा जिनसे छूटने को योग कियाथा ॥ ४९ ॥

क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजंज्ञानम् ॥ ५० ॥

सू० का० पा०—(क्षणतत्क्रमयोः) जितने काल में एक परमाणु पलटा खाता उतने काल को क्षण कहते हैं और उसके द्वितीय परमाणु से संयोग को क्रम कहते हैं उन दोनों में (संयमाद्विवेकजन्ज्ञानम्) संयम करने से विवेक अर्थात् अनुभाव सिद्ध ज्ञान उत्पन्न होताहै ५०

सू० का० भा० क्षण अर्थात् काल की सूक्ष्मा वस्था और गति में संयम करने से विवेक जात ज्ञान उत्पन्न होता है ५०

यथापकर्षपर्यन्तन्द्रव्यंपरमाणुरेवम्परमापकर्षपर्यन्तःकालक्षणः यावतायासमयेनचलितः परमाणुः पूर्वदेशंजह्यादुत्तरदेशमुपसं

पद्यंतसकाल: चण: तत्प्रवाहाविच्छेदस्तुक्रम: चणात्तत्क्रमयो-
र्नास्तिवस्तुसमाहारइतिवुद्धिसमाहारोमुहूर्ताहोरात्रादय: सख-
ल्वयंकालोवस्तुशून्योवुद्धिनिर्माण: शब्दज्ञानानुपातीलौकिका-
नांव्युत्थितदर्शनानांवस्तुस्वरूपइवावभासतेचणस्तुवस्तुपतित: क्र-
मावलंबीक्रमश्चचणानन्तर्यात्मातंकालविद: कालइत्याचचतेयो
गिन:नचद्वौचणौसहभवत: क्रमश्चनद्वयो: सहभुवोरसम्भवात्पू
र्वस्मादुत्तरस्याभाविनोयदानन्तर्यंचणस्यसक्रमस्तस्माद्वर्तमानए-
वैक: चणोनपूर्वोत्तरचणा: सन्तीतितस्मान्नास्तितत्समाहार:
येतुभूतभाविन: चणास्ते परिणामान्विताव्याख्येयास्ते नैकेनचणेन
कृत्स्नोलोक:परिणाममनुभवितत्चणोपारूढा: खल्वमीधर्मास्त-
यो: चणतत्क्रमयो:संयमत्तयो: साचात्करणन्ततश्चविवेकजज्ञा
नम्प्रादुर्भवतितस्यविषयविशेषउपचिप्यतेजातिलचणदेशैरन्यता
नवच्छेदात्तुल्ययोस्तत: प्रतिपत्ति: तुल्ययोर्देशलचणसारूप्ये
जातिभेदोन्यतायांहेतुर्गौरियंवडवेयमितितुल्यदेशजातीयत्वेल
चणमन्यत्वकरङ्कालाचीगौ: स्वस्तिमतीगौरितिद्वयोरामलकयो
र्जातिलचणसारूप्याद्देशभेदोन्यत्वकरइदम्पूर्वमिदमुत्तरमितिय
दातुपूर्वमामलकमन्यव्यग्रस्यज्ञातुरुत्तरदेशेउपावर्त्यतेतदातुल्य
देशत्वेपूर्वमेतदुत्तरमेतदितिप्रविभागानुपपत्ति: असंदिग्धेनचत-
त्वज्ञानेनभवितव्यमित्यतइदमुक्तं तत:प्रति:पतिविवेकजज्ञाना
दितिकथंपूर्वामलकसहचणोदेशउत्तरामलकसहचणाद्देशाद्भिन्न
तेचामलकेस्वदेशचणानुभवभिन्ने अन्यदेशचणानुभवस्तुतयोर-
न्यत्वहेतुरिति एतेनदृष्टान्तेनपरमाणोस्तुल्यजातिलचणदेशस्य

पूर्वपरमाणदेशसहक्षणासाक्षात्करणादुत्तरस्थपरमाणोस्तद्देशानु-
पपत्तौउत्तरस्थतद्देशानुभवोभिन्नः सहलक्षणभेदात्तयोरीश्वरस्थ
योगिनोन्यत्वप्रत्ययोभवतिइतिअपरेतुवर्णयंतियेत्वाविशेषात्तेन्य
ताप्रत्ययंकुर्वंतीतितदापिदेशलक्षणभेदोमूर्तिव्यवधिजातिभेद
श्चान्यत्वहेतुःक्षणभेदस्तुयोगिवुद्धिगम्यएवेतिअतउक्तं मूर्तिव्यव
धिजातभेदाभावान्नास्तिमूलपृथक्त्वमितिवक्तव्य ॥ ५० ॥

भा॰ का॰ प॰—(यथापकर्षपर्य्यन्तं द्रव्यम्परमाणुरेव) जैसे द्रव्य घटते २ अर्थात् सुक्षम दशामें परमाणु रूप रहजाता है (एवम्परमा पकर्षपर्य्यन्तः कालःक्षणः) ऐसेही परम सुमावस्था के काल को क्षण कहते हैं (यावतावा समयेनचलितः परमाणुःपूर्वदेशंजह्यादुत्तरदेशमुपसंपद्येत सकालःक्षणः) अथवा जितने कालमें चलाहुआ परमाणु पूर्वस्थान को त्यागता और अगले स्थानको प्राप्तहोता है उतने कालको क्षण कहते हैं (तत्प्रवाहाविच्छेदस्तुक्रमः) उसकी गति वाप्रवाह को क्रम कहते हैं (क्षणतत्क्रमयोर्नास्तिवस्तुसमाहारः) क्षण और उसके क्रमका समाहार अर्थात स्थिरहोना वा एकत्रित होना नही है (वुद्धिसमाहारोमुहूर्ताहोरात्रा दयः) किन्तु क्षणादि व्यवहार वाली वुद्धि की स्थिरता सेही मूहूर्त और रात्रीदिन आदि का व्यवहार होता हैं (सखल्वयंकालोवस्तु शून्योवुद्धिनिर्म्माणः) सो यह काल वस्तु शून्य अर्थात अमूर्त द्रव्यहै और केवल वुद्धिका परिणाम मत है (शब्दज्ञानानु पातीलौकिकानामव्युत्थत दर्शनानां वस्तुस्वरूपइवावभिसते) शब्दज्ञान से जानने योग्य उन संसारी मनुष्यों को वस्तु के समान जानपड़ता है जिनका चित्त स्थिर वृत्ति में नहीं है (क्षणस्तुवस्तुपतितः) क्रमावलम्बी परन्तु क्रमके आश्रित होनेसे क्षणवस्तु मध्यपाती है (क्रमश्च क्षणानन्तर्य्यात्मा) और क्रमक्षण से ही जाना जाता है (तंकालविदः कालइत्याचक्षतेयोगिनः) उसको कालज्ञ योगी काल कहते है (नचद्वौक्षणौ

सद्भवतः) और नहीं क्षणों का संयोग होता है (क्रमक्षणयोसहभुवोरस म्भवात्) और न दो क्षण के क्रमों का संयोग होता है क्यों कि उनका एक होना असम्भव है (पूर्वस्मादुत्तरस्यभाविनोयदानन्तर्यं क्षणस्यसक्रमः) पूर्व क्षणसे होने वाले उत्तर क्षणका जो भेदहै उसेही क्रमकहते हैं (तस्माद्वर्त्तमानेएवैकःक्षणः) इसलिये वर्तमान ही एक क्षण होता है (नपूर्वोत्तरक्षणाः सन्तीति) पूर्वक्षण और उत्तर क्षण नहीं होते (तस्मान्नास्तितत्समाहारः इस कारण से क्षणोंमें समाहार अर्थात इकट्ठा होना नहीं है (येतु) और जो (भूतभाविनः क्षणास्ते परिणामान्विताव्याख्येयाः) भूत अर्थात् पूर्व क्षण भावी होने वाला अर्थात उत्तर क्षण वर्तमान क्षण केही परिणाम कहने योग्यहै (तेनैकेनैवक्षणेनकृत्स्नोलोकःपरिणाममनुभवति) इस हेतु से समस्त) जगत एकही क्षण में परिणाम अर्थात दूसरी अवस्था को प्राप्तहोता है (तत्क्षणोपारूढाःखल्वमीधर्म्माः) इसे सब गण वा धर्मक्षण के आश्रित है (तयोःक्षणतत्क्रमयोः संयमात्) क्षण और उसके क्रममें संयम करने से (तयोस्साक्षात्करणात्तच्चविवेकजंज्ञानम्प्रादुर्भवति) क्षण और क्रम का साक्षात ज्ञान और उससे विवेक अर्थात निश्चयात्मक ज्ञान उत्पन्न होता है (तस्य-विषयविशेषउपक्षिप्यते) उस विवेक ज्ञान का विषय विशेष कहते हैं (जा-तिलक्षणदेशैरन्यतावच्छेदात्तुल्ययोस्ततःप्रतिपत्तिः) जाति लक्षण, और देश इन तीनोंमें से किसी एकसे उस ज्ञान का बोध वा निश्चय होताहै(तुल्ययोर्देशलक्षणसारूप्ये जातिभेदोन्यतायांहेतुः) जब किन्हीं दो वस्तुओं में से एक वस्तु का विवेकज ज्ञान प्राप्त करना हैं तो उनका देश लक्षण और जाति भेद जानना अवश्यक हैं यदि दोनों का देश और लक्षण मिलता हो तो वहां उनका जाति भेदही विवेकज ज्ञान का हेतु होगा (गौरियंवडवेयम-तितुल्यदेशजातीयत्वे लक्षणमन्यत्वकरम्) यथा यह गौहै और यह घोड़ी है इस ज्ञान में दोनों का देश एक है और पशुत्व जाति भी एक ही है परन्तु यहां पर दोनों के लक्षण ही विवेक ज्ञान के कारण है (स्वस्तिमती

को:) गौके गलेमें जो मांस होता है उसे खस्ति कहते हैं तो यह लक्षण कि गौखस्ति वाली है गौके सत्य ज्ञान का देने वाला है (द्वयोरामलक योर्जातिलक्षणदेशाकृत्यभेदोऽविच्छन्न:गम्) जहां दो वस्तुओंके ज्ञानसे जाति और सम्बंध समान हो वहां भेदसे निश्चय होता है (इदंपूर्वमिदमुत्तरमिति) यह पूर्व वस्तु है और यह उत्तर वस्तु है (असन्दिग्धेनतत्वज्ञानेनभवितव्यमिति) अभिप्राय यह है कि संन्देह रहित तत्व ज्ञान होना चाहिये (अतइदमुक्तम्) इस प्रयोजन से उक्त पद कहा जाता है ॥ ५० ॥

भा० का भा० जितने कालमें परमाणु पलटा खातेहैं उतने काल का क्षण कहते हैं और जितने से दूसरे परमाणु से संयुक्त होता है उसे क्रम कहतेहैं यदि कहाजाय कि क्षण की पश्चात् जो प्रवाहावच्छिन्न कालहै उसे उपलक्षण कहसक्ते हैं, परन्तु क्षण और क्रमका समाहर नही होता केवल बुद्धि की समाहार से रात्रि दिन आदि काल संज्ञा होती है बस इसक्षण और क्रम से संयम करने से योगीको सत्य ज्ञान प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

तारकंसर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजंज्ञानम् ॥ ५१ ॥

सू० का प० (तारकम्) तारकअर्थात् विवेकजज्ञान (सर्वविषयम्) जिससे किसी विषय का ज्ञान छिपा नही रहता(सर्वथाविषयमक्रमंचेति) भूत भविष्यत् और वर्तमान क्रम को विदित करनेवाला (विवेकजंज्ञानम्) यही विवेकज ज्ञान कहलाता है ॥ ५१ ॥

सू० का भा०।— तारक वह विवेकज ज्ञान है जिससे सब विषय और सर्वकालीन ज्ञान होता है ॥ ५१ ॥

तारकमितिस्वप्रतिभोत्थमनौपदेशिकमित्यर्थ: सर्वविषयंना स्यकिंचिदविषयीभूतमित्यर्थ: सर्वथा विषयमतीतानागतप्रत्युत्प

न्नमर्वं पर्यायैः सर्वथाजानातीत्यर्थः अक्रममित्येकक्षणोपारूढंस वंसर्वथागृह्णातीत्यर्थःएतद्विवेकजंज्ञानंपरिपूर्णंस्यैवांशोयोगप्रदो पोमधुमतींभूमिमुपादाययावदस्य परिसमाप्तिरितिप्राप्तविवेक जज्ञानस्याप्राप्तविवेकजज्ञानस्यवा ॥ ५१ ॥

भा० का प० (तारकमिति प्रतिभोत्थमनौपदेशिक मत्यर्थः) तारक उसे कहते हैं जो अपनी प्रतिभ अर्थात् बुद्धि से उत्पन्न हो अर्थात् बिना किसी के उपदेश किये जो ज्ञान हो उसे तारक कहते हैं (सर्वविषयंना-स्यकिंचिदविषयीभूतमित्यर्थः) सर्व विषय का अर्थ है कि कोई विषय इस ज्ञान से छुटा नहीं रहता है (सर्वथाविषयमतीतानागतप्रत्युत्पन्नं सर्वं सर्वथाजानातीत्यर्थः) अक्रमका अर्थ है कि पूर्वोक्त एक क्षण में जितना पदार्थ वा कार्य जगत् में है उस सबको पूर्ण रीति से योगी जानता है (एतद्विवेकजंज्ञानंपूर्णं) यह पूर्ण विवेकज ज्ञान है (अस्यैवांशोयोगप्रदीपः) इसही का एक भाग योग प्रदीप है (मधुमतींभूमीमुपादाय यावदस्यपरिसमाप्तिरिति) जो मधुमति भूमि से तारक ज्ञान प्राप्ति पर्यन्त रहता है (प्राप्तविवेकजज्ञानस्याप्राप्तविवेकजज्ञानस्यवा) चाहे वह प्राप्त विवेक ज्ञान का प्रदीप हो वा अप्राप्त का हो ॥ ५१ ॥ —*

भा० का भा०— तारक ज्ञान उसे कहते हैं जो बिना किसी के उपदेश किये योगीके हृदयमें प्रकाशितहो सर्वविषयक भी अर्थात् कोई पदार्थ इसज्ञानसे बाहर नहीं रहता इसही ज्ञानका नाम विवेकज ज्ञानहै ५१ ॥

सत्वपुरुषयोःशुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥ ५२ ॥

सू० का प० (सत्वपुरुषयोः) बुद्धि और पुरुष दोनो शुद्धता में समान होजाते हैं (कैवल्यम्) तब मोक्ष होती है ॥ ५२ ॥

सू० का भा० — जब बुद्धि पुरुष के समान निर्मल अर्थात् पाप चिन्तनादि दोष रहित होती है तब उस अवस्था को कैवल्य कहते हैं ॥ ५२ ॥

यदानिर्धुतरजस्तमोमलंबुद्धिसत्वंपुरुषस्यान्यताप्रत्ययमात्रा

---

* इसका विशेषार्थ भिन्न लिखाजायगा।

धिकारंदग्धक्लेशबीजंभवतितदापुरुषस्यशुद्धिसारूप्यमिवापन्नम्भवतितदापुरुषस्योपचरितभोगाभावःशुद्धिःएतस्यामवस्थायांकैवल्यंभवतिईश्वरस्यानीश्वरस्यावाविवेकजज्ञानभागिनइतरस्यवानहिदग्धक्लेशबीजस्यज्ञानेपुनरपेक्षाकाचिदस्तिसत्वशुद्धिद्वारेणैतत्समाधिजमैश्वर्य्यं चज्ञानं चोपक्रांतंपरमार्थतस्तुज्ञानाद्दर्शनंनिवर्ततेतस्मिन्निवर्तेनसंत्युत्तरेक्लेशाःक्लेशाभावात्कर्मविपाकाभावश्चरिताधिका राश्चैतस्यामवस्थायांगुणानपुरुषस्यपुनर्दृश्यत्वेनोपतिष्ठंतेतत्पुरुषस्यकैवल्यं तदापुरुषःस्वरूपमात्रज्योतिरमलःकेवलीभवति ॥ ५२ ॥

भा० का प० (यदा) जब (निर्धूतरजस्तमोमलंबुद्धिसत्वं) धोयेगये हैं रजोगुण और तमोगुण रूपीमल जिसके ऐसीनिर्मल बुद्धि (पुरुषस्यान्यतामात्राधिकारं दग्धक्लेशबीजंभवति) पुरुष से भिन्नताज्ञान का जोअधिकार है उसका बीज दग्ध जब होजाता है (यदा) तब (पुरुषस्यशुद्धिसारूप्यमिवापन्नम्भवति) पुरुष की जो शुद्धता है उसकी समानता को प्राप्त हो जाती है (पुरुषस्योपचरितभोगाभावः शुद्धिः) पुरुष को जो सांसारिक भोगों का अभाव है उसे शुद्धि कहते हैं (एतस्यामवस्थायांकैवल्यम्भवति) इस अवस्था में कैवल्य होती है (ईश्वरस्यानीश्वरवाकीविवेकज्ञानभागिनः-इतरस्यवा) ईश्वर अनीश्वर वा किसी विवेक ज्ञान वालेकी (नहीदग्धक्लेशबीजस्यज्ञानेपुनरपेक्षाकाचिदस्ति) दग्ध होगये हैं क्लेश के बीज जिसके उसे किसी की सहाय लेने की अपेक्षा नहीं रहती (सत्वशुद्धिद्वारेणैतत्समाधिजमैश्वर्य्यं च) बुद्धि की शुद्धता के द्वारा यह समाधि से उत्पन्न भया ऐश्वर्य्य (ज्ञानंचोपक्रान्तम्) और ज्ञान प्राप्त हुआ है (परमार्थतस्तु) यथार्थ में तो (ज्ञानाद्दर्शनंनिवर्तते) ज्ञान से विषयों की निवृत्ति होती है (त-

स्मिन्निवृत्तेउत्तरेक्लेशाः) विषय निवृति से भावी क्लेशों का नाश होजाता है (क्लेशाभावात्कर्म्मविपाकाभावः) क्लेश निवृत्त होने से कर्म और कर्म्म फल की निवृत्ति होती है (चरिताधिकाराः) उस्से अधिकार भी नष्ट होजाता है (एतस्यामवस्थायाम्) इस अवस्था में (गुणान पुरुषस्यदृश्यत्वे- नोपतिष्ठन्ते) गुण दृश्य भाव से पुरुष को दिखलाई नहीं देते (तत्पुरुष- स्यकैवल्यम्) पुरुष की इसही दशा को कैवल्य कहते हैं (तदापुरुषःस्वरू- पमात्रज्योतिरमलः केवलीभवति) तब पुरुष प्रकाश स्वरूप निर्मलकैवल्यभा- गी होता है ॥ ५२ ॥

भा० का भा० जब बुद्धि से रजोगुण और तमोगुण नष्ट होजाते हैं तब वह निर्मल बुद्धि पुरुषस्थ निर्मतालके समान होजाती है उससमय पुरुषको भोगों का अभाव होजाता है और इसही अवस्था में कैवल्य प्राप्त होता है कैवल्यप्राप्ति के अनन्तर पुरुषस्वतंत्र होजाता है क्योंकि ज्ञान से दर्शन अ- र्थात् विषय साधन निवृत्त होजाता है साधन निवृत्ति से होनेवाले क्लेशों की निवृत्ति होती है और उस्से कर्म्म विपाकों का अभाव और कर्म्म वि- पाक के अभाव से दुर्गुणों का प्रादुर्भाव नहीं होता इसही अवस्था को कै- वल्य कहते हैं ॥ ५२ ॥

इतिपातञ्जलभाष्यप्रवचने विभूतिपादस्तृतीयः ।



जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाःसिद्धयः ॥ १ ॥

सू० का प० (जन्मौषधिमन्त्रतपस्समाधिजाः सिद्धयः) सिद्धि जन्म से औषधि से मन्त्र से तप से और समाधि से उत्पन्न होती हैं (१)

सू० का भा० — सिद्धि जन्मादि से उत्पन्न होती हैं (१)

देहान्तरिताजन्मनासिद्धिः औषधिभिरसुरभवनेषुरसायनेनेत्येवमादिमन्त्रैराकाशगमनाणिमादिलाभःतपसासङ्कल्पसिद्धिःकामरूपीयत्रतत्रकामगइत्येवमादिसमाधिजाःसिद्धयोव्याख्याताः ॥ १ ॥

भा०का प० (देहान्तरिताजन्मनासिद्धिः) जन्म से सिद्धि वह कहाती है जो पूर्व जन्म के शरीर द्वारा सम्पादित होकर इस जन्म में बिना श्रम के प्राप्त होजाती है (औषधिभिरसुरभवनेषुरसायनेनेत्यवमादि) रसायन आदि से असुर लोगों के स्थानों में अनेक सिद्धियां होती हैं (मन्त्रैराकाशगमनाणिमादिलाभः) मंत्रों से आकाश गमन और अणिमादि सिद्धिओंसंकल्प सिद्धि होती है (कामरूपीयत्रतत्रकामगइत्येवमादि) अर्थात् अपनी इच्छा नुसार जहां चाहै तहां जासक्ता है (समाधिजाःसिद्धयोव्याख्याताः) समाधि से जिन सिद्धिओं की प्राप्ति होती है उनका विभूतिपाद में वर्णन कर चुके हैं (१)

भा० का भा० देहान्तर के साधन से जो सिद्धि प्राप्त होती हैं वह जन्म सिद्धि कहाती है असुरों के घर में जो औषधियों से सिद्धि प्राप्त होजाती हैं वह औषधिज सिद्धि । संकल्प सिद्धि को तपः सिद्धि कहते हैं और समाधिज सिद्धि का वर्णन विभूतिपाद में लिख चुके है (१)

तत्रकायेन्द्रियाणामन्यजातीयपरिणतानां

जात्यन्तरपरिणामःप्रकृत्यापूरात् । २

सू० का प० (तत्र) उनमें (कायेन्द्रियाणाम्) शरीर और इन्द्रियोंका (अन्यजातीयपरिणतानाम्) दूसरे परिणाम को प्राप्त हुओं का(जात्यन्तर परिणामः) दूसरे परिणाम को प्राप्त होता हैं (प्रकृत्यापूरात्) प्रकृति के कारण से है ॥ २ ॥

सू० का भा० शरीर और इन्द्रियों मेंजो परिणाम होता है वह प्रकृति के विकार से होता है ॥ २ ॥

पूर्वपरिणामापायेउत्तरपरिणामोयजनस्तेषामपूर्वावयवानुप्रवेशाद्भवति कायेन्द्रियप्रकृतयश्चस्वं स्वं विकारमनुगृह्णन्ति आपूरेणधर्मादिनिमित्तमपेक्षमाणाइति ॥ २ ॥

भा० का पा० (पूर्वपरिणामापाये) पूर्व परिणाम के नाश होने पर (उत्तरपरिणामोयजनः) जो दूसरा परिणाम अर्थात् बदला होता हैं उसे यजन कहते हैं (तेषामपूर्वायवानुप्रवेशाद्भवति) उक्त परिणामों के अद्भुत अंगों के अनु प्रवेश अर्थात् संयुक्त होने से निर्मित होते हैं (कायेन्द्रियप्रकृतयश्च) और शरीर तथा इन्द्रियों की प्रकृति(स्वं स्वं विकारमनुगृह्णन्ति)अपने २ विकार को धारण करती हैं (आपूरेणधर्म्मादिनिमित्तम्) वह प्रवृत्ति धर्म्मादिकी निमित्त की (अपेक्षमाणाइति) अपेक्षा रखती हैं । २।

भा० का भा०—जब पूर्व का परिणाम विनष्ट होता है तब उत्तर परिणाम की उत्पत्ति होती है इसपरिणाम को यजन कहते हैं काया इन्द्रिय, औरप्रवृत्ति अपने २ विकारों को ग्रहण करती है २

निमित्तमप्रयोजकम्प्रकृतीनांवरणभेदस्तुततःक्षेत्रिकवत ॥ ३ ॥

सू० का प० (निमित्तमप्रयोजकम्प्रकृतिनाम्) प्रकृतिओं का प्रयोजक धर्म्मादि नहीं है (वरणभेदस्तु चेत्रिकवत्) आवरण का भेद किसानों के समान है । ३ ।

सू० का पा० प्रकृतीओं का प्रयोजक नहीं है कि चेत्रिकवत् वरण भेद होता है । ३ ।

नहिधर्मादिनिमित्तं तत्प्रयोजकंप्रकृतीनांभवतिनकार्येण कारणं प्रवर्त्यंतद्भवतिकथंतर्हिवरणभेदस्तुततःक्षेत्रिकवत्यथाक्षेत्रिकः के दारादपांपूर्णात्केदारांतरपिप्लावयिषुःसमंनिम्ननिम्नतरंवानापः पाणिनापकर्षत्यावरणंत्वासां भिनत्तितस्मिन्भिन्ने स्वयमेवआपः केदारांतरमाप्लवयंतितथाधर्मःप्रकृतीनामावरणमधर्मं भिनत्तितस्मिन् भिन्ने स्वयमेवप्रकृतयः स्वंस्वंविकारमाप्लावयन्तितथावासएवक्षेत्रिक स्तस्मिन्नेवकेदारेनप्रभवत्यौदकान्भौमान्वारसान्धान्यमूलान्यनुप्रवेशयितुं किंतर्हिमुद्गगवेधुकश्यामाकादींस्ततोपकर्षत्यपकृष्टेषुतेषुस्वयमेवरसाधान्यमूलान्यनुप्रविशंतितथाधर्मोनिवृत्तिमात्रकारणमधर्मस्यशुद्ध्यशुद्ध्योरत्यन्तविरोधात् नतुप्रकृतिप्रवृत्तोधर्मोहेतुर्भवतीतिअत्रनन्दीश्वरादयउदाहार्याः विपर्ययेणाप्यधर्मोधर्मंबाधते ततश्चाशुद्धिपरिणामइतितत्रापिनहुषाजगरादयउदाहार्याःयदातुयोगीवह्वन्कायान्निर्मिमीते तदाकिमेकमनस्कास्ते भवंत्यथानेकमनस्काइति ॥ ३ ॥

भा० का प० (नहीधर्म्मादिनिमितंतत्प्रयोजकम्प्रकृतिनाम्भवति) धर्म्मादि निमित्त प्रकृतीओं का उत्पादक नहीं हैं (नकार्य्येणकारणम्प्रवर्त्यतइति) क्योंकि कार्य्य से कारण उत्पन्न नहीं होता (वरणभेदस्तु) वरण

भेद तो " यहांपर वरण का अर्थ आवरण है ,, (क्षेत्रिकवत्) किसान के समान होता है (यथा) जैसे (क्षेत्रिकः) किसान (अप्पूरणात्केदारात्) जल से भरीहुई क्यारी से (केदारान्तरंपिप्लावयिषुः) दूसरी क्यारी में जल लेजाने की इच्छा जब करता हैं (समंनिम्नं निम्नतरंवा) तब समन क्यारी नीची वा अत्यन्त नीची क्यारी में (नापःपाणिनापकर्षति) पानीको हाथ से नहीं खींचता है (आवरणंत्वासांभिनत्ति) क्यारिओं के आवरण अर्थात् मेंड वा डौल को काटता है (तस्मिन्भिन्ने स्वयमेवापः केदारान्तर माप्लावयन्ति) मेंड के कटने से जल स्वयं ही दूसरी क्यारिओं में चलाजाता है (तथाधर्म्मःप्रकृतीनाभावरणमधर्म्मं भिनत्ति श्वैसेही धर्म्म प्रकृतीओं के आवरण रूप अधर्म्म को काटदेता है (तस्मिन्भिन्ने) अधर्म्मके नाश होने से (स्वयमेवप्रकृतयःस्वंस्वंविकारमाप्लावयन्ति) प्रकृति आपसे आप अपने विकारों को ग्रहण करलेती हैं (धर्म्मोनिवृत्तिमात्रे कारणम्) धर्म्म अधर्म्म की निवृत्ति मात्र का कारण हैं (अधर्म्मस्यशुद्धशुद्धयोरत्यन्तविरोधात्)क्योंकि अधर्म्मसे शुद्धता और शुद्धता वालेका अत्यन्त विरोध है (नतु प्रकृति प्रवृत्तौ धर्म्मो हेतुभवति) परन्तु प्रकृति में धर्म्म है वह हेतु नहीं है (अत्रनन्दीश्वरादयउदाहार्य्याः)इस प्रकरणमें नन्दी श्वर आदि उदा हरण हैं (विपर्ययेणाथ धर्म्मो धर्म्मं बाधते) व्यत्यय करने से भी अधर्म्म धर्म्म का बाधक होता है(ततश्चाशुद्धिपरिणामः) जब अधर्म्म धर्म्म का बाधक होता है तब अशुद्धि प्राप्त होति है (तत्रापिनहुषाजागरादयउदाहार्य्याः) उसमें भी नहुष और अजगर प्रभृति उदाहरण है (यदातुयोगीबहुकायान्निर्मिमीते) जब की योगी अनेक शरीरों का निर्म्माण करता है (तदा (उस समय (किमनेकमनस्कास्ते भवन्त्यथानेकमनस्का इति) योगी अनेकचित्त वाला होता है वा एक चित्त वाला ॥ ३ ॥

भा० का भा० धर्म्मादिक प्रकृति वा वरण भेद के कारण नही हैं क्योंकि कार्य्य से कारण उत्पन्न नही होता परन्तु वरण भेद होनेका क्रम हय

है कि जैसे किसान जब किसी जल से भरी क्यारी से जल दूसरी क्यारीमें लेजाना चाहता हैं तब वह केवल क्यारिओं की मेंड़ काटदेता है मेंडकाटने से जल स्वयंही दूसरी क्यारी में चलाजाता है इसही रीति से धर्मकेद्वारा अधर्म रूपी मेंड काटने से प्रकृतिभेद स्वयं होजाता है जैसे एकही जल अनेक अन्नों का कारण होता है ऐसेही प्रकृति के परिणाम समझने चाहियें यदि इस क्रम का उलटा क्रम देखाजाय तो अधर्म धर्म का बाधक होजाता है प्रथमोक्त क्रम में नन्दीश्वर का उदाहरण है अर्थात् नन्दीश्वर नामक एक मनुष्य देवदशा को धर्म से प्राप्त होगया और नहुष अधर्माचरण से देवदशा से आगर होगया था यह सबकथा ब्रह्मण ग्रन्थोंमें लिखी है । ३ ।

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥ ४ ॥

सू० का प० – (निर्म्माणचित्तानि) चित्त को उत्पन्न करने वाले (अस्मितामात्रात्) केवल अस्मिता से होते हैं – ॥ ४ ॥

सू० का भा० अनेक चित्त अर्थात् चिन्ता अस्मिता से होती हैं ॥ ४ ॥

अस्मितामात्रंचित्तकारणमुपादाय निर्माणचित्तानिकरोतिततः सचित्तानिभवंति ॥ ४ ॥

भा० का प०(अस्मितामात्रम्) केवल अस्मिता(चित्तकारणमुपादाय) चित्त के कारण को ग्रहण करके (चित्तानिकरोति)चित्त को उत्पन्नकरता है (ततःसचित्तानिकरोति) तब वह प्राणि को चित्त के सहित करता है ॥ ४ ॥

भा० का भा० अस्मिता से चित्त की उत्पत्ति होती है ॥ ४ ॥

प्रवृत्तिभेदेप्रयोजकञ्चित्तमेकमनेकेषाम् ॥ ५ ॥

सू० का प० (प्रवृत्तिभेदे) प्रवृत्ति की भेद में (एकंचित्तमनेकेषांप्रयोजकम्) एकही चित्त अनेक चित्तोंका अर्थात् संकल्पों का प्रयोजक होता है ॥ ५ ॥

सू० का भा० एकही चित्त अनेक चित्ततों का उत्पन्न करनेवाला होता है ॥ ५ ॥

बहूनांचित्तानांकथमेकचित्ताभिप्रायपुरःसराप्रवृतिरितिसर्वचित्तानांप्रयोजकंनिर्मिमीतेततःप्रवृत्तिभेदः ॥ ५ ॥

भा० का प० (बहूनांचित्तानांकथमेक चिताभिप्रायपुरःसराप्रवृत्तिः) एकही चित्त अनेक चित्तोंका कैसे प्रवर्तक होसक्ता है (सर्वचित्तानां प्रयोजकंचित्तमेकं निर्मिमीते) सब चित्तों का प्रेरक एकही चित्त को निर्मित किया (ततः प्रवृतिभेदः) पश्चात् प्रवृत्ति भेद होता है ॥ ५ ॥

भा० का भा० प्रथम एकही चित्त अनेक चित्तोंका प्रेरक निर्मित होता है पश्चात् प्रवृत्ति भेद होजाता है ॥ ५ ॥

तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥ ६ ॥

सू० का प० (तत्र) उसमें (ध्यानजमनाशयम्) चित्त की जो ध्यान से उत्पन्न हुई प्रवृत्ति है वह राग द्वेष रहित होती है ॥ ६ ॥

सू० का भा० जोसिद्धि से ध्यान से प्राप्त होती है वह रागद्वेष रहित होती है ॥ ६ ॥

पञ्चविधंनिर्माणचित्तंजन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाःसिद्धयइतितत्रयदेवध्यानजंचित्तंतदेवानाशयंतस्यैवनास्त्याशयोरागादिप्रवृत्तिर्नातःपुण्यपापाभिसम्बन्धःक्षीणक्लेशत्वा द्योगिनइतिइतरेषांतुविद्यतेकर्माशयोयतः ॥ ६ ॥

भा० का प० (पंचविधंनिर्माणचित्तम्) चित्त की पांच प्रकार की

हृत्ति हैं (जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाःसिद्धयः) जन्म से औषधिसे मन्त्रसे तप से और समाधि से जो सिद्धि होती हैं (तत्र) उन में से (यदेवध्यानजंचित्तम्) जो ध्यान से चित्त उत्पन्न होता है (तदेवानाशयम्) वहीआशय रहित अर्थात् (तस्यैवनास्त्याशयोरागादिप्रहृत्तिः) उस चित्त को रागादिकी प्रवृत्ति नहीं होती है (नातः पुण्यपापाभिसम्बन्धः क्षीणक्लेशत्वात्) क्योंकि उसके क्लेश क्षीण होजाते हैं इस से उस में पुण्य और पाप का सम्बन्ध नहीं रहता है योगी को (इतरेषांतुविजातिकर्माशयः) और चित्तों का कर्माशय रहता है ॥ ६ ॥

भा० का भा० पूर्वजो पांचप्रकार की सिद्धि कही थी उसमें ध्यानजचित्त रागद्वेषरहित है और अन्य चित्तों में रागादि का संचार रहता है ध्यान जचित्त में क्लेश क्षीण होजाने से पुण्य पाप का सम्बन्ध भी नहीं रहता है ॥ ६ ॥

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषां ॥ ७ ॥

सू० का प० (कर्म) कर्म(अशुक्लाकृष्ण) शुक्ल से कृष्ण पर्य्यन्त (योगिनः) योगि के (त्रिविधम्) तीन प्रकार का है ॥ ७ ॥

सू० का भा० पांच प्रकार के चित्तो में से जो ध्यानज चित्त है वह राग द्वेष से रहित होता है ॥ ७ ॥

चतुष्पात्खल्वयंकर्मजातिः कृष्णाशुक्लकृष्णाशुक्लाशुक्लाकृष्णा चेति तत्रकृष्णादुरात्मनांशुक्लकृष्णावहिः साधनसाध्यातत्रपरपीड़ानुग्रहद्वारेणकर्माशयप्रचयः शुक्लातपः स्वाध्यायध्यानवतांसा हिकेवलेमनस्यायतत्वादवहिःसाधनाधीनानानपरान्पीडयि

यित्वा भवति अशुक्लाऽकृष्णा संन्यासिनां क्षीणक्लेशानां चरम-देहानामिति तत्र शुक्लं योगिन एव फलसंन्यासादकृष्णं चानु-पादानात् इतरेषां तु भूतानां पूर्वमेव त्रिविधमिति ॥७॥

भा० प० (चतुष्पात् खल्वियं कर्मजातिः) यह कर्म जाति चार पाद अर्थात् चार प्रकारकी है (कृष्णाशुक्ल कृष्णाशुक्ला शुक्लाकृष्णा चेति) एक कृष्णा, दूसरी शुक्लकृष्णा तीसरी शुक्ला चौथी शुक्लाकृष्णा (तत्र) उनमें से (कृष्णा दुरात्मनाम्) दुरात्माओं की कर्मजाति कृष्णा है (शुक्लकृष्णा बहिः-साधनसाध्या) जो बाह्यसाधनों से कर्म जाति सिद्ध होती है वह शुक्ल-कृष्णा कहाती है (शुक्ला तपः स्वाध्याय ध्यानवताम्) शुक्लकर्म जाति तपस्वी वेदपाठी और ध्यानवालों की होती है (साहि) वह शुक्लजाति केवल मनके आधीन होनेसे बाह्यसाधनों की अधीनता नहीं रखती (न परान् पीड़यित्वा भवति) अन्य जीवोंको दुःखभी नहीं देती (अशुक्ला ऽकृष्णा) अशुक्लाकृष्णा (सन्यासिनां क्षीणक्लेशानां चरमदेहानामिति) क्षीण हो गये हैं क्लेश जिनके उन सन्यासियों की होती है ॥ ७ ॥

भा० का भा० कर्म जाति चार प्रकार की है उनमें से दुरात्माओं की कर्मगति पापमय होने से कृष्णा अर्थात् काली होती है यह गति बाह्यसाधनों से सिद्ध होती है दूसरी अन्य जीवोंको पीड़ा देना वा अनु-ग्रह करने से जो कर्म समूह सञ्चित होता है उन में जो गति अन्तःसाध-नोंके आधीन हैं वह शुक्ला कर्मगति स्वाध्याय और तप करनेवाले योगीयोंकी होती है और जो शुक्लभी नहीं और न कृष्ण है वह संन्यासि-योंकी कर्म जाति है ॥ ७ ॥

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वा-सनानाम् ॥ ८ ॥

सू० का प० (ततस्तद्विपाकानुगुणानाम्) इसके अनन्तर कर्मों के फलके अनुसार (अभिव्यक्तिर्वासनानाम्) वासनाओं का प्रकाश होता है ॥ ८ ॥

सू० का भा० कर्मफलके अनुसारही वासना प्रकट होती है ॥८॥

तत इति त्रिविधात्कर्मणः तद्विपाकानुगुणानामेवेति यज्जातीयस्य कर्मणो यो विपाकस्तस्यानुगुणायावासना कर्म-विपाकमनुशेरते तासामेवाभिव्यक्तिर्नहिदैवं कर्मविपच्यमानं नारकतिर्यङ्मनुष्यवासनाभिव्यक्तिनिमित्तं भवति किन्तु दैवा-नुगुणा एवास्य वासनाव्यज्यन्ते नारकतिर्यग्मनुष्येषु चैवं समा-नश्चर्चः ॥ ८ ॥

भा० का प० (तत इति त्रिविधात् कर्मणः) उनसे अर्थात् तीन प्रकारके कर्मों के (तद्विपाकानुगुणानामेवेति) फलके अनुकूल (यज्जाती यस्य कर्मणः) अर्थात् जिस प्रकार के कर्मका (यो विपाकः) जो फल (तस्यानु-गुणायावासना) उसके अनुकूल जो वासना (कर्मविपाकमनुशेरते) कर्म-फलके आश्रय से सोई पड़ी है (तासामेवाभिव्यक्तिः) उनही का प्रादुर्भाव होता है (न हि दैवं कर्म) क्योंकि दिव्यकर्म (विपच्यमानम्) पुष्ट हुआ (नारकतिर्य्यङ्मनुष्यवासनाभिव्यक्तिनिमित्तं भवति) नरकसंबधि योनि तिर्य्यक् पशु वा सर्पादि वा मनुष्य वासनाको प्रकट करने का कारण होता है (किन्तु देवानुगुणा एवास्य वासना व्यज्यते) किन्तु देवकर्म से दिव्य-वासनाही प्रकट होती है (नारकतिर्य्यमनुष्येषु चैवं समानश्चर्चः) इसही रीति से नारक तिर्य्यक् और मनुष्य कर्म और वासनाओंका विचार है ॥ ८ ॥

भा० का भा० पूर्वसूत्रमें जो तीन प्रकारके कर्मक है उनके अनुसार

ही फल और फलानुसार वासना उत्पन्न होती है अर्थात् जिस प्रकार का कर्म होता है उससे वैसीही वासना होती है जैसे देवकर्मसे दिव्य वासना होती है उससे न नारक वासना और न तिर्य्यगादि वासना प्रकट होती है और ऐसेही तिर्य्यगादि कर्मों से दिव्यवासना नहीं होती ॥ ८ ॥

जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्य्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥ ९ ॥

सू० का प० (जातिदेशकालव्यवहितानामपि) जो कर्मवासना, जन्म देश और कालसे व्यवहित हैं उनका भी (आनन्तर्य्यम्) क्रमपूर्वक उदय होता है (स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात्) क्योंकि स्मृति और संस्कार दोनो का अभेद है ॥ ९ ॥

सू० का भा० जिन कर्म वासनाओं में जन्म, देश और कालका विघ्न भी है तोभी वह किसी समय उदय हो जाती है ॥ ९ ॥

वृषदंशविपाकोदयः स्वव्यञ्जकाञ्जनाभिव्यक्तः सयदिजाति शतेन वा दूरदेशतया वा कल्पशतेन वा व्यवहितः पुनश्च स्वव्यञ्जकाञ्जनएवोदियाद्द्रागित्येवं पूर्वानुभूतवृषदंशविपाका-भिसंस्कृतावासना उपादायव्यज्येतकस्मात् यतो व्यवहिताना-मप्यासां सदृशं कर्माभिव्यञ्जकं निमित्तीभूतमित्यानन्तर्य्यमेव कुतश्च स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वाद्यथानुभवास्तथासंस्काराः ते च कर्मवासनानुरूपाः यथा च वासनास्तथास्मृतिरिति जाति देशकालव्यवहितेभ्यः संस्कारेभ्यः स्मृतिः स्मृतेश्च पुनः संस्का-रास्त्वेते स्मृतिसंस्काराः कर्माशयवृत्तिलाभवशाद्व्यज्यन्ते अतश्च

व्यवहितानामपि निमित्तनैमित्तिकभावानुच्छेदादानन्तर्य्यमेव सिद्धमिति ॥ ९ ॥

भा० का प० (तपदंशविपाकोदयः) कर्म्मफल (स्वव्यंजकाञ्जनाभिव्यक्तः) अपने साधनों को पायकर प्रकाशित होता है (सयदि) यदि वह (जातिशतेन वा दूरदेशतया कल्पशतेन वा व्यवहितः) सौ जन्मों से दूरदेश से अथवा सौ कल्पसे व्यवहितभी हो (पुनश्च स्वव्यंजकाञ्जन एवोदियात्) फिर अपने साधनों को पायकर उदय होता है (इत्येवं पूर्वानुभूतश्वपदंश विपाकाभिसंस्कृतावासना) इस रीतिसे पूर्वकाल में अनुभव किया है जिन कर्म्मफलों का उनसे उत्पन्न हुई जो वासना (उपादायव्यज्येत) अपने साधनोंको पाय कर प्रकाशित होती है (कस्मात्) क्योंकि (यतो व्यवहितानामप्यासाम्) यदि यह वासना व्यवहितभी हों तौभी इनका (सदृश कर्म्माभिव्यंजकम् निमित्तीभूतम्) कर्म्मके प्रकाश करनेवाला एकही निमित्त है (इत्यानन्तर्य्यमेव) इसमे अभिव्यंजकता क्रमसे ही हो सक्ती है (कुतश्च) क्योंकि (स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात्) स्मृति और संस्कार एकही से हैं (यथानुभवास्तथासंस्काराः) जैसा अनुभव होता है उसके अनुसार ही संस्कार होता है (ते च कर्म्मवासनानुरूपाः) वह अनुभव और संस्कारभी कर्म्म तथा वासनाके अनुकूलही होते हैं (यथा च वासना तथा स्मृतिः) जैसी वासना वैसीही स्मृति होती है (इति जातिदेशकाल व्यवहितेभ्यः) इस रीति से जन्मदेश और कालसे व्यवहित संस्कारोंसे स्मृति होती है (स्मृतेश्च पुनः संस्काराः) और स्मृतिसे फिर संस्कार उत्पन्न होते हैं (इत्येते स्मृतिसंस्काराः कर्म्माशयवृत्तिलाभवद्व्यज्यन्ते) इस रीतिसे स्मृति और संस्कार कर्म्मफलकी वृत्ति लाभके समान प्रकाशित होते हैं (अतश्च) इस लिये (व्यवहितानामपि) व्यवधान सहित वासनाओंका (निमित्तनैमित्तिक

भावानुच्छेदात्) निमित्त और नैमित्तिक भावसे (आनन्तर्यमेव सिद्धमिति) क्रमसेही सिद्ध होती हैं ॥ ९ ॥

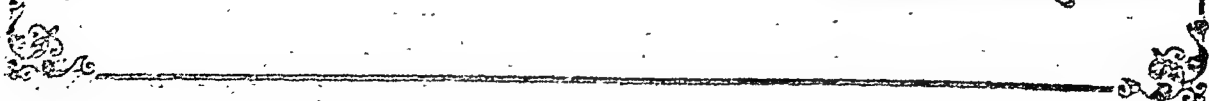
भा० का भा० जैसे विछूके काटने से फल उदित होता है अपने व्यञ्जक अर्थात् उदित होने में सहायक के पानेसे प्रकट होता है ऐसेही सर्पकी वासनाभी उदित होती है वह यदि सौजन्मसे अथवा अधिक दूरदेश से सौकल्प कालसे व्यवहित हो तौभी फिरभी अपने आश्रय को पाकर उदित होता है बहुत शीघ्र प्रथम का भोगा हुआ बीछुके काटने की फलसे उत्पन्न हुई वासना प्रकट होती है क्योंकि इन स्मृति और वासनाओंका प्रकाशित करनेवाला निमित्त एकही है क्योंकि स्मृति और संस्कार एकही रूप हैं वहभी जैसा अनुभव होताहै वैसाही संस्कार होता है वहभी कर्म और वासना के अनुकूलही होते हैं जैसी वासना होती है वैसीही स्मृति है इस रीतिसे जन्म देश और कालसे जो व्यवहित संस्कार हैं उनसे स्मृति उत्पन्न होती है स्मृति से फिर संस्कार होते हैं यह स्मृति और संस्कार कर्मफल से समान उदित होते हैं और इस से ॥ ९ ॥

तासामनादित्वं चाशिषोनित्यत्वात् ॥१०

सू० का प० (तासामनादित्वम्) वासना अनादि है (आशिषो नित्य त्वात्) क्योंकि आशीर्वाद अर्थात् अपनी कल्याणेच्छा नित्य है ॥ १० ॥

सू० का भा० आशीर्वाद के नित्य होने से वासना अनादि है ॥१०॥

तासां वासनानामाशिषो नित्यत्वादनादित्वं येयमात्मा-शीर्मानभूवं भूयासमिति सर्वस्य दृश्यतेसा न स्वाभाविकी कस्मात् जातमात्रस्य जन्तोरननुभूतमरणधर्मकस्य द्वेषदुःखा-



नुस्मृतिनिमित्तोमरणत्रासः कथं भवेत् न च स्वाभाविकं वस्तु निमित्तवशात्काश्चिदेववासनाः प्रतिलभ्यपुरुषस्य भोगायोपावर्त्तते इति घटप्रासादप्रदीपकल्पं सङ्कोचविकाशिचित्तं शरीरपरिमाणाकारमात्रमित्यपरे प्रतिपन्नास्तथाचान्तराभावः संसारश्च युक्तइति वृत्तिरेवास्य विभुनः संकोचविकाशिनीत्याचार्य्यः तच्च धर्मादिनिमित्तापेक्षं निमित्तं च द्विविधं बाह्यमाध्यात्मिकं च शरीरादिसाधनापेक्षं बाह्यं स्तुतिदानाभिवादनादिचित्तमात्राधीनं श्रद्धाद्याध्यात्मिकं तथाचोक्तं ये चैते मैत्र्यादयोध्यायिनां विहारास्ते बाह्यसाधननिरनुग्रहात्मानः प्रकृष्टं धर्ममभिनिर्वर्त्तयन्ति तयोर्मानसं बलीयः कथं ज्ञानवैराग्येणातिशय्यते दण्डकारण्यं चित्तव्यतिरेकेण कः शारीरेण कर्मणाशून्यं कर्तुमुत्सहेत समुद्रमगस्त्यवद्वापिवेत् ॥१०

भा० का प० (तासां वासनानामाशिषो नित्यत्वादनादित्वम्) आशिर्वादके नित्य होनेसे वासना अनादि है (येयमात्माशीर्माननभूवं भूयासमिति) मैं सर्वदा रहूं मेरा नाश कभी न हो यह जो अपने आत्मा का आशीर्वाद है (सर्वस्य दृश्यते) सब में दीखती है (सा न स्वाभाविकी) क्या यह स्वाभाविक नहीं है। अर्थात् अवश्यही स्वाभाविक है (कस्मात्) क्योंकि (जातमात्रस्य जन्तोः) तत्क्षणही के उत्पन्न हुए जन्तुको (अननुभूत मरणधर्मकस्य द्वेष दुःखानुस्मृति निमित्तो मरणत्रासः कथं भवेत्) जिसने मरनेके सुख वा दुःखको नहीं भोगा उसको द्वेष वा दुःखकी स्मृतिके विना मरने का भय कहां से होगा (न च स्वाभाविकं वस्तुनिमित्तमुपादत्ते) स्वाभाविक वस्तु निमित्त का आश्रय नहीं रखती (तस्मादनादिवासनानु-

विड्मिदं चित्तम्) इससे अनादि वासना से युक्त जो चित्त (निमित्त-वशात्) कारण वशसे (काश्चिदेववासनाः प्रतिलभ्य) किसी किसी वासना को पायके (पुरुषस्य भोगायोपावर्तते) पुरुषो को भोग देनेवाली होती है (इति) इस रीतिसे (घटप्रदीप कल्पम्) घट स्थान और दीपक के समान अर्थात् दीपकको यदि घटमें रक्खे तो वह घटसे बाहर प्रकाश प्रदान न कर सका और जो दीपक को घटसे निकाल कर स्थान में रख देवे तो वह स्थान भरको प्रकाशित कर देता है (सकोचविकाशिचित्तम्) ऐसे ही चित्त संकोच और विकाश करता है (शरीर परिमाणाकारमात्रमित्यपरे) शरीर परिमाण के समानही वह प्रकाश करता है (प्रतिपन्नाः) निश्चय करना (तथाचान्तराभाव) तैसेही विच्छेद रहित (संसारश्च युक्तः) संसार जिसने व्याप्त है (वृत्तिरेवास्य विभुनः संकोचविकाशिनीत्याचार्य्यः) इससे सिद्ध हुआ कि चित्तविभु अर्थात् व्यापक है और उसही शक्ति संकोचविकाशको प्राप्त होती है यह पतंजली आचार्य्य का मत है (तच्च धर्मादिनिमित्तापेक्षम्) चित्तका संकोच और विकाश धर्मादि निमित्तोंके अधीन है (निमित्त च द्विविधम्) निमित्त दो प्रकारका है (बाह्यमाध्यात्मिकं च) बाह्यनिमित्त और आध्यात्मिक निमित्त (शरीरादिसाधनापेक्षं बाह्यम्) जिसमें शरीरादि बाह्यसाधनों की अपेक्षा हो वह बाह्यनिमित्त कहाता है (स्तुतिदानाभिवादनादि) जैसे स्तुति,दान,और वन्दन करना अर्थात् प्रणाम करना आदि (चित्तमात्राधीनं श्रद्धा आध्यात्मिकम्) और जो केवल चित्तके ही आश्रित हो जैसे श्रद्धा आदि आध्यात्मिक निमित्त कहाते हैं ॥ १० ॥

भा० का भा० वासना अनादि है क्योंकि—मैं सदारहुं मेरा विनाश कभी नहो ऐसे अपने कल्याण की इच्छाप्राणी मात्रको होती है सो यह इच्छा स्वाभाविक है क्योंकि इसही समयमें उत्पन्नहुआ जो जन्तु है उसकोभी मरनेका भयहोता है यदि उसने मरनेका दुःख भोगा नहीं तो उसे भय क्यों हुआ उसके भयहोने से सिद्धहोता है कि वासना अनादि हैं उन अनादि

वासनाओंसे भरे हुए चित्तसे कीर्ति निमित्तको पाकर वही वासना पुरुषों को भोगकी कारण होजाती हैं चित्तदीपक के समान है उसे प्रकाश करने कोई जितना अवकाश मिलेगा उतनाही वह प्रकाशित होगा इससे कोई कोई मानते हैं कि चित्त शरीरके अनुसारही प्रकाश करता है परन्तु उसकी वृत्तियोंका सङ्कोच और विकाश होता है सङ्कोच और विकाशके दो प्रकार के कारण होते हैं एक वाह्य दूसरा आध्यात्मिक वाह्य वह है जिनमें शरीर सम्बन्धी वाह्य साधनोंकी दरकार हो और आध्यात्मिक वह है जिन में केवल चित्तवृत्तिओंकी ही अपेक्षा हो ॥ १० ॥

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावेतदभावः ॥ ११ ॥

सू० का प० (हेतुफलाश्रयालम्बनैसंगृहीतत्वात्) कर्मादि का जो हेतु, फल आश्रय और आलम्बन के द्वारा संगृहीत होने से (एषामभावे) इन हेत्वादि के अभाव से (तदभावः) उसका भी अभाव होता है ॥ ११ ॥

सू० का भा० हेतु, फल आश्रय और आलम्बन से वासनादि रहती है और इनके अभाव से उनको भी अभाव हो जाता है ॥ ११ ॥

हेतुर्धर्मात् सुखमधर्मात् दुःखं सुखाद्रागो दुःखाद्द्वेषस्ततश्च प्रयत्नस्तेन मनसावाचाकायेन वा परिस्पन्दमानः परमनुगृह्णाति उपहन्ति वा ततः पुनर्धर्माधर्मौ सुखदुःखे रागद्वेषाविति षडरंसंसारचक्रमस्य च प्रतिक्षणमावर्त्तमानस्याविद्यानेत्रीमूलं सर्वक्लेशानामित्येषहेतुः फलन्तु यमाश्रित्य यस्य प्रत्युत्पन्नताधर्मादिहेन ह्यपूर्वोपजनः मनस्तु साधिकारमाश्रयो

वासनानां नह्यवसिताधिकारे मनसिनिराश्रयावासनाः स्थातु सुत्सहन्ते यदभिमुखीभूतं वस्तुयां वासनां व्यनक्ति तस्यास्तदा-वलम्बनमेवं हेतुफलाश्रयालम्बनैरेतैः संगृहीताः सर्वावासनाः एषामभावे तत्संश्रयाणामपि वासनानामभावः नास्त्यसतः सम्भवो नवास्ति सतोविनाश इति द्रव्यत्वेन सम्भवन्त्यः कथं निवर्तिष्यन्ते वासना इति ॥ ११ ॥

भा० का प० (हेतुः) हेतु का वर्णन करते हैं (धर्म्मात् सुखमधर्म्माद् दुःखम्) जैसे धर्म्मसे सुख और अधर्म्म से दुःख होता है (सुखाद्रागो दुःखात् द्वेषः) सुख से राग होता है और दुःखसे द्वेष होता हैं (ततश्च प्रयत्नः) राग द्वेषसे प्रयत्न होता है (तेन) उस प्रयत्न से (मनसा वाचा कायेन वा परिस्पन्दमानः) मन से वचन से वा शरीर से चेष्टा करता है (परमनुगृह्णात्युपहरन्ति वा) दूसरों पर कृपा करता है वा ताड़ना करता है वइस रीति से इन सब के हेतु धर्म्म और अधर्म्म हुए" (ततः पुनर्धर्म्माधर्म्मौ रागद्वेषाविति) उस अनुग्रह और निग्रह से फिरभी धर्म्म और अधर्म्म तथा राग द्वेष होते हैं (प्रवृत्तमिदं षड़रसंसारचक्रम्) इस रीति से छः आरे वाला यह संसार चक्र प्रवर्त्तित है (अस्य प्रतिक्षणमावर्त्तमानस्य) यह जो प्रतिक्षण संसार चक्र चलता रहता है इसका (अविद्यानेत्रं मूलम्) अविद्याही मूल है (सर्वक्लेशानामिति हेतुः) सवक्लेशोंका हेतु अविद्या है (फलन्तु) फल उसे कहते हैं (यमाश्रित्य) जिसका आश्रय पाके (यस्य प्रत्युत्पन्नता) जिसकी तात्कालिक उत्पत्ति (धर्म्मादेहेन) शरीर रहित गुण से (अपूर्वोयजन।) अपूर्व यज्ञ है (मनस्तु) और मन (साधिकारमाश्रयो वासनानाम्) वासनाओं का अधिकार अर्थात् संस्कार सहित आधार है नह्यवसिताधिकारे मनसि निराश्रयावासनास्थातुमुत्सहन्ते) जिस मनमे

वासना का अधिकार अर्थात् संस्कार नहीं होने उस में आश्रय रहित वासना भी नहीं रह सकी (यदभिमुखीभूत वस्तु) जिस गुणवाली वस्तु (यां वासनां व्यनक्ति) जिस वासना को प्रकट करती है (तस्यास्तदालम्बनम्) उस वासना का वही आश्रय वा आधार है (एवम्) इस रीति से (हेतुफलाश्रयालम्बनैरेतैः संगृहीतास्त वा वासनाः) हेतु, फल, आश्रय और हेत्वादिकोंके अभाव में (तत्संश्रयाश्रयामपि वासनानामभावः) उनकी आश्रय में रहने वाली वासनाओंका भी अभाव होता है (नास्त्यसतः संभवो नवास्ति सतो विनाशः) असत् की विद्यमानता कभी नहीं होती और न सत् का कभी अभा वहो (इति इन्द्रियत्वेन सम्भवन्त्यः) इससे इन्द्रियों के गुणसे उत्पन्न होनेवाली (कथं निवर्तिष्यन्ते वासनाः) कैसे दूर होंगी वासना ॥ ११ ॥

भा० का भा० सूत्र में लिखे हुए हेतुका अर्थ यह है कि—धर्म से सुख अधर्म से दुःख सुखसे राग दुःखसे द्वेष इन दोनों से प्रयत्न उत्पन्न होता है उस प्रयत्नसे मानसिक—वाङ्मयी वा शारीरक क्रिया होती है जिससे अन्य प्राणिओं पर कृपा वा प्रहार किया जाता है उस अनुग्रह वा निग्रह से पुनरपि धर्म वा अधर्म का प्रादुर्भाव होता है उनसे फिर सुख दुःख और राग द्वेष उत्पन्न होते हैं इस रीति से यह संसार चक्र जिसके धर्मादिक ६ आरे हैं घूमता रहता है परन्तु इस संसार चक्र का मुख्य हेतु अविद्या हैं, फल उसे कहते हैं जिसके आश्रय से वासना उत्पन्न हों, यदि कोई शंका करे कि वासना मनके आश्रय से उत्पन्न होती हैं तो क्या फल शब्दवाच्य मन हैं ? इसका उत्तर यह है कि जिस मनमें किसी प्रकारके संस्कार न होंगे उस में वासना नहीं रह सकीं क्योंकि जिस प्रकार का वस्तु संस्कार होगा वैसी ही वासना को उत्पन्न करेगा इस लिये हेतु और फलके आश्रय से वासना का प्रादुर्भाव होता है और इन

के अभाव से वासनाओंका भी अभाव होता है क्योंकि असत् का होना और सत् का विनाश कभी नहीं हो सक्ता ॥ ११ ॥

अतीतानागतं स्वरूपतोस्त्यध्वभेदाद्धर्माणां ॥ १२ ॥

सू० का प० (अतीतानागतम्) भूत और भविष्यत् (स्वरूपतोस्ति) स्वभावसे हैं (अध्व भेदाद्धर्माणाम्) गुणोंके मार्ग विभिन्न होनेसे ॥ १२ ॥

सू० का भा० तीनो काल गुणभेदसे भिन्न २ है ॥ १२ ॥

भविष्यत् व्यक्तिकमनागतं अनुभूतव्यक्तिकमतीतं स्वव्यापारोपारूढं वर्तमानं त्रयञ्च तद्वस्तुज्ञानस्य ज्ञेयं यदिचैतत् स्वरूपतोनाभविष्यन्नेदं निर्विषयं ज्ञानमुदपत्स्यततस्मादतीतानागतं स्वरूपतोस्तीति किञ्च भोगभागी यस्य वापवर्गभागी यस्य वा कर्मणः फलमुत्पित्सु यदिनिरुपाख्यमिति तदुद्देशेन तेन निमित्तेन कुशलानुष्ठानं न युज्येत सतश्च फलस्य निमित्त वर्त्तमानीकरणे समर्थं नापूर्वोपजने सिद्ध निमित्त नैमित्तिकस्य विशेषानुग्रहणं कुरुते नापूर्वमुत्पादयति धर्मी चानेकधर्मस्वभावस्तस्य चाध्वभेदेन धर्माः प्रत्यवस्थिताः न च यथा वर्त्तमानं व्यक्तिविशेषापन्नं द्रव्यतोस्त्येवमतीतमनागतं च कथं तर्हि स्वेनैव व्यंग्येन स्वरूपेणागममस्तित्वेन चानुभूतव्यक्तिकेनस्वरूपेणातीतमिति वर्त्तमानस्यैवाध्वनः स्वरूपव्यक्तिरिति न सा भवत्यतीतानागतयोरध्वनोरेकस्य चाध्वनः सम-

येहावध्वानौ धर्म्मिणमन्वागतौ भवतएवेति नाभूत्वाभावस्त्र-
याणामध्वानामिति ॥ १२ ॥

भा० का प० (भविष्यद्व्यक्तिकमनागतम्) भविष्यत् काल अनागत कहता है (अनुभूत व्यक्तिकमतीतम्) जिस कालका अनुभव नहीं किया गया है उसे अतीत काल कहते हैं (स्वव्यापारोपारूढ़म्) जो अपनी क्रिया कर रहा है (वर्त्तमानम्) उसे वर्त्तमान काल कहते हैं (त्रयं च तदवस्तु ज्ञानस्य ज्ञेयम्) यह तीनों समस्त वस्तुओंके ज्ञान में प्रथम ज्ञेय हैं अर्थात् बिना काल ज्ञानके किसी वस्तुका ज्ञान नहीं होता (यदिचैतत् स्वरूपतोना भविष्यत्) यदि यथार्थ में यह कुछ न हों तो (नेदं निर्विषयं ज्ञानमुपलस्यत) यह निश्चयात्मक ज्ञानभी उत्पन्न हो (तस्मादतीतानागतं स्वरूपतोऽस्ति) इस लिये भूत और भविष्यत् काल यथार्थ में हैं (किञ्च) औरभी (भोगभागी यस्यवापवर्गभागीयस्य वा कर्म्मण:) भोगके भागवाले कर्म्म अथवा मोक्षभागवाले कर्म्मका (फलमुत्पित्सु यदि निरुपाख्यम्) उत्पन्न होनेवाला (यदि निरुपाख्यम्) यदि उपाधि रहित है तदुद्देशेन निमित्तेन कुशलानुष्ठानं न युज्येत) तो उसके उद्देश्यसे वा उसकी प्रयोजकता से उत्तम कर्म्मों का करना भी नहीं हो सकेगा (नापूर्व्वमुत्पादयति धर्म्मी) धर्म्मी अर्थात् गुणी अपूर्व गुणको उत्पन्न नहीं करता (चानेकधर्म्म स्वभावस्तस्य) एकही गुणमें अनेक गुण होते हैं (तस्यचाध्वभेदेन धर्म्मा: प्रत्यवस्थिता:) गुणीके मार्ग भेदसे गुण स्थिर होते हैं (नच) न कि (यथा वर्त्तमानं व्यक्ति विशेषापन्नं द्रव्यतोऽस्ति) वर्त्तमान के अनुकूल द्रव्य रूपसे कुछ भिन्न वस्तु हैं (अतीतमनागतं च) भूत और भविष्यत् (कथं तर्हि) तब किस रीति से (स्वेनैव व्यंग्येन स्वरूपेणानागतमस्ति स्वेनचानुभूत व्यक्ति केन स्वरूपेणातीतमिति) अपने विलक्षण रूप से भ-भविष्यत् और अनुभव रहित रूपसे भूतकाल है (वर्त्तमानस्यैवाध्वन:

स्वरूप व्यक्तिरिति) वर्त्तमान मार्गके ही स्वरूप का ही प्रकाश दोनों हैं तसा भवत्यतीता नागतयोरेकस्याध्वनः समयेद्वावध्वानौ) वह प्रकाश एक काल के मार्ग में दो अन्य मार्गों का नहीं होसकता है (धर्मी समन्वागतौ भवतएवेति) परन्तु गुणीके सम्बन्धसे तो होसकता है (नावूत्वाभावस्त्रयाणामध्वानामिति) किन्तु तीनों कार्गों का अभाव नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

भा० का भा०—भविष्यत्, भूत और वर्त्तमान् यह तीनों वास्तव में भिन्न २ हैं और ज्ञानादिमें बड़े सहायक हैं यदि यह न हों तो किसी वस्तु का निश्चयात्मक ज्ञान न हो, एवम् भोग भागीय अथवा मोक्षभागीय कर्म्म का फल संशयरहित जो उत्पन्न होनेवाला है उसके उद्देश्यसे अथवा उसके निमित्त से कोई भी शुभ कर्म्म का प्रारम्भ न करे अतएव गुणी एक काल होनेपर भी उसके गुणों के मार्ग भिन्न २ हैं ॥ १२ ॥

ते व्यक्तसूक्ष्मागुणात्मानः ॥ १३ ॥

सू० का प० –(ते) वह (व्यक्त सूक्ष्म गुणात्मानः) व्यक्त अर्थात् प्रकाश रूप और गुणवाले हैं ॥ १३ ॥

सू० का भा० –उक्त तीनों मार्ग प्रकट और सूक्ष्म गुणवाले हैं ॥ १३ ॥

ते खल्वमीत्र्यध्वानो धर्मावर्त्तमानाव्यक्तात्मानोतीतानागताः सूक्ष्मात्मानः षड्विशेषरूपाः सर्वमिदं गुणानां सन्निवेशविशेषमात्रमिति परमार्थतो गुणात्मानः तथाच शास्त्रानुशासनं गुणानां परमरूपं न दृष्टिपथमृच्छति यत्तु दृष्टिपथं प्राप्तं तन्मायेव सुतुच्छकमिति यदा तु सर्वेगुणाः कथमेकः शब्दएकमिन्द्रियमिति ॥ १३ ॥

भा० को प० (ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मान:) पूर्व सूत्र में कहे तीनों मार्ग (धर्मा वर्त्तमाना:) धर्म में वर्त्तमान (व्यक्तात्मान:) प्रकट रूपवाले होते हैं (अतीतानागता: सूक्ष्मात्मान:) भूत और भविष्यत् सूक्ष्म रूपवाले होते हैं (षड़विशेषरूपा:) यह छहोंके रूपमें समानता है (सर्वमिदं गुणानां सन्निवेशविशेषमात्रम्) यह सब गुणोंके सद्भावसे ही भिन्नता है (परमार्थ तो गुणात्मान:) यथार्थ में तो गुणरूपही है (तथाच शास्त्रानुशासनम्) ऐसी ही अन्य शास्त्रोंकी भी आज्ञा है (गुणानां परमं रूपम् न दृष्टिपथमृच्छति तत्तु दृष्टिपथं प्राप्तम् तन्मायेव सुतुच्छकम्) गुणोंका यथार्थ रूप नेत्रोंसे नहीं दीखता है और जो नेत्रोंसे दीखता है वह सब माया है (यदातु) यदि (सर्वे गुणा:) अनेक गुण हैं (कथमेक: शब्दएकमिन्द्रियमिति) तो किस प्रकारसे यह कहा जाता है कि एकही शब्द हैं और एकही इन्द्री है ॥ १३ ॥

भा० का भा० पूर्वसूत्र में कहे जो गुणोंके तीन मार्ग उनमें से वर्त्तमान मार्ग तो प्रकट रहता है और भूत तथा भविष्यत् मार्ग सूक्ष्म रूपसे रहते हैं अन्य शास्त्रो में भी कहा है कि गुणोंका यथार्थ रूप दृष्टिगत नहीं होता और जो इन्द्रियोंसे देखा जाता है वह सब माया है ॥ १३ ॥

परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्त्वम् ॥ १४ ॥

सू० का प० (परिणामैकत्वात्) परिणामकी एकतासे (वस्तुतत्वम्) वस्तुओंका तत्व जाना जाता है ॥ १४ ॥

सू० का भा० परिणामके अनुसार वस्तुओंका तत्व है ॥ १४ ॥

प्रख्याक्रियास्थितिशीलानां गुणानां ग्रहणात्मकानां करणभावेनैक: परिणाम: श्रोत्रमिन्द्रियग्राह्यात्मकानां शब्द-

भावेनैकः परिणामः शब्दोविषय इति शब्दादीनां मूर्तिसमानजातीयानामेकः परिणामः पृथ्वीपरमाणुस्तन्मात्रावयवस्तेषां चैकः परिणामः पृथ्वीगौर्वृक्षः पर्वतइत्येवमादिर्भूतान्तरेष्वपि स्नेहौष्ण्यप्रणामित्वावकाशदानान्युपादाय सामान्यमेकविकारारम्भः समाधेयनास्त्यर्थोविज्ञानविसहचरोस्ति तु ज्ञानमर्थविसहचरं स्वप्नादौ कल्पितमित्यनयादिशाये वस्तुस्वरूपमपन्हुवते ज्ञानपरिकल्पनामात्रं वस्तुस्वप्नविषयोपमं न परमार्थतोऽस्तीति य आहुः ते तथेति प्रत्युपस्थितमिदं स्वमाहात्म्येन वस्तुकथमप्रमाणात्मकेन विकल्पज्ञानबलेन वस्तुस्वरूपमुत्सृज्य तदेवापलपन्तः श्रद्धेयवचनाः स्युः कुतश्चैतदन्याय्यं ॥ १४ ॥

भा० का प० (प्रख्याक्रियास्थितिशीलानां गुणानां ग्रहणात्मकानां करणभावेनैकः परिणामः) प्रख्या अर्थात् प्रकाश होना-क्रिया-और स्थिति ही है स्वभाव जिनका उन ग्रहणात्मक गुणोंका करणभाव अर्थात् योग साधनकी सामग्री वा सहायक वा एक परिणाम है (श्रोत्रमिन्द्रियग्राह्यात्मकानां शब्दभावेनैकः परिणामः) कर्ण आदि ग्राह्यात्मकशब्दभाव दूसरा परिणाम है (शब्दो विषय इति शब्दादीनां मूर्त्ति समानजातीयानामेकः परिणामः) शब्दइन्द्रियका विषय है अतएव विषय रूप एक अन्य परिणाम है (पृथ्वीपरमाणुस्तन्मात्रावयवास्तेषां चैकः परिणामः) पृथ्वी परमाणु गन्धादि तन्मात्रा यह एक भिन्न परिणाम है (पृथ्वी गौर्वृक्षः इत्येवमादिभूतान्तरेष्वपि) पृथ्वीका एक परिणाम अन्य तत्वोंका परिणाम (अवकाश दानान्युपादाय) अवकाशको पाकर (सामान्यमेक विकारारम्भः) विकार आरम्भ होता है (समाधेय नास्त्यर्थोविज्ञानविसहचरः) कोईभी अर्थ विज्ञान के बिना वि समाधेय अर्थात् जानने योग्य नहीं है (अस्तितु ज्ञानमर्थवि-

सहचरं) किन्तु ज्ञान अर्थके विना होता है (स्वप्नादौ कल्पितम्) जो स्वप्नादि में ज्ञानके विना अर्थ होता है वह केवल कल्पना मात्र है वास्तव में कुछ नहीं (अनयादिशा) इस रीतिसे (ये) जो लो (वस्तु स्वरूपमह्नुते) वस्तु के स्वरूप को निश्चय करते हैं (ज्ञानपरिकल्पतामात्रम् वस्तु स्वप्न विषयोपमशू) ज्ञान कल्पनामात्र है वस्तु स्वप्न के समान होती है (परमार्थतोस्ति) यथार्थ में है (येआहुः) जो कहते हैं (तेतथेति प्रत्युपस्थितम्) वह वैसेही समझते हैं ॥ १४ ॥

भा० का भा० प्रख्या क्रिया और स्थिति शील गुण जो ग्रहणात्मक हैं करण रूप एक परिणाम—ग्राह्यात्मक दूसरा परिणाम—इन्द्रिय विषय रूप तीसरा परिणाम पृथ्वी—परमाणु तन्मात्रा और अवयवरूप चौथा परिणाम पृथ्वी गौ वृक्षादि अन्य तत्वोंके संयोगसे पंचम परिणाम होता है इन सब परिणामोंसे एक बिकार आरम्भ होता है ॥ १४ ॥

वस्तुसाम्येचित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ॥ १५ ॥

सू० का प० (वस्तुसाम्ये) वस्तुकी एकता में (चित्तभेदात्) चित्तके भेदसे (तयोर्विभक्तः पन्थाः) धर्म्म और धर्मीका मार्ग भिन्न है ॥ १५ ॥

सू० का भा० वस्तुकी एकता होने परभी चित्तभेदसे उनका मार्ग भिन्न हैं ॥ १५ ॥

बहुचित्तावलम्बनीभूतमेकं वस्तुसाधारणं तत् खलु नैकचित्तपरिकल्पितं नाप्यनेकचित्तपरिकल्पितं किन्तु स्वप्रतिष्ठं कथं वस्तुसाम्ये चित्तभेदात् धर्मापेक्षं चित्तस्य वस्तुशाम्येपि सुखज्ञानं भवत्यधर्मापेक्षं ततएव दुःखज्ञानमविद्यापेक्षं ततएव

मूढ़ज्ञानं सम्यग्दर्शनापेक्षं ततएवमाध्यस्थ्यज्ञानमिति कस्य तच्चित्तेन परिकल्पितं नचान्यचित्तपरिकल्पितेनार्थेनान्यस्य चित्तोपरागोयुक्तः तस्माद्वस्तुज्ञानयोर्ग्राह्यग्रहणभेदभिन्नयोर्विभक्तः पन्थानानयोः संकरगन्धोप्यस्तीति सांख्यपक्षेपुनर्वस्तु त्रिगुणं चलंचगुणवृत्तमिति धर्मादिनिमित्तापेक्षं चित्तै रभिसंबद्ध्यते निमित्तानुरूपस्य च प्रत्ययस्योत्पद्यमानस्य तेन तेनात्मनाहेतुर्भवति केचिदाहुर्ज्ञानसहभूरेवार्थोभोग्यत्वात् सुखादिवदिति तएतयाद्वारासाधारणत्वं बाधमानाः पूर्वोत्तरेषु क्षणेषु वस्तु रूपमेवापह्नुवते ॥१५॥

भा० का प० (बहु चित्तावलम्बनीभूतमेकं वस्तु तत्साधारणम्) वह सामान्य अर्थात् अनेक चित्तों के द्वारा समभाव से जानने योग्य है (तत्) वह वस्तु (नैकचित्तपरिकल्पितम्) एक चित्त के द्वारा कल्पित नहीं हुईहै (नाप्यनेकचित्तपरिकल्प्यम्) न अनेक चित्तों के कल्पना करने के योग्य है (किन्तु स्वप्रतिष्ठम्) किन्तु वह वस्तु स्वप्रतिष्ठ अर्थात् अपरिणामी वा कल्पना रहित है (कथं वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्) तो वस्तु की समता में चित्त अर्थात् विज्ञान का भेद कैसे होगा ? (वस्तु साम्ये) वस्तु की एकता में (चित्तभेदाद्धर्मापेक्षं चित्तस्य वस्तुसाम्येऽपि सुखज्ञानं भवति) उक्त प्रश्न का उत्तर यह है कि जैसे धर्म के कारण से वस्तु की एकता में भी चित्त को सुख ज्ञान होता है (अधर्मापेक्षं ततएव दुःखज्ञानम्) अधर्म से उसही चित्त को दुःख ज्ञान होता है (अविद्यापेक्षं ततएव मूढ़ज्ञानम्) अविद्या केसंस्कार से उसही चित्तको मूढ़ ज्ञान होता है (सम्यग्दर्शनापेक्षं ततएव माध्यस्थ्यज्ञानमिति) और सम्यग्दर्शन से उसही चित्तको मध्यस्थ ज्ञान

होता है (कस्य) यह सब ज्ञान किसको होते हैं (तच्चित्तेन परिकल्पितम्) उसही एक चित्तसे यदि कल्पित हैं तो भिन्न मार्ग सिद्ध हुआ (नचान्य चित्त परिकल्पितै नार्थै नान्यस्य चित्तोपरागो युक्तः) क्योंकि दूसरे चित्त के कल्पित अर्थों से दूसरा चित्त आच्छादित नहीं हो सका (तस्मात्) इस हेतु से (वस्तु ज्ञानयोर्ग्राह्य ग्रहणभेदभिन्नयोर्विभक्तः पन्था) वस्तु अर्थात् ज्ञेय पदार्थ और ज्ञान का मार्ग भिन्न २ हैं (नानयोः सङ्कर गंधोप्यस्तीति) इन दोनो में एकता का लेश भी नहीं है (सांख्यपक्षे पुनर्वस्तु त्रिगुणम्) फिर सांख्य के पक्ष में वस्तु त्रिगुण हैं (चलंच गुणवृत्तमिति) औरगुण चंचल वृत्ति वाला है (इति धर्म्मादि निमित्तापेक्षं चित्तैरभिसम्बध्यते) इसलिये धर्म्मादि निमित्त से चित्त के संग सम्बन्ध रखता है (निमित्तानुरूपस्य च प्रत्ययस्योत्पद्यमानस्य तेन तेनात्मना हेतुर्भवति) धर्म्मादि निमित्त के अनुकूल ही उत्पन्न हुआ जो ज्ञान वह जिस आत्मा को ज्ञान हुआ है उसही आत्मा के ज्ञान का हेतु होता है (केचिदाहुः) कोई २ कहते हैं कि (ज्ञानसहभूरेवार्थो भोग्यत्वात्) वस्तु वा इन्द्रियार्थ भी ज्ञान के संग ही उत्पन्न होता है क्योंकि ज्ञेय के बिना ज्ञान होना असम्भव है (सुखादिवत्) जैसे सुख अर्थात् जबसुख को सामग्री वा सुख होन होगा तो सुख ज्ञान कैसे होगा ॥ १५ ॥

भा० का भा० बहुत लोग कहा करते हैं बाह्य वस्तु कुछ नहीं है किन्तु अन्तःकरणस्थ विज्ञान ही सब कुछ है क्योंकि यदि बाह्य वस्तुभी कुछ हो तो दोनों में अभेद हो जायगा इसका उत्तर यह है कि जो वस्तु अनेक चित्तों के द्वारा कल्पित नहीं है किन्तु ज्ञेयवत् धर्म्म युक्त साधारण वस्तु है क्योंकि एक चित्तमें निमित्तानुसार अनेक ज्ञान होते हैं जैसे धर्म्म से सुखज्ञान अधर्म्मसे दुःख ज्ञान अविद्या से मूढ़ ज्ञान और सम्यग्दर्शन से मध्यस्थ ज्ञान एकही चित्त में होता है यदि ज्ञान भेद होता तो एक

चित्त में अनेक ज्ञान नहीते और एक मनुष्यके ज्ञान का दूसरे के चित्त में आरोप होनाभी असम्भव है इसलिये वस्तु अर्थात् ज्ञेय और ज्ञानका अत्यन्त भेद है इन दोनों में एकता की गंध भी नहीं है सांख्य के मत में वस्तु त्रिगुणात्मक है और गुण चंचल वृत्ति वाले हैं वह धर्म्मादि रूप से ज्ञान के हेतु होकर चित्त से सम्बन्ध रखते हैं एवम् जैसा निमित्त होता है वैसा ही ज्ञान उत्पन्न होकर आत्मा से संयुक्त होता है किन्हीं लोगों का यह भी मत है कि ज्ञान के संगही इन्द्रियों के विषय भी उत्पन्न होते हैं क्योंकि विना विषयों के ज्ञान किसी रीति से नहीं होसक्ता है जैसे सुख वा दुःख विना ज्ञान के नहीं होसक्ते और विना सुख दुःख के ज्ञान काहे का होगा ॥ १५

तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाता ज्ञातम् ॥ १६ ॥

सू॰का प॰ (तदुपरागापेक्षित्वात्) ज्ञेय वस्तु के प्रतिबिम्ब होने से (चित्तस्य) चित्त को (ज्ञाताज्ञातम्) ज्ञान और अज्ञान होता है ॥ १६

सू॰का भा॰ ज्ञेय वस्तु का जब चित्त में प्रतिबिम्ब पड़ता है उस समय चित्त को उसका ज्ञान होता है और जब प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता तब चित्त को उस वस्तु का अज्ञान रहता है ॥१६

अयस्कान्तमणिकल्पाविषया अयःसधर्म्मकं चित्तमभिसं-बन्ध्योपरंजयन्ति येन चवषयेणोपरक्तं चित्तं सविषयोज्ञातस्त-तोन्यः पुनरज्ञातोवस्तुनो ज्ञाताज्ञात स्वरूपत्वात्परिणामिचित्तं यस्य तु तदेवचित्तं विषयस्तस्य ॥१६॥

भा० का प० (अयस्कान्तमणिकल्पाविषया:) विषय अर्थात् ज्ञेय पदार्थ चुम्बक पत्थर के समान होते हैं (अयःसधर्म्मकंचित्तम्) और लोहे के समान चित्त है (अभिसम्बन्ध्योपरंजयन्ति) संयुक्त होकर विषय चित्त पर प्रतिबिम्ब डालते हैं (येनचवयेणोपरक्तम्) उस प्रतिबिम्ब (Disign) से चित्रित होके चित्त (सविषयो ज्ञात:) उस विषय को जानता है (ततोन्य: पुनरज्ञात:) चित्त पर जिसका प्रतिबिम्ब पड़ा है उस से भिन्न विषय अज्ञात रहते हैं (वस्तुन: ज्ञाताज्ञात स्वरूपत्वात्) ज्ञेय वस्तु के ज्ञात और अज्ञात रूप होने से (परिणामि चित्तम्) चित्त परिणामि अर्थात् अस्थिर वृत्ति वाला सिद्ध हुआ (यस्यतु तदेव चित्तम् विषय:) जिसका वही चित्त विषय है उस का तो ॥ १६

भाष्य का भावार्थ – विषय अर्थात् ज्ञेय पदार्थ चुम्बक पत्थर के समान और चित्त लोहे के समान है उन दोनों का जहां संयोग होता है वहां विषय चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है यहां जिस विषय के चित्त का संयोग होता है उसही का फोटो चित्त पर खिंचजाता है और जिसका फोटो चित्त पर खिंचता है उसही विषय का चित्त को ज्ञान होता है और अन्य विषय अज्ञात रहते हैं इस से यह सिद्ध हुआ कि चित्त का स्वभाव अस्थिर है ॥ १६ ॥

सदाज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभो: पुरुषस्यापरिणामित्वात् ॥१७॥

सू०का प० (सदा) सब काल में (ज्ञाताचित्त वृत्तय:) चित्त की वृत्तियां ज्ञात रहती हैं (तत्प्रभो: पुरुषस्यापरिणामित्वात्) वृत्तियों के स्वामी पुरुष के परिणाम रहित होने से । १७

सू० का भा० वृत्ति का स्वामी पुरुष अर्थात् जीव अपरिणामी है अत एव उसे वृत्तियां सदा ज्ञात रहती हैं । १७

यदिचित्तवत् प्रभुरपि पुरुषः परिणमेत ततस्तद्विषयाश्चित्तवृत्तयः शब्दादिविषयवत् ज्ञाताज्ञाताः स्युः सदाज्ञातत्वन्तु मनसस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वमनुमापयति स्यादाशंका चित्तमेव स्वाभासं विषयाभासञ्च वैशेषिकानां चित्तात्मवादिनां च भविष्यत्यग्निवत् ॥१७॥

भा० का प० (यदि चित्तवत् प्रभुरपि) यदि चित्त के समान चित्त का स्वामी अर्थात् जीवभी (परिणमेत) परिणाम को प्राप्त हो तो (ततः) उससे (तद्विषयाश्चित्तवृत्तयः ज्ञाताज्ञाताः स्युः) उसकी ज्ञेय वृत्ति भी ज्ञात और अज्ञात अर्थात् अस्थिर होंगी (सदा ज्ञातत्वं मनसस्तत्प्रभोः पुरुषस्या परिणामित्वमनुमापयति) जो मन सदा वृत्तियों को जानता है इससे जीव का परिणाम रहितपन सिद्ध होता है (स्यादाशंका) आशंका हो सक्ती है कि (चित्तमेवस्वाभासम्) चित्त ही स्वप्रकाश रूप है (विषया भासम्) और विषय का आभास भी वही है (वैशेषिकानां चित्तात्मवादिनां च भविष्यत्यग्निवत्) वैशेषिक वाले और जो लोग चित्त को आत्मा मानते हैं उन के मत में चित्त ही स्वाभास रूप है । १७

भा० का भा० जो जीव भी परिणामी हो तो उसकी वृत्ति ज्ञाता ज्ञात हो सक्ती हैं जब कि मन सब वृत्तियों को जानता है इसही से सिद्ध होता है कि आत्मा परिणाम रहित है परन्तु इस में यह शंका हो सक्ती है कि चित्त ही स्वाभास रूप है ॥ १७ ॥

न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥१८॥

सू० का प० (न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात्) चित्त स्वाभास अर्थात् आप ही विषयों का ग्राहक नहीं है क्योंकि वह भी दृश्य है अर्थात् ज्ञेय है। १८

सू० का भावार्थ—चित्त स्वप्रकाश रूप नहीं है क्योंकि उसका दृश्य जीव है ॥ १८

यथेतराणीन्द्रियाणि शब्दादयश्च दृश्यत्वान्न स्वाभासानि तथामनोपि प्रत्येतव्यं नचाग्निरत्रदृष्टान्तः नह्यग्निरात्मस्वरूप-मप्रकाशं प्रकाशयति प्रकाशश्चायं प्रकाश्यप्रकाशकसंयोगे दृष्टो नच स्वरूपमात्रेस्तिसंयोगः किञ्च स्वाभासंचित्तमित्यग्राह्यमेव कस्यचिदिति शब्दार्थः तद्यथा स्वात्मप्रतिष्ठमाकाशं नपरप्रतिष्ठ मित्यर्थः स्वबुद्धिप्रचारप्रतिसंवेदनात्सत्वानां प्रवृत्तिर्दृश्यते-क्रुद्धोहं भीतोहममुत्रमेरागोमुत्रमेक्रोधइत्येतत् स्वबुद्धेरग्रहणेन युक्तमिति ॥१८॥

भा० का प० (यथे तराणीन्द्रियाणि) जैसे और इन्द्रियां (शब्दादयश्च) और शब्द स्पर्शादि (दृश्यत्वान्न स्वाभासानि) ज्ञेय होने के हेतु से स्वप्रकाश रूप नहीं है (तथा मनोपि प्रत्येतव्यं) तैसे मन को भी समझना चाहिये (नचाग्निरत्र दृष्टान्तः) चित्त केस्वाभास होने में अग्नि का दृष्टान्त भी नहीं घट सक्ता (हि) क्योंकि (अग्निरप्रकाशमात्मस्वरूपं न प्रकाशयति) अग्नि प्रकाश रहित अपने स्वरूप को प्रकाश नहीं करसक्ती है (प्रकाशश्चायं प्रका-

स्य प्रकाशक संयोगे दृष्टः) प्रकाश्य और प्रकाशक के संयोग में ही प्रकाश देखा जाता है (न च स्वरूपमात्रे) और स्वरूप मात्र में प्रकाश नहीं देखा जाता है (अस्ति संयोगः) प्रकाश्य और प्रकाशक का संयोग तो है (किं च स्वाभासं चित्तमित्यग्राह्यमेव) किन्तु चित्त की स्वप्रकाशता सर्वथा अग्राह्य है (कस्यचिदिति शब्दार्थः) चित्त किसी का दृश्य है यह सूत्र का शब्दार्थ हुआ (तद्यथा) जैसे (स्वात्म प्रतिष्ठमाकाशं न पर प्रतिष्ठमिति) आकाश अपने आधार से स्थित है दूसरे के आधार से नहीं (स्व बुद्धि प्रचार संवेदनात्) अपनी बुद्धि के प्रचार के ज्ञान से (सत्वानाम्) जीवों की (प्रवृत्तिर्दृश्यते) प्रवृत्ति देखी जाती है (क्रुधोहं भीतोहम्) कि मैं क्रोधी वा भय युक्त हूं (अमुत्रमेरागोमुत्रमेद्वेषः) इस वस्तु में मेरी प्रीति और इस में मेरा द्वेष है (इत्येतत्) यह सब (स्वबुद्धेरग्रहणेनयुक्तमिति) जब बुद्धि ज्ञान का साधन नहोगी तो रागादि का होना भी असम्भव होगा ॥१८॥

भा० का भा० जैसे अन्य इन्द्रियां वा शब्दादि विषय ज्ञेय हैं ऐसेही चित्त भी जीव का ज्ञेय है अतएव स्वप्रकाश रूप नहीं है इससे ग्रहीता की कल्पना करना नितान्त आवश्यक है ॥ १८ ॥

एकसमयेचोभयानवधारणम् ॥१९॥

सू० का प० (एकसमये) एककाल में (उभयानवधारणम्) दोनोंको ज्ञान नहीं होता ॥ १९

सू० का भा० यदि चित्त स्वप्रकाश नहीं है तो उसका प्रकाशक दूसरा चित्त मानना चाहिये परन्तु फिर उसका प्रकाशक कौन होगा क्योंकि एककाल में वह अपने स्वरूप और दूसरे के स्वरूप का ज्ञान नहीं कर सक्ता है ॥ १९

नचैकस्मिन् क्षणेस्वपररूपावधारणं युक्तं क्षणिकवादिनोयद्भवनं सैवक्रियातदेव च कारकमित्यभ्युपगमः स्यान्मतिः स्वरसनिरुद्धं चित्तच्चित्तान्तरेण समनन्तरेण गृह्यतइति "१९॥

भा० का प० (नचैकस्मिन् क्षणे) एकही क्षण में (स्वरूपावधारणम् युक्तम्) अपने और पराये रूप का ज्ञान होना युक्त है (क्षणिकवादिनः) क्षणिक विज्ञानवादीके मतमें तो (यद् भवनम् सैव क्रिया तदेव च कारकम्) जो उत्पत्ति है वही क्रिया है और कारक है (इत्यभ्युपगमः स्यात्) यही सिद्धान्त हो तो (स्वरसनिरुद्धं चित्तं चित्तान्तरेण) एकचित्त दूसरे चित्तसे (समनन्तरेण गृह्यते) और वह किसी औरसे ग्रहीत होगा ॥ १९

भा० का भा० एकही क्षण में चित्त में दो ज्ञान वा बोधकता होना युक्त नहीं है अर्थात् यदि एकचित्त का दूसरा चित्त प्रकाशक माना जायगा तो वह दूसरा चित्त एकही कालमें अपने और प्रथम चित्तके रूप को प्रकाश करने में कदापि समर्थ न होगा यदि उसका भी प्रकाशक तृतीय चित्तको मानियेगा तो अनवस्था दोष आवेगा इससे एकचित्तका दूसरा चित्त प्रकाशक नहीं है ॥ १९

चित्तांतरदृश्ये बुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसङ्करश्च ॥२०॥

सू० का प० (चित्तांतरदृश्ये) अन्य चित्त दर्शनता में (बुद्धेः) बुद्धि का (अति प्रसंगः) अति प्रसंग दोष (स्मृति संकरः) स्मरण संकर (च) और ॥ २० ॥

सू॰ का भा॰ जब चित्त अनेक मानेंगे तो बुद्धि अति प्रसंग दोष * हो गा और स्मरण शक्ति से संकर दोष ** होजायगा। २०।

अथ चित्तं चेच्चित्तान्तरेण गृह्येत बुद्धिः केन गृह्यते साप्यन्यया साप्यन्ययेत्यप्रतिसङ्गः स्मृतिसङ्करश्च यावन्तो बुद्धिबुद्धीनामनुभवास्तावन्त्यः स्मृतयः प्राप्नुवन्ति तत्संकराच्चैकस्मृत्यनवधारणंच स्यादित्येवं बुद्धिप्रतिसंवेदिनं पुरुषमपलपद्भिर्वैनाशिकैः सर्वमेवाकुलीकृतं तेतु भोक्तृस्वरूपं यत्र क्वच न कल्पयन्तोऽन्यायेन संगच्छन्ते केचित् सत्वमात्रमपि परिकल्प्यास्तिससत्वोय एतान् पञ्चस्कन्धान्निःक्षिप्यान्यांश्च प्रतिसन्दधातीत्युक्त्वा ततएव पुनस्त्रस्यन्ति तथास्कन्धानां महन्निर्वेदायविरागायानुत्पादाय प्रशान्तये गुरोरन्तिके ब्रह्मचर्य्यं चरिष्यामीत्युक्त्वा सत्वस्य पुनः सत्वमेवापह्नुवते सांख्ययोगादयस्तु प्रवादाः स्वशब्देन पुरुषमेव स्वामिनं चित्तस्य भोक्तारमुपयन्तीति ॥२०॥

भा॰ का प॰ (अथ) अनंतर (चित्तम्) चित्त (चित्तांतरेण) दूसरे चित्तसे (गृह्येत) ग्रहण करेंगे (बुद्धिः) बुद्धि (केन गृह्येत) काहे से ग्रहण करेंगे (सा प्यन्यया २) सोभी दूसरी से २ (इत्य प्रसंगः) इसही को अप्रसंग कहते हैं (स्मृति संकरश्च) और स्मृतिसंकर (यावंतो बुद्धि बुद्धीनामनुभवाः) जितने बुद्धियों के अनुभव हैं (तावंत्य स्मृतयः) उतनी ही स्मृति भी (प्राप्नुवन्ति) प्राप्त होंगी (तत्संकराच्च) संकर होनेपर (एकस्मृत्य नवधारणं चस्यात्) एक

* अति प्रसंग जो प्रसंग को अतिक्रम करे अर्थात् अनवस्था दोष।

** संकर दोष अन्यसे मिल जाने के दोष को कहते हैं।

स्मरण को धारण करना असम्भव होगा (इत्येवं बुद्धि प्रति संवेदिनं) इस प्रकार से बुद्धिवेत्ता (पुरुषम्) पुरुष को (अयत्न यद्भिः) अयत्न वाले (वैनाशकैः) विनाशकों से (सर्वमेवाकुलीकृतम्) सबही व्याकुल करने से (तेतु) वे भोक्तृ स्वरूपम्) भोग करने वाले के रूप को (यत्र क्वचन कल्पयंतः) जहां कहीं कल्पना करते हुये (अन्याये नसंगच्छंते) अन्याय से गमन करेंगे (केचित्) कोई (सत्वमात्रम्) केवल सत्वही को (अपि) भी (परिकल्प्य) प्रकल्पना करके (अस्ति ससत्वः) वही सत्व है (यएतान् पंचस्कंधान्निचिप्य) जो इन पांचो स्कन्धों को निक्षेप करके (अन्यांश्च प्रति संदधाति) औरों को ग्रहण करता है (इत्युक्त्वा) ऐसा कहकर (तएव) वही (पुनः स्त्रसंति) फिर भ्रष्ट होते हैं (तथा) तैसेही (स्कन्धानाम्) स्कंधों का (निर्वेदाय) ग्लानि के लिये (विरागाय) विराग के लिये (अनुत्पादाय) अनुत्पादन करनेको (शांतये) शांति के लिये (गुरोरंतिके) गुरु के घर में (ब्रह्मचर्यं चरिष्यामि) ब्रह्मचर्य करूंगा (इत्युक्त्वा) ऐसा कहकर (सत्वस्य) सत्व के (पुनः सत्वमेव) फिर सत्वभाव को (अपह्नुवते) नष्ट करेंगे (सांख्य योगादयस्तु) सांख्य योगादिक तो (प्रवादाः) वाद मात्र हैं (स्वशब्देन) स्वशब्द से (पुरुष मेव) पुरुष को ही (स्वामिनम्) स्वामी (चत्तस्य भोक्तारम्) चित्त के भोग करने वाले को (उपयंतीति) ग्रहण करते हैं । २० ।

भा० का भा० तब चित्त को दूसरे चित्त से बुद्धि को दूसरी बुद्धि से ग्रहण करने से अति प्रसंग दोष और स्मृति संकर दोष होगा क्योंकि जितनी बुद्धि उतनेही अनुभव (तब स्मृति नष्ट होने से स्मृ० सं०) सो होने से स्मरण नष्ट होगा इस प्रकार से वेत्ता पुरुष को अयत्न शील लोग आकुल कर देंगे कहीं २ भोगी का स्वरूप कल्पना करेंगे तब अधर्म से चलेंगे कोई केवल सत्व को कल्पना करके वही सत्व हैं जो इन पांच स्कन्धों को छोड़ और धारण करता है ये कहकर वेही फिर भ्रष्ट होंगे और स्कंधों की

ग्लानि अनुत्पत्ति और विराग के लिये गुरुके घर में ब्रह्मचर्य्य करें ऐसा ठानकर पुनः एक बुद्धि और एक स्मृति न होने से सत् के सत् भाव को त्याग देंगे और कहेंगे कि सांख्य और योग तो वाद मात्र हैं ये स्वशब्द से चित्त के भोक्ता पुरुष को ग्रहण करते हैं। २०।

चितेरप्रतिसङ्क्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥२१॥

सू० का प० (चितेः) चिति अर्थात् पुरुष (अप्रतिसंक्रमायाः) इधर उधर गमन रहित होनेसे (तदाकारापत्तौ) तदाकार अवस्था में (स्वबुद्धि-संवेदनम्) अपनी बुद्धिका ज्ञान होता है ॥ २१

सू० का भा० जब स्थिररूप पुरुषके समीप बुद्धिभी तदाकार को प्राप्त होती है तब बुद्धिको अपने रूपका ज्ञान होता है ॥ २१

अपरिणामिनीहि भोक्तुः शक्तिरप्रतिसंक्रमाच परिणामिन्यर्थेप्रतिसंक्रांते च तद्वृत्तिमनुपतति तस्याश्च प्राप्तचैतन्योपग्रहस्वरूपायाबुद्धिवृत्ते रनुकारिमात्रतया बुद्धिवृत्त्य विशिष्टाहि ज्ञानवृत्तिराख्यायते तथाचोक्तं न पातालं नच विवरं गिरीणां नैवान्धकारं कुक्षयोनोदधीनाम् गुहायस्यां निहितं ब्रह्मशाश्वतं बुद्धिवृत्तिमविशिष्टां कवयोवेदयन्ते इति अतश्चैतदभ्युपगम्यते ॥ २१ ॥

भा० का प० (अपरिणामिनीहि भोक्तुः शक्तिः) भोक्ता अर्थात् पुरुष

की शक्ति परिणाम रहित है (अप्रतिसंक्रमाच) और गमनागमन रहित है (परिणामिन्यर्थे प्रतिसंक्रान्ते च) परिणामी और गमनशाली विषय में (तद्वृत्तिमनुपतति) पुरुषकी वृत्ति चञ्चल रहती है (तस्याश्च) और उस वृत्ति से (प्राप्तोपग्रहरूपा) संयोगप्राप्त (बुद्धिवृत्तेः) बुद्धिवृत्तिका (अनुकारिमात्रतया) अनुकरणमात्र से (बुद्धिवृत्त्यविशिष्टा हि ज्ञानवृत्तिराख्यायते) बुद्धिवृत्ति से ज्ञानवृत्ति भिन्न प्रतीत होती है (तथाचोक्तम्) ऐसाही अन्यत्र भी लिखा है (न पातालं न च विवरं गिरिणाम् नैवान्धकारं न कुक्षयो गिरीणाम् नोदधीनाम्) अर्थात् न पाताल न छिद्रोंका अन्धकार न समुद्र की खाड़ी ऐसी हैं जहां ब्रह्म बैठा हो (गुहा यस्यां निहितं ब्रह्म शाश्वतं) वह गुफा जिसमें ब्रह्म रहता है (बुद्धिवृत्तिमविशिष्टां कवयोवेदयन्ते) कवि अर्थात् विद्वान् लोग बुद्धिको कहते हैं ॥ २१

भा० का भा० भोक्ता की शक्ति परिणाम और गमनागमन से रहित है जो विषय परिणामी और गमनशील हैं उनके साथ चित्तकी वृत्तिभी गमन करती है परन्तु जब बुद्धि चैतन्य पुरुषके समीप होती है तब उस की वृत्तिभी स्थिर हो जाती है तब उस बुद्धिमें ईश्वरका यथार्थ ज्ञान होता है ऐसाही अन्यत्र भी लिखा है कि ब्रह्म पातालादि में नहीं रहता है वरन बुद्धिरूपी गुफा में रहता है ॥ २२

द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥२२॥

सू०का प० (द्रष्टृ दृश्योपरक्तं) देखनेवाले और देखने योग्य पदार्थ में उपरक्त (चित्तम्) चित्त (सर्वार्थम्) चेतन अचेतन । २२ ।

सू० का भा० विषय और विषयी (विषयवान्) में उपरक्त चेतन और अचेतन रूप चित्त है । २२ ।

मनोहि मन्तव्येनार्थेनोपरक्तं तत्स्वयं च विषयत्वाद्विषयिणापुरुषेणात्मीययावृत्याभिसम्बद्धं तदेतच्चित्तमेव द्रष्टृदृश्योपरक्तं विषयविषयिनिर्भासं चेतनाचेतनस्वरूपापन्नं विषयात्मकमप्यविषयात्मकमिवाचेतनं चेतनमिव स्फटिकमणिकल्पं सर्वार्थमित्युच्यतेतदनेन चित्तसारूप्येण भ्रान्ताः केचित्तदेव चेतनमित्याहुः अपरेचित्तमात्रमेवेदं सर्वं नास्ति खल्वयं गवादि र्घटादिश्च सकारणोलोक इति अनुकम्पनीयास्तेकस्मात् अस्ति हि तेषां भ्रांतिबीजं सर्वरूपाकारनिर्भासं चित्तमिति समाधिप्रज्ञायां प्रज्ञेयोर्थः प्रतिबिंबीभूतस्तस्यालम्बनीभूतत्वादन्यः सचेदर्थश्चित्तमात्रंस्यात्कथं प्रज्ञयैव प्रज्ञारूपमवधार्येत तस्मात् प्रतिबिम्बीभूतोर्थः प्रज्ञायां येनावधार्य्यते स पुरुषइति एवं ग्रहीतृग्रहणग्राह्यस्वरूप चित्तभेदात् त्रयमप्येतज्जातितः प्रविभजन्ते ते सम्यग्दर्शिनस्तैरधिगतः पुरुषः कृतश्च तत् ॥२३॥

भा० का प० (मनोहि) मन (मंतव्येनार्थेन) मानने योग्य अर्थ से (उपरक्तम्) प्रीतिमान (तत्) सो (स्वयम्) आप (च) और (विषयत्वात्) विषय होने से (विषयिणा पुरुषेण) विषयी पुरुष से (आत्मीय यावृत्या) आत्म संबन्धी वृत्ति से (संबद्धम्) बद्ध है (तदेतच्चित्तमेव) सो यह चित्त ही (दृष्टृदृश्योपरक्तम्) अर्थात् (विषय विषयी निर्भासम्) विषय और विषय वाले को भासित करने वाला (चेतना चेतन स्वरूपा पन्नम्) चेतन और अचेतन स्वरूप को प्राप्त (विषयात्मकमप्यविषयात्मकम्) विषयात्मक और अविषया-

त्मक (अचेतनं चेतनमिव) अचैतन्य है किन्तु चेतन के समान है जैसे (स्फटिक मणि कल्पम्) स्फटिक के समान (सर्वार्थ मित्युच्यते) सब अर्थ युक्त कहते हैं (तदनेन चित्त सारूप्येण) सो इसही चित्त की सरूपता से (भ्रांता:) भूले हुए (केचित्) कोई (तदेव चेतन मित्याहु:) सो चेतन ही है ऐसा कहते हैं (अपरे) दूसरे (चित्तमात्रस्य) चित्त मात्र का (एव) ही (इदम् सर्वम्) येसब है (नास्ति खल्वयम्) निश्चय ये नहीं हैं (गवादिर्घटा दिश्च) चराचर (सकारणो लोक:) कारण समेत लोक (इति) ऐसा (अनु कम्पनीयास्ते) अनुकम्पन योग्य वे (कस्मात्) क्योंकि (अस्तिहि) है (तेषाम्) तिनको (भ्रांति बीजम्) भूल का बीज (सर्वं रूपाकारनिर्भासम्) सब रूपों के आकार को भासित करनेवाला (चित्तमिहि) चित्त (समाधि प्रज्ञायाम्) समाधि की बुद्धि से (प्रज्ञेयोऽर्थ:) जानने योग्य अर्थ (प्रतिबिंबी भूत:) प्रतिबिंब रूप (तस्यावलवंनी भूतत्वादन्य:) ज्ञेय अर्थ के आश्रय होनेसे प्रतिबिम्ब से भिन्न है (सचेदर्थ श्चित्त मात्रम् स्यात्) यदि वही चित्त मात्र अर्थ हो (कथं प्रज्ञयैव प्रज्ञा रूपम्) किसी बुद्धिही से बुद्धि के रूपको (अवधार्यंत) जानें (तस्मात्) इसवास्ते (प्रतिबिंबी भूतोर्थ:) प्रतिबिंब रूपी अर्थ (प्रज्ञायाम्) बुद्धि में (येन) जिस से (अवधार्यंत) जाना जाय (सपुरुष: इति) सोही पुरुष है (एवम्) ऐसे (ग्रहीतृग्रहणग्राह्य) ग्रहण करनेवाला ग्रहण और ग्रहण करने योग्य बस्तु (स्वरूप चित्त भेदात्) स्वरूप और चित्तके भेद से (त्रयमप्येतत्) यह तीनो (जातित:) जाति से (प्रविभंजते) विभाग करते हैं (सम्यग्दर्शन:) तत्वदर्शी (तैरधिगत:) उन तीनो से पृथक् (पुरुष:) पुरुष है। २२।

भा० का भा० मन मानने योग्य अर्थ से उपरक्त है सो आपही विषय होने से विषवान् (पुरुष से) अपनी वृत्ति से संबन्ध रखता है देखनेवाले और देखने योग्य दोनो में अर्थात् बिषय और बिषयवान् को भासित करनेवाला चेतन भी अचेतनता को प्राप्त बिषयात्मक होनेपर भी अविषयात्मक है जैसे

स्फटिक लाल नहीं होता परन्तु लाल के पास रहने से लाल भान होता है अतएव वही चित्त को सर्वार्थ युक्त कहते हैं सो इस चित्त के रूप से भूले हुवे कहते हैं कि यही पुरुष है दूसरे कहते हैं यह चराचर चित्तही मात्र की वृत्ति है कारण समेत जगत कुछ नही है तब उनको भी मानना होगा अतएव पुरुष नहीं है बरन समाधि बुद्धि ॥ २२ ॥

तदसंख्येयवासनाभिश्चित्तमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ॥२३॥

सू० का प० (तत्) सो (असंख्येय वासनाभिः) बेगिनत वासनाओंसे (चित्तम्) चित्त (अपि) भी (परार्थम्) दूसरे के निमित्त है (संहत्यकारित्वात्) संग्रहकारी होनेसे ॥ २४ ॥

सू० का भा० सो चित्त असंख्य वासनायुक्त होने परभी दूसरे ही के निमित्त है क्योंकि वह वासनाओंका संग्रह करता है ॥ २४ ॥

तदेतच्चित्तमसंख्येयाभिर्वासनाभिरेव चित्रीकृतमपि परार्थं परस्य भोगापवर्गार्थं न स्वार्थं संहत्यकारित्वाद्गृहवत् संहतकारिणा चित्तेन न स्वार्थेन भवितव्यं न सुखचित्तं सुखार्थं न ज्ञानं ज्ञानार्थमुभयमप्येतत्परार्थं यश्च भोगेनापवर्गेण चार्थेनार्थवान् पुरुषः सएव परोनपरः सामान्यमात्रं यत्तु किञ्चित्परं सामान्यमात्रं स्वरूपेणोदाहरेद्वैनाशिकस्तत्सर्वं संहत्यकारित्वात्परार्थमेव स्यात् यस्त्वसौपरोविशेषः सन् संहत्यकारिपुरुष इति ॥२३॥

भा० का प० (चित्तम्) सो चित्त (असंख्येयवासनाभिरेव विचित्रीकृतम्) असंख्यवासनाओंसे अद्भुत हुआ (अपि) भी (परार्थम्) अर्थात् (परस्य भोगापवर्गार्थम्) दूसरेके भोग और मोक्षके वास्ते है (न स्वार्थं) अपने लिये नहीं (संहत्यकारित्वात्) क्योंकि वह संग्रह करनेवाला है (गृहवत्) दासके समान (संहतकारिणाचित्तेन) सहतकारी चित्तसे (न स्वार्थेन भवितव्यम्) स्वार्थसे कार्य्य नहीं हो सकता हैं (न सुखचित्तम् सुखार्थम्) सुखचित्त सुखके अर्थ नहीं (न ज्ञानं ज्ञानार्थम्) न ज्ञान ज्ञानके लिये है (उभयमप्येतत्परार्थम्) ये दोनों दूसरे के अर्थ हैं (यश्च भोगेनापवर्गेणार्थेनार्थवान्) जो भोग और मोक्षके प्रयोजनोंका अर्थवान् है (स पुरुषः) सो पुरुष है (सएव परः) वही पर है (नपरः सामान्य मात्रम्) सो पर पुरुषसामान्य नहीं है (यत् किञ्चित् परं सामान्यमात्रम्) जो कुछ परभी सामान्य मात्र है (स्वरूपेणोदाहरेद्वैनाशिकः) स्वरूपसे विनाशयुक्त है (तत् सर्वम्) सो सब (संहत्यकारित्व ात्परार्थमेव स्यात्) संहतकारि होनेसे परार्थही है (यस्त्वसौ परोविशेषः) जो ये विशेष पर हैं (सनसंहत्यकारी) सो संहतकारी नहीं है (पुरुषः) अतएव पुरुष है ॥ २४

भा० का भा० सो चित्त असंख्यात वासनाओंसे अद्भुत होने परभी जो करता हैं सो सब सेवकके समान पर (पुरुष) के अर्थ करता है उस का ज्ञान सुख दोनों अर्थ नहीं है जो भोग और मोक्षके अर्थोंका अर्थी है सो पर पुरुष है सो सामान्य नहीं किन्तु विशेष है क्योंकि जो परभी स्वरूपसे नाश होनेवाला हैं सो सब परार्थ है और ये पुरुष विशेष पर है अतएव कारी नहीं है ॥ २४

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनानिवृत्तिः ॥ २४ ॥

सू० का प० (विशेष दर्शिनः) विशेष दर्शी को (आत्मभाव भावना) शरीर के भाव की भावना की (निवृत्तिः) निवृत्ति होजाती है ॥ २५ ॥

सू० का भा० विशेषदर्शी योगीको शारीरक भावों की भावना नहीं रहती है ॥ २४ ॥

यथाप्रावृषितृणांकुरस्योद्भेदेन तद्बीजसत्तानुमीयते तथा मोक्षमार्गश्रवणेन यस्य रोमहर्षाश्रुपातौ दृश्येते तत्राप्यस्ति विशेषदर्शनबीजमपवर्गभागीयं कर्माभिनिर्वर्तितमित्यनुमीयते तस्यात्मभावभावना स्वाभाविकीप्रवर्त्तते यस्याभावादिदमुक्तं स्वभावं मुक्तादोषाद्येषां पूर्वपक्षे रुचिर्भवत्यरुचिश्च निर्णये भवति तत्रात्मभावभावनाकोहमासं कथमहमासं किंस्विदिदंके भविष्यामः कथं भविष्याम इति सानुविशेषदर्शिनो निवर्तते कुतः चित्तस्यैष विचित्रः परिणामः पुरुषस्तु सत्यामविद्यायां शुद्धश्चित्तधर्मैरपरामृष्टइति ततोऽस्यात्मभावभावनाकुशलस्य निवर्तते इति ॥२४॥

भा० का प० (यथा प्रावृषि) जैसे वर्षा ऋतुमें (तृणांकुरस्योद्भेदेन तत् सत्तानुमीयते) तिनके भेद से अंकुर होने से उसकी सत्ता जानीजाती है (तथा मोक्ष मार्ग श्रवणेन) तैसे मोक्ष मार्ग सुननेसे (यस्य रोमहर्षाश्रुपातौ दृश्येते) रोमहर्ष और आंसू गिरना दीखता (तत्राप्यास्ति विशेष दर्शन बीजम्) उसमें भी विशेषदर्शन का बीज है (अपवर्ग भागीयं) अपवर्ग के भागीको (कर्माभिनिर्वर्तितमित्यनुमीयते) इसका कर्म नष्ट हुआ ये अनुमान करते हैं (तस्यात्म भाव भावना) उसको आत्म भाव भावना (स्वाभाविकी प्रवर्तते) स्वभावसे ही प्रवृत्त होती है (यस्याभावात्) जिसके अभावसे ये

(इत्युक्तं स्वभावं) यह स्वभाव कहा जाता है (सुसादोषात्) विद्यमान दोष से (येषां पूर्वपच्चरुचिः) जिनको पूर्वपच्चमें रुचि (भवति) होती है अरुचिश्च भवति निर्णये) और निर्णय में अरुचि होती है (तत्रात्मभावभावना) तहां आत्मभाव भावना (कोहमासम्) मैं कौनथा (किं स्विदिदम्) यह क्या है (के भविष्यामः) कौन होंगे (कथं भविष्याम इति) कैसे होंगे (सातु विशेष दर्शनो निवर्तते) विशेष दर्शन की निवृत्त होती है (कुतः) क्यों (चित्तस्यैष विचित्रः) ये चित्तहीका विचित्र (परिणामः) परिणाम है (पुरुषस्तु) पुरुषतो (सत्यामविद्यायाम्) अविद्या होने में (शुद्धः) शुद्ध (चित्तधर्मैरपरामृष्टः) चित्त धर्मों से रहित (ततोऽस्यात्मभाव भावनाकुशलस्य) उस आत्मभाव भावना कुशल की (निवर्त्तेत) निवृत्त होता है ॥ २४ ॥

भा० का भा० जैसे वर्षा में तिनके से अंकुर होने से उसकी सत्ता का अनुमान होता है तैसेही मोच्च कथा होने में जिसके रोम खड़े होजांय या आंसू गिरे उसमें भी विशेष दर्शन का बीज है ऐसा अनुमान करते हैं कि दोषग्रस्त स्वभाव वालेको पूर्व पच्च में रुचि और सिद्धान्त में अरुचि हो उस्को "मैं कौन था कैसे था ये क्या हैं कौन होंगे कैसे होंगे" ऐसे विशेष दर्शता के संग तर्क होतेहैं क्योंकि येसब चित्त के अद्भुत कार्य्य हैं जब अविद्या से लुप्त चित्त धर्मोंसे शुद्ध प्रवेश दर्शन में दत्त चित्त होता है तब येसब निवृत्त होते हैं ॥ २४ ॥

तदाविवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥ २५ ॥

सू० का प० (तदा) तब (विवेक निम्नम्) ज्ञानसे निम्न (कैवल्य प्राग्भारं चित्तम्) वच्यमाण कैवल्य युक्त चित्त ॥ २५ ॥

सू० का भा० तब चित्त कैवल्य भागी होता है ॥२५॥

तदानीं यदस्य चित्तं विषयप्राग्भारमज्ञाननिम्नमासीत् तदस्यान्यथाभवति कैवल्यप्राग्भारं विवेकजज्ञाननिम्नमिति ॥ २५ ॥

भा० का प० (तदानीं) तब (यदस्य चित्तम्) जो इसका चित्त (विषय प्राग्भारमासीत्) जो इसका चित्त विषयों के प्रकृष्ट भार से भराथा (तदस्यान्यथा भवति) सो दूसरे प्रकार का होजाता है (कैवल्य प्राग्भारम्) इसका अर्थ करते हैं (विवेकजज्ञाननिम्नमिति) अर्थात् विवेक से उत्पन्न हुए ज्ञान से भरजाता है ॥ २५ ॥

भा० का भा० जो चित्त पूर्व काल में विषयों से भरा था सो अब ज्ञान से गंभीर होजाता है ॥ २५ ॥

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥२६॥

सू० का प० (तच्छिद्रेषु) समाधि दशा के अभाव में (प्रत्ययांतराणि) अन्य ज्ञान (संस्कारेभ्यः) संस्कारों से ॥ २६ ॥

सू० का भा० योगी के संस्कारों से कभी कभी दूसरे ज्ञान भी होजाते हैं जो भाष्य में कहते हैं ॥ २६ ॥

प्रत्ययविवेकनिम्नस्य सत्वपुरुषान्यता ख्यातिमात्रप्रवाहिणश्चित्तस्य तच्छिद्रेषु प्रत्ययांतराण्यस्मीति वा ममेति वा जानामीति वा न जानामीति वा कुतः क्षीयमाणबीजेभ्यः पूर्वसंस्कारेभ्य इति ॥२६॥

भा० का प० (प्रत्यय विवेक निम्नस्य) ज्ञान से गंभीर को (सत्व पुरुषान्यता ख्याति मात्र प्रवाहिणः) पुरुष का सद्भाव मात्र प्रसिद्धि वाले (चित्तस्य) चित्त को (तच्छिद्रेषु) उसके छिद्रों में (प्रत्ययांतराण्यस्मीति) दूसरा ज्ञान होता है जसे मैंहूं (वा) या (ममेति) मेरा है (वा जानामीति) या मैं जानता हूं (वा न जानामीति) या नहीं जानता हूं (कुतः) क्योंकि (क्षीयमाण वीजेभ्य सःस्कारेभ्य इति) संस्कारों के बीज भी नष्ट होगए है* ॥ २६ ॥

भा० का भा० जब चित्त ज्ञानमय होजाता है तब पुरुष का सद्भाव प्रसिद्ध करनेवाले चित्त में संस्कार के बीज नष्ट होने से दूसरा ज्ञान मैं हूं जानता हूं कि नहीं मेरे हैं या नहीं ऐसे ज्ञानांतर होते हैं ॥ २६ ॥

हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥२७॥

सू० का प० (हानम्) नाश (एषाम्) इनका (क्लेशवत्) क्लेशों के समान (उक्तम्) कहा है ॥ २७ ॥

सू० का भा० इन संस्कारों नाश भी अविद्या क्लेशों के समान कहा हैं ॥ २७ ॥

यथाक्लेशादग्धवीजभावा न प्ररोहसमर्था भवन्ति तथाज्ञानाग्निनादग्धवीजभावः पूर्वसंस्कारो न प्रत्ययप्रसूर्भवति ज्ञान संस्कारास्तु चित्ताधिकारसमाप्रमनुसरंतेइति न चिंत्यन्ते ॥२७

* विशेष—यद्यपि योगी ज्ञानसे पूर्ण होता है तथापि उसे ज्ञानके छिद्र अर्थात् समाधिदशा से भिन्न सांसारिक अवस्था में ईश्वर ज्ञानसे भिन्न और ज्ञानभी होते हैं जैसे अपने शरीर का अध्यास या अन्य वस्तुओंमें ममत्व आदि परन्तु वह ज्ञान योगीको कुछ बाधा नहीं देते क्योंकि जिन संस्कारोंसे वह ज्ञान होते हैं वह स्वयम् क्षीण बीज होते हैं।

भा०का प० (यथा) जैसे (क्लेशाः) अविद्यादि (दग्धबीजभावाः) बीज नष्ट हुवे (नप्ररोहंति) नहीं उत्पन्न होते (तथा) तैसेही (ज्ञानाग्निना) ज्ञान रूपि अग्निसे (दग्धबीज भावस्संस्कार:) जिसका बीज जल गया है ऐसा संस्कार (न प्रत्ययप्रसूर्भवति) अन्य ज्ञानोंका उत्पादक नहीं होता (ज्ञानसंस्कारस्तु) और ज्ञानके संस्कार तो (चित्ताधिकार परिसमाप्तिम्) चित्त के अधिकारों की समाप्ति को (अनुसरंते) अनुसरण करते हैं (इति न चिंत्यन्ते) ये नहीं चिन्ता करते हैं ॥ २७ ॥

भा० का भा० जिस प्रकार से पूर्वोक्त क्लेश के बीज दग्ध होने से पुनः नहीं उत्पन्न होते हैं तैसेही ज्ञान रूपी अग्नि से संस्कार भी सबीज जलने से फिर उत्पन्न नहीं होते और ज्ञान संस्कार चित्त की समाप्ति का अनुसरण करता है ॥ २७ ॥

प्रसंख्यानेप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ॥२८॥

सू० का प० (प्रसंख्यानेपि) योग से प्राप्त होने योग्य ज्ञान में (अकुसीदस्य) वृद्धि रहित को (सर्वथा विवेक ख्यातेः) सर्वथा विवेकी को (धर्ममेघः समाधिः) धर्म मेघ नामक समाधि होती है ॥२८ ॥

सू० का भा० जिस योगी को योग सिद्धि से प्राप्त होने योग्य ज्ञान वृद्धि न होतो उसे धर्म मेघ समाधि होती है ॥ २८ ॥

यदायं ब्राह्मणः प्रसंख्यानेप्यकुसीदस्ततोपि न किञ्चित् प्रार्थयते तत्रापि विरक्तस्य सर्वथा विवेकख्यातिरेव भवतीति

संस्कारबीजक्षयान्नास्यप्रत्ययान्तराण्युत्पद्यन्ते तदास्य धर्ममेघो नामसमाधिर्भवति ॥ २८ ॥

भा० का० प० (यदायं ब्राह्मणः) जब ये योगी (प्रसंख्यानेप्यकुसीदः) ज्ञानकी वृद्धिको नहीं पाता (ततोपि न किञ्चित् प्रार्थयते) तबभी कुछ इच्छा न करे (तत्रापि विरक्तस्य) वहांभी विरक्तको (सर्वथा विवेक ख्याति रेव भवतीति) सब प्रकार विवेक ज्ञानकी सिद्धि होती है (संस्कार बीज क्षयात्) संस्कारके बीज नाश होनेसे (नास्य प्रत्ययान्तराण्युत्पद्यन्ते) इसको दूसरा ज्ञान नहीं उत्पन्न होता है (तदास्य) तब इसको (धर्म्ममेघोनाम-समाधिर्भवति) धर्म्ममेघ नाम समाधि होती है ॥ २८ ॥

भा० का भा० जब योगी योगशस्य ज्ञान वृद्धिसे रहित होता है तब भी कुछ इच्छा नहीं करता वहांभी विरक्त होनेसे क्योंकि उसका विवेक ज्ञान नष्ट नहीं होता संस्कारके नष्ट होनेसे इसको दूसरे ज्ञान नहीं उत्पन्न होते तब उसे धर्म्ममेघ अर्थात् धर्म्मको वर्षानेवाली समाधि होती है ॥ २८

ततः क्लेशकर्म्मनिवृत्तिः ॥२९॥

सू० का प० (ततः) तब (क्लेशकर्म्मनिवृत्तिः) क्लेश और कर्मोंका नाश होता है ॥ २९ ॥

सू० का भा० तब क्लेश और कर्मों का नाश हो जाता है ॥ २९॥

तल्लाभादविद्यादयः क्लेशाः समूलकाषंकषिता भवन्ति कुशलाकुशलाश्च कर्माशयाः समूलघातं हताभवन्ति क्लेशकर्म्म निवृत्तौ जीवन्नेव विद्वान् विमुक्तो भवति कस्मात् यस्माद्विपर्य

योभवस्य कारणं नहि क्षीणविपर्ययः कश्चित् केनचित् क्वचिज्जातो दृश्यते इति ॥२८॥

भा०का प० (तल्लाभात्) उस धर्म्ममेघ समाधिके लाभसे (क्लेशाः) क्लेश (काषकषिता) कोड़ोसे पिटेके समान (भवन्ति) होते हैं (कुशलाकुशलाश्च कर्म्माशयाः) दुःख वा सुख देनेवाले कर्मके फल (समूलघातं हताः) जड़समेतनष्ट (भवन्ति) होते हैं (क्लेशकर्म्मनिवृतौ) क्लेशकर्म्म निवृत्त होने पर (जीवन्नेव) जीताही (विद्वान् विमुक्तो भवति) योगीमुक्त होजाता है (कस्मात्) काहे से (यस्मात्) जिस लिये (विपर्य्ययः) मिथ्याज्ञान (भवस्य कारणम्) जन्मका कारण है (नहि क्षीणविपर्ययः) नहीं नष्ट अज्ञानवाला (कश्चित्) कोई (केनचित्) किसी हेतुसे (क्वचित्) कहीं (जातो दृश्यते इति) उत्पन्न हुवा दीखता है ॥ २८ ॥

भा० का भा० जब योगीको धर्म्ममेघ समाधि लाभ हो जाती है तब क्लेश अच्छे और बुरे कर्म्मके फल नष्ट हो जाते है उनके नष्ट होनेसे योगी जीवन्मुक्त होता है क्योंकि अज्ञानही संसार का कारण है कहीं नहीं देखा कि ज्ञानी पुरुष कोई किसी से कहीं उत्पन्न भया हो ॥ २८

तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानं स्यात् ज्ञेयमल्पम् ॥३०॥

सू० का प० (तदा) तब (सर्वावरणमलापेतस्य) क्लेशकर्म्मादिमल दूर हुवे को (ज्ञानं स्यात्) ज्ञान होता है (ज्ञेयमल्पम्) जानने योग्य वस्तुकम रहती हैं ॥ ३० ॥

सू० का भा० जब आवरण रूपी मलयोगी के दूर हो जाते हैं तब

क्योंकि (कृतभोगापवर्गाः) भोगफलप्राप्त किये हुवे (परिसमाप्तक्रमाः) समाप्त है क्रम जिनका (चणमपि) थोड़े कालभी (अवस्थातुम्) रहनेको (उत्सहन्ते) सह सकते हैं ॥ २१ ॥

भा० का भा० पूर्वोक्त धर्मसेघ समाधिके उदयसे उन गुणोंका परिणाम अर्थात् वारम्वार उदय होना बन्द हो जाता है जिनका फल मिल चुका है क्योंकि गुणभोग फलके पश्चात् चणमात्र भी नहीं रह सकते हैं ॥ २१ ॥

क्षणप्रतियोगीपरिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥२२॥

सू० का प० (चणप्रतियोगी) चणकी समान धर्मवाले काल (परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः) परिणामके अवसानसे जो जाना जाय (क्रमः) उसे क्रम कहते हैं ॥ २२ ॥

सू० का भा० क्रमका लचण यह है कि जो चण चणमें दूसरी अवस्थाको धारण करे वह क्रम है ॥ २२ ॥

अथ कोयं क्रमनामेति ।

क्षणानंतर्य्यात्मापरिणामस्यापरांतेनावसानेन गृह्यतेक्रमः नह्यननुभूतक्रमक्षणा पुराणतावस्त्रस्यांते भवति नित्येषुच क्रमो दृष्टः द्वयीचेयं नित्यता कूटस्थनित्यतापरिणामनित्यता च तत्र कूटस्थनित्यतापुरुषस्य परिणामनित्यतागुणानां यस्मिन् परिण स्यमानेतत्वं न विहन्यतेतन्नित्यं उभयस्य च तत्वानभिघातान्नि

यत्वन्तन गुणधर्मेषु बुद्धादिषु परिणामापरांतनिर्ग्राह्यः क्रमो लब्धपर्यवसानो नित्येषु धर्मिषु गुणेष्वलब्धपर्यवसानः कूटस्थ नित्येषु स्वरूपमात्रप्रतिष्ठेषु मुक्तपुरुषेषु स्वरूपास्तिताक्रमेणैवा नुभूयतइति तत्राप्यलब्धपर्यवसानः शब्दपृष्ठेनास्तिक्रियामुपा दायकल्पितइति अथास्य संसारस्य स्थित्यागत्या च गुणेषु वर्त मानस्यास्तिक्रमसमाप्तिर्नवेति अवचनीयमेतत् कथं अस्ति प्रश्न एकांतवचनीयः सर्वोजातो मरिष्यति ओंभोइति अथ सर्वोमृ त्वाजनिष्यतइति विभज्यवचनीयमेतत् प्रत्युदितख्याति क्षीण तृष्णः कुशलो न जनिष्यते इतरस्तु जनिष्यते तथामनुष्यजातिः श्रेयसीनवा श्रेयसीत्येवं परिपृष्टे विभज्यवचनीयः प्रश्नः पशू नधिकृत्यश्रेयसीदेवानृषींश्चाधिकृत्यनेति अयंत्ववचनीयः प्रश्नः संसारोयमन्तवानथानन्तइति कुशलस्यास्तिसंसारक्रमपरिसमा प्तिर्नेतरस्येति अन्यतरावधारणेदोषः तस्माद्व्याकरणीय एवायं प्रश्नइति ॥३२॥

गुणाधिकारक्रमसमाप्तौ कैवल्यमुक्तन्तस्वरूपमवधार्यते ।

भा० का प० (क्षणानन्तर्यात्मापरिणामस्यापरान्तेनावसानेन गृह्यते क्रमः) वर्त्तमानक्षणके पश्चात् जो कालमें परिणाम होता है उसके अन- न्तर जो ग्रहण किया जाता है उसे क्रम कहते हैं (नह्यननुभूतक्रमक्षणा पुराणतावस्त्रस्यान्ते भवति) इससे शंका होती है कि वस्त्रका पुरानापन वस्त्रके अन्तमें नहीं जाना जाता तब क्रमका लक्षण अयुक्त हुआ (नित्येषु च क्रमोदृष्टः) इसका उत्तर यह है कि नित्यपदार्थोंमें क्रम ठीक रीतिसे जाना जाता है, अब इससे भी सन्देह होगा कि जिन पदार्थोंमें क्रम है

वह नित्य नहीं हो सक्ती हैं (द्वयीचेयं नित्यता) इसका समाधान यह है कि नित्यता दो प्रकार की है (कूटस्थ नित्यतापरिणामनित्यता च) एक कूटस्थ नित्यता और दूसरी परिणाम नित्यता (तत्र) तहां (कूटस्थनित्यतापुरुषस्य) कूटस्थनित्यता पुरुषकी है (परिणामनित्यतागुणानाम्) और परिणाम नित्यता गुणोंकी है (यस्मिन् परिणस्यमानेतत्वं न विहन्यते) जिनके परिणाम से तत्व नष्ट नहीं होते (तन्नित्यमुभयस्य च तत्वानभिघातात्) वह नित्य है जो कार्य्य वा कारणरूप तत्वका नाशक न हो, इसमें यहभी शंका हो सक्ती हैं कि जो परिणामी वस्तु है वह नित्य नहीं हो सक्ती इसका उत्तर देते हैं कि (नित्यत्वन्तच गुणधर्मेषु) नित्यता गुणोंमें रहती है (बुद्ध्यादिषु परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः) और बुद्धि आदिकोंमें अन्तदशासे समझने योग्य क्रम रहता हैं (लब्धपर्य्यवसानी नित्येषु धर्म्मिषु गुणेषु) परन्तु नित्य गुणोमें जो क्रम रहता है उसका अन्त होता है इससे ही उनमें क्रम नित्यता रहती है (अलब्धपर्य्यवसानः कूटस्थनित्येषु) कूटस्थ अर्थात् विकार रहित नित्यपदार्थों में जो क्रम रहता है अन्त नहीं होता (स्वरूपमात्र प्रतिष्ठेषु मुक्तपुरुषेषु स्वरूपास्तिताक्रमेणैवानुभूयते) जो मुक्त जीव अपने रूप में स्थिर रहते हैं उनके जीवकी विद्यमानता क्रमसे ही जानी जाती है (तत्राप्यलब्धपर्य्यवसानः) क्योंकि जीवकी नित्यताभी अन्त रहित होती है (अथास्य संसारस्य स्थित्यागत्या च गुणेषु वर्त्तमानस्यास्तिक्रम समाप्तिर्न वेति) अब यह शंका होती है कि संसार की स्थिति और लयसे जो गुणों में क्रम रहता है उसकी समाप्ति होती है वा नहीं (अवचनीयमेतत्) इस विषयका कथन असम्भव है (कथम्) कैसे (अस्ति प्रश्न एकान्तवचनीयः) यह प्रश्न एक देशी है (सर्वोजातोमरिष्यति) जो उत्पन्न हुए हैं वह सब मरैंगे (अथ सर्वोमृत्वाजनिष्यते इति विभज्यवचनीयमेतत्) सब मरकर उत्पन्न होंगे यह पूर्ववचनका अर्थापत्ति न्यायसे विभाग वा उत्तर होता है (प्रत्युदितः ख्यातिः) इससे यह सिद्धान्त निकलता है (चीणतृष्णाः कुशलो न

जनिष्यत इतरस्तु जनिष्यते) जिसकी विषयसम्बन्धिनी तृष्णा नष्ट होगई है वह कुशल अर्थात् योगी उत्पन्न नहीं होगा (यथा) जैसे (मनुष्यजातिः श्रेयसीनवा श्रेयसीत्येवं पृष्टे विभज्यवचनीयः प्रश्नः) मनुष्यजाति कल्याण कारिणी है वा नहीं यह प्रश्न विभाग वचनवाला है अर्थात् इसके उत्तरमें हां और ना दोनो कह सक्ते हैं (पशूनधिकृत्यश्रेयसी) क्योंकि पशुओंकी अपेक्षा उत्तम है (देवानृषींश्चाधिकृत्यनेति) विद्वानोंकी ऋषिओंकी अपेक्षा उत्तम नहीं है (संसारोयमन्तवानथवानन्त इति) संसार अनन्त है वा सान्त है इसका उत्तर यह है कि (कुशलस्यास्ति संसारक्रमपरिसमाप्तिः) योगीको संसारके क्रमकी समाप्ति हो जाती है (नेतरस्य) दूसरे को नहीं (अन्यतरावधारणे दोषः) इस लिये संसारको सान्त वा अनन्त एकतरहका कहने में दोष है (तस्मादृव्याकरणीय एवायं प्रश्नः) इस कारणसे यह प्रश्न विवेचनीय है ॥ ३३ ॥

भा० का भा० वर्तमान क्षणके पश्चात् जो कालसे परिणाम होता है उसके अनन्तर जो ग्रहण किया जाता है उसे क्रम कहते हैं इसमें शंका होती है कि वस्त्रका पुरानापन वस्त्रके अन्तमें नही जाना जाता तब क्रम का लक्षण अयुक्त हुआ इसका उत्तर यह है कि नित्यपदार्थोंमें क्रम ठीक रीतिसे जाना जाता है, अब इसमें भी सन्देह होगा कि जिन पदार्थोंमें क्रम है वह नित्य नहीं हो सक्ते हैं इसका समाधान यह है कि नित्यता दो प्रकारकी है एक कूटस्थ नित्यता और परिणाम नित्यता तहां कूटस्थ नित्यता पुरुषकी है और परिणाम नित्यता गुणोंकी है जिनके परिणामसे तत्व नष्ट नहीं होते वह नित्य है जो कार्य्य वा कारण रूप तत्वका नाशक न हो, इसमें यहभी शंका हो सक्ती है कि जो परिणामी वस्तु है वह नित्य नही हो सक्ती इसका उत्तर देते हैं कि नित्यता गुणोंमें रहती है और बुद्धि आदिकोंमें अन्तदशासे समझने योग्य क्रम रहता है परन्तु नित्य

गुणोंमें जो क्रम रहता है उसका अन्त होता है इसी भी उनमें क्रम नित्यता रहती है कूटस्थ अर्थात् विकार रहित नित्यपदार्थों में जो क्रम रहता है अन्त नहीं होता जो मुक्तजीव अपने रूपमें स्थिर रहते हैं उनके जीवकी विद्यमानता क्रमसे ही जाती है क्योंकि जीवकी नित्यताभी अन्त रहित होती है अब यह शंका होती है कि संसारकी स्थिति और लयसे जो गुणोंमें क्रम रहता हैं उसकी समाप्ति होती है वा नहीं इस विषयका कथन असम्भव है कैसे यह प्रश्न एकदेशीय है जो उत्पन्न हुए हैं वह सब मरेंगे सब मरकर उत्पन्न होंगे यह पूर्व वचनका अर्थापत्ति न्यायसे विभाग वा उत्तर होता है इससे यह सिद्धान्त निकलता है जिसकी विषय सम्बन्धिनी तृष्णा नष्ट होगई वह कुशल अर्थात् योगी उत्पन्न नहीं होगा तैसे ही मनुष्य जाति कल्याणकारिणी है वा नहीं यह प्रश्न विभाग वचनवाला है अर्थात् इसके उत्तरमें हां औरना दोनो कह सक्ते हैं क्योंकि पशुओंकी अपेक्षा उत्तम है विद्वानोंकी ऋषिओंकी अपेक्षा उत्तम नहीं है संसार अनन्त है वा सान्त है इसका उत्तर यह है कि योगीको संसारके क्रमकी समाप्ति हो जाती है दूसरे को नहीं इस लिये संसारको सान्त वा अनन्त एक तरहका कहने में दोष है इस कारणसे यह प्रश्न विवेचनीय है ॥ ३२ ॥

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठावाचितिशक्तिरिति ॥३३

सू० भा प० (पुरुषार्थशून्यानां गुणानाम्) जिन गुणोंकी प्राप्ति में पुरुषार्थोंकी समाप्ति हो जाय (प्रतिप्रसवः) व्याहतगति से उन गुणोंकी प्राप्तिको (कैवल्यम्) मोक्ष कहते हैं (स्वरूपप्रतिष्ठा वा) अथवा ईश्वर में

जो चित्तवृत्तियोंको लय करना है (चितिशक्तिः) यवा ज्ञानशक्तिको मोक्ष कहते हैं ॥ ३३ ॥

सू० का प० स्पष्ट है ॥ ३३ ।

कृतभोगापवर्गाणां पुरुषार्थशून्यानां यः प्रतिप्रसवः कार्यकारणात्मनांगुणानां तत्कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठापुनर्बुद्धिसत्वानभिसम्बन्धात् पुरुषस्य चितिशक्तिरेव केवलातस्याः सदा तथैवावस्थानं कैवल्यमिति ॥३३॥

भा० का प० (कृतभोगापवर्गाणाम्) जिन गुणोंके फल भोग वा स्वर्गादि फल प्राप्त हो चुके हैं (प्रतिप्रसवः) व्याहतगतिसे प्राप्ति (कार्य्यकारणात्मनां गुणानाम्) कार्य्यरूप वा कारणरूप गुणोंको (तत्कैवल्यम्) उसे मोक्ष कहते हैं (स्वरूपप्रतिष्ठा पुनर्बुद्धिसत्वानभिसम्बन्धात्) स्वरूप प्रतिष्ठा का अर्थ यह है कि बुद्धि वा मनके सम्बन्धसे रहित जो ज्ञानशक्ति उसे केवला कहते हैं (सदातथैवावस्थानम्) सर्वदा उसही ज्ञानशक्ति में स्थिर रहनेको (कैवल्यमिति) कैवल्य कहते हैं ॥ ३३ ॥

भा० का भा० जिन गुणोंके फल भोग वा स्वर्गादि फल प्राप्त होचुके हैं व्याहतगतिसे प्राप्ति कार्य्यरूप वा कारणरूप गुणोंको उसे मोक्ष कहते हैं स्वरूप प्रतिष्ठाका अर्थ यह है कि बुद्धि वा मनके सम्बन्धसे रहित जो ज्ञानशक्ति उसे केवला कहते हैं सर्वदा उसही ज्ञानशक्ति में स्थिर रहनेको कैवल्य कहते हैं ॥ ३३ ॥

इति श्रीपातञ्जले योगशास्त्रे सांख्यप्रवचने कैवल्यपादश्चतुर्थः संपूर्णः ।